Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
का प्रकाशन

लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 14 : जून, 2018

अन्दर के पृष्ठों पर :

परिप्रेक्ष्य
कार्यक्षेत्र से
समीक्षा

शिक्षक

सम्पादन
चन्द्रिका मुरलीधर
इन्दुमति एस.
मधुमिता सुधाकर
प्रेमा रघुनाथ

सलाहकार
रामगोपाल वल्लत
एस. गिरिधर
उमाशंकर पेरिओडी

इस अंक के लिए विशेष सलाहकार
गौतम पाण्डेय
इन्दु प्रसाद

हिन्दी अनुवाद
रमणीक मोहन
नलिनी रावल

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

डिजायन
बैनयान ट्री
98458 64765

मुद्रक
SCPL
बेंगलूरु - 560 062
+ 91 80 2686 0585
+ 91 98450 42233
www.scpl.net

कृपया ध्यान दें : इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः लर्निंग कर्व (अँग्रेजी) XXVI फरवरी, 2017 के लेखों का हिन्दी अनुवाद है। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

"लर्निंग कर्व अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।"

सम्पादक की कलम से

स्कूल (सार्वजनिक चाहे निजी) की नीतियाँ कुछ भी हों, और वह जिस भी बोर्ड से सम्बद्ध हो, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के केन्द्र में शिक्षक होता है। शिक्षक इस प्रक्रिया की सफलता का अत्यावश्यक हिस्सा है । इस बात को मान लिया जाए तो एक और बात पर भी विचार करना आवश्यक है – वह क्या है जो एक अच्छी, प्रभावशाली शिक्षक को 'रचता' है, तथा उसे और उसके माध्यम से स्कूल के ढाँचे को निरन्तर बने रहने में मददगार होता है। जब इस तरह के कई व्यक्तिगत उदाहरणों को ध्यान में रखा जाता है, तो हम सम्पूर्ण व्यवस्था के मूल्यांकन के अत्यावश्यक काम पर आते हैं। वह क्या है जो एक व्यक्ति की स्कूली शिक्षा को एक बड़ा और यादगार अनुभव बना देता है, जिसका परिणाम विश्वास से भरे आत्मनिर्भर एक ऐसे विद्यार्थी के रूप में सामने आता है जो अपने द्वारा चुने गए काम के क्षेत्र में अपने आसपास के लोगों के लिए (और स्वयं के विकास में भी) योगदान देता है।

यह सही है कि विद्यार्थियों के अनुभवों को समृद्ध करने में एक अच्छे वातावरण और स्थान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । लेकिन उतना ही महत्वपूर्ण इन अनुभवों को व्यवस्थित करने वाला व्यक्ति, यानी शिक्षक भी है, जो बच्चों से शिक्षाप्रद एवं स्वयं को समृद्ध करने वाली प्रतिक्रियाएँ निकलवाने में सफल होता है। इस व्यक्ति को हर सम्भव तरीके से बल मिलना चाहिए ताकि उसके माध्यम से कक्षा एक ऐसा स्थान बन जाए जहाँ विद्यार्थी सीखते हों, जहाँ वास्तव में ज्ञानार्जन हो, वे जानें कि कैसे (न कि क्या) सोचना-विचारना है, और वे समस्याओं के हल निकालें और अपनी ताकत को खोज पाएँ।

हमने शिक्षक-विकास के मुद्दे की जाँच-पड़ताल के मकसद से 'लर्निंग कर्व' का एक अंक इस बहुत ही महत्वपूर्ण विषय को समर्पित करने का सर्वसहमति से निर्णय लिया । इस बात पर सार्वभौमिक सहमति है कि शिक्षक को निरन्तर चलने वाले नवीकरण तथा दक्षताओं की पुनर्पूर्ति की आवश्यकता रहती है ताकि उसका उत्साह और उमंग बने रहें। एक ओर जहाँ यह सही है कि कुछ लोग बहुत पहले ही तय कर लेते हैं कि वे प्राथमिक या उच्च विद्यालय से लेकर अकादमिक स्तर तक शिक्षक बनेंगे, इसमें शक नहीं कि औपचारिक प्रशिक्षण बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है - उसी तरह जैसे एक डॉक्टर के बनाने में मेडिकल स्कूल का होना आवश्यक है। पहला प्रशिक्षण कार्य करते हुए होता था, जब नए शिक्षकों को जैसे बस गहरे पानी में झोंक दिया जाता था, कि वे डूबें चाहे तरें, और प्रयत्न–त्रुटि वाले तरीके से सीखें जिसके तहत आप कोशिश करते हुए, त्रुटियाँ करते हुए कुछ सीखते हैं। आज, सौभाग्य से शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों के लिए, प्रशिक्षण आवश्यक हो गया है, और यह दो स्तरों पर उपलब्ध है – एक, कक्षा-12 के बाद सीधा इस पेशे में प्रवेश करने वालों के लिए डिप्लोमा, और दूसरा एक दो-वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम। समानता का बिन्दु यह है कि पाठ्यक्रम स्कूल-शिक्षण के सभी पहलुओं के इर्द-गिर्द निर्मित होते हैं, जिनमें पाठ की योजना से उसे कक्षा में पढ़ाने, परीक्षा-पत्र बनाने से त्रुटियाँ दूर करने और मूल्यांकन, तथा विभिन्न आयु और क्षमताओं के विद्यार्थियों की मानसिकता को समझने तक की बात होती है।

ये प्रशिक्षण के औपचारिक तरीके हैं और बहुत महत्वपूर्ण भी हैं। लेकिन प्रशिक्षण के कई रूप हो सकते हैं। सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के अलावा सेवाकालीन प्रशिक्षण होता है जिसके तहत शिक्षक एक समय पर कुछ दिनों के लिए रिफ्रेशर-कोर्स हेतु जाते हैं जहाँ कक्षा-कक्ष के बाहर के वैचारिक आदान-प्रदान उतने ही मूल्यवान होते हैं जितने कि कक्षा के अन्दर के। इसी तरह, कुछ लोग एक बार फिर से ताजादम होने के लिए पूरे साल का अध्ययन-अवकाश ले लेते हैं। इसके अलावा प्रशिक्षक स्कूलों में जाते हैं और शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम-शिक्षण करते हैं।

दो और स्थान हैं जहाँ सेवाकालीन प्रशिक्षण होता है लेकिन इन्हें वह पहचान और महत्व नहीं मिलते जिनके वे हकदार हैं – यानी स्टाफ-रूम और कक्षा। स्टाफ-रूम में शिक्षकों के बीच उस कक्षा के बारे में बहुत-सा अनौपचारिक आदान-प्रदान होता है जिसमें वे जाते हैं – या जिसे वे पिछले साल पढ़ाते थे। इस आदान-प्रदान में विद्यार्थियों के सीखने के तरीकों, उनकी क्षमताओं और सीखने की व्यक्तिगत शैलियों के बारे में बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी एकत्र होती है । कभी-कभी तो अन्तर्दृष्टि लिए हुए टिप्पणियाँ जो बहुत बार बस यूँ ही कर दी जाती हैं, शिक्षण की दिशा को बदल देती हैं। साथियों द्वारा कक्षा अवलोकन अवलोकित शिक्षक और अवलोकन करने वाले, दोनों के लिए लाभदायक हो सकता है।

हमारे इस अंक का लक्ष्य शिक्षक और शिक्षक-शिक्षक/प्रशिक्षक तक ही नहीं बल्कि नीति-निर्धारक और पर्यवेक्षक तक भी पहुँचना है – संक्षेप में कहें तो शिक्षा में दिलचस्पी लेने वाला कोई भी व्यक्ति इस लक्ष्य में शामिल है।

केन्द्रीय लेख शिक्षक-विकास की नीति और व्यवहार के बारे में हैं और विकल्प सुझाते हैं जबकि दो अन्य लेख पाठ्यचर्या और उसकी वास्तविकताओं की विस्तृत चर्चा करते हुए लैंगिक संवेदनशीलता और सेवापूर्व शिक्षक-तैयारी के मुद्दों की पड़ताल करते हैं। इसके बाद निजी और सरकारी, दोनों तरह की संस्थाओं

से सम्बद्ध, जमीन पर काम करने वाले लोगों के लेख हैं। शिक्षकों ने अपने व्यावहारिक अनुभवों की यादें ताजा की हैं। सिद्धान्त की रोशनी में काम करने की प्रथाओं की पड़ताल करते हुए आलोचनात्मक लेख हैं जबकि कुछ शिक्षकों ने सकारात्मक अनुभव भी रखे हैं जिनसे दूर-दराज इलाकों में काम करने वाले उनके साथियों के समर्पण की पुष्टि होती है, बावजूद इसके कि उनके पास परिष्कृत किस्म की कोई सहायक शिक्षण-सामग्री नहीं होती। दो लेख तो विशेषतौर से ऐसे शिक्षकों की बात करते हैं जिन्होंने अपने पेशे को अपने जीवन का काम बना लिया और 'शिक्षक' के अर्थ में नए आयाम जोड़ दिए। शिक्षकों में ज्ञानार्जन को प्रोत्साहित करने वाले स्थानों – जैसे कि शिक्षकों के लिए संसाधन बढ़ाने के मकसद से विकसित किए गए अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के टी. एल.सी. – के बारे में लिखा गया है, और सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के लिए पाठ्यचर्या संशोधन के बारे में भी।

कुल मिलाकर यह अंक सम्पादक-मण्डल समूह के लिए सीखने का एक बहुमूल्य अनुभव रहा है। हम अधिक बेहतरी के लिए आपकी टिप्पणियों और सुझावों का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि आप पाठक के तौर पर इन लेखों और उनकी सामग्री को अपने शिक्षण-कार्य के लिए लाभदायक पाएँगे।

प्रेमा रघुनाथ
सम्पादक, लर्निंग कर्व
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org
अनुवाद : रमणीक मोहन

इस अंक में

खण्ड क
परिप्रेक्ष्य

शिक्षक-शिक्षा और प्रबन्धन : नीति, व्यवहार और विकल्प 01
बी.एस. ऋषिकेश

अच्छे शिक्षक और ज्ञानार्जन 10
कृष्ण हरेश

शिक्षकों का मिलकर काम करना है प्रभावशाली 14
उमाशंकर पेरिओडी

शिक्षक और सरकार 17
रश्मि शुक्ला शर्मा

सेवा-पूर्व शिक्षक तैयारी – पाठ्यचर्या, व्यवहार और वास्तविकता 20
हृदयकांत दीवान

शिक्षक-शिक्षा में निष्क्रियता तथा न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता 26
पूनम बत्रा

कमरे में हाथी, जिसे हम देखना नहीं चाहते 30
विमला रामचन्द्रन

शिक्षक-अध्यापकों का सशक्तीकरण 35
मैथिलि रामचन्द

शिक्षकों के कार्य-सम्बन्धित विकास (शिक्षक-शिक्षा) की संरचना को पुनर्निर्मित करना : ज्ञान शाला के अनुभव से प्राप्त विचार 38
पंकज जैन

आचार्य से सेवा प्रदाता की भूमिका : एक अन्तहीन यात्रा 42
राजेश कुमार

इस अंक में

खण्ड ख
कार्यक्षेत्र से

मैं बहुत कुछ करना चाहता हूँ ! 47
कालू राम शर्मा

यदि हमारी मंजिल शिक्षकों की मुक्ति है तो वहाँ तक पहुँचने 49
का एक प्रमुख मार्ग मननशील अभ्यास है
एक शिक्षा कार्य कर्ता के व्यक्तिगत अनुभवों की अन्तर्दृष्टि
कुलदीप गर्ग

जिम्मेदार व्यक्ति : एक जुनूनी मुख्य अध्यापक की कहानी 53
मोहम्मद ज़फर

शिक्षक अधिगम केन्द्र : शिक्षकों के विकास के लिए एक प्रभावी स्थान 57
रुद्रेश एस.

शिक्षकों के सेवाकालीन पेशेवर विकास की पुनः संरचना : 60
अध्यापन विषयक विषय वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना
सौरव सोम

समकालीन भारत में विद्यालय के शिक्षक की भूमिका और चुनौतियाँ 64
आसिफ अख्तर

विकास के माध्यम से शिक्षकों का सशक्तीकरण 68
भवानी रघुनन्दन

केस स्टडी - सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास : एक अवसर या एक प्रगति 71
अंजू दास मानिकपुरी

इस अंक में

खण्ड ग
समीक्षा

क्रियात्मक शोध एवं चिन्तनशील अभ्यास 77
स्नेहा टाइटस तथा इन्दुमती एस.

पुस्तक समीक्षा : चिन्तनशील अध्यापक - 82
क्रियात्मक शोध के केस अध्ययन (The Reflective Teacher - Case Studies of Action Research)
लेखिका: नीरजा राघवन; ओरिएंट ब्लैक स्वान चैन्नई (2016), xii,पष्ठ 254, रु. 270
गुरुराज के. द्वारा समीक्षा

खण्ड क

परिप्रेक्ष्य

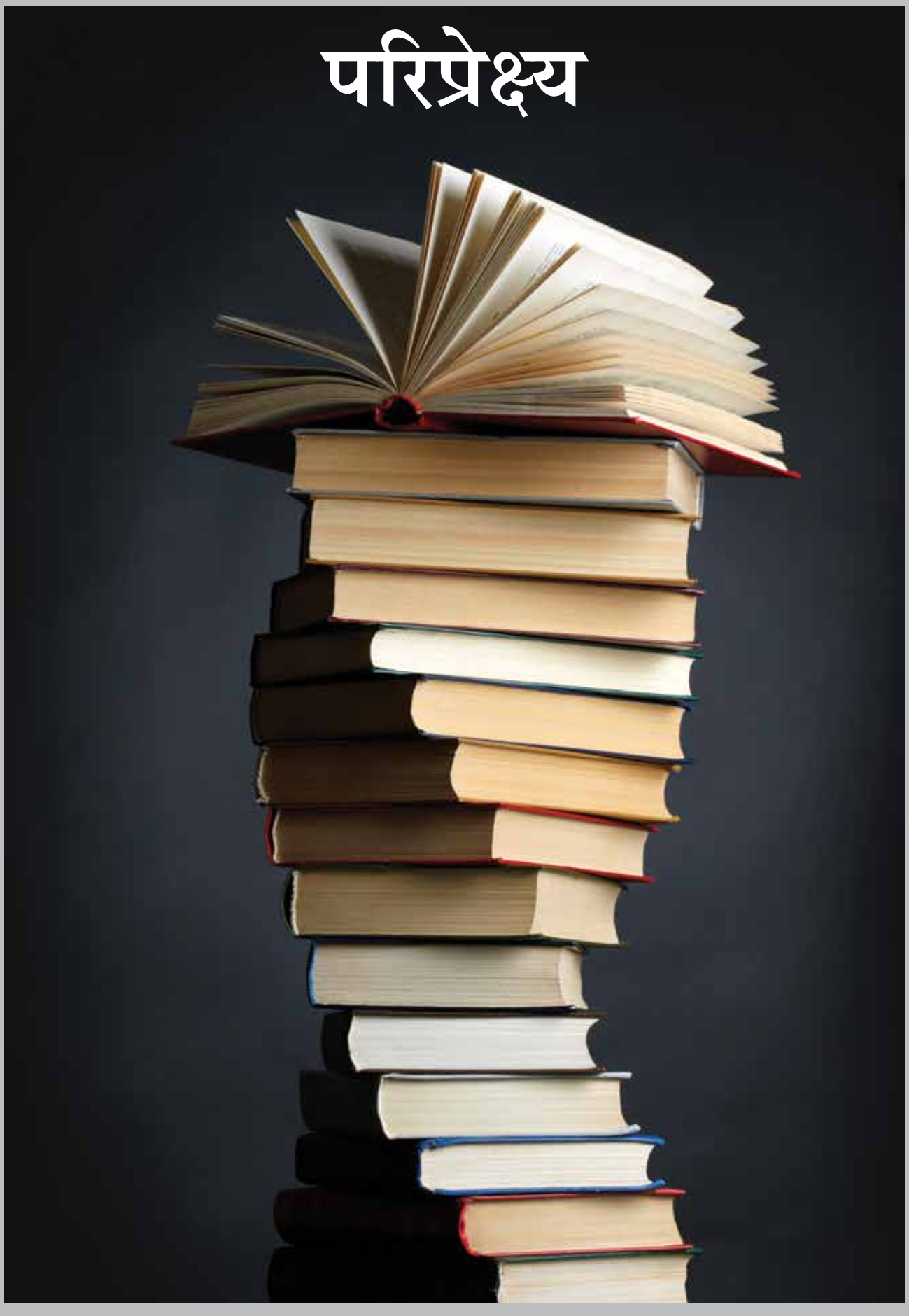

शिक्षक-शिक्षा और प्रबन्धन : नीति, व्यवहार और विकल्प

बी.एस. ऋषिकेश

शिक्षा का क्षेत्र चर्चाओं-संवादों से भरा है। ये आमतौर पर बेनतीजा होते हैं क्योंकि एक ऐसी पोजीशन ले ली जाती है जिसकी बुनियाद में अदूरदर्शी विचार और सीमित-संकुचित लक्ष्य होते हैं। दिक्कत यह भी है कि यह प्रमाण मिलने पर भी कि इसके विपरीत विचार अधिक कारगर तौर पर काम करता है, इस पोजीशन को पूरे जोर से पकड़कर रखा जाता है। लेकिन एक बात है जिस पर सभी हितधारक सहमत हैं – शिक्षा में बेहतरी के लिए प्रमुख पहलू 'शिक्षकों की गुणवत्ता' का है।

परिदृश्य को समझना

इस समय शिक्षा के काम में 85 लाख शिक्षक करीब 15 लाख स्कूलों में लगे हैं और वे कक्षा 1 से 12 तक के 26 करोड़ बच्चों के जीवन को प्रभावित करते हैं। इनमें से 50 लाख प्राथमिक स्कूलों में हैं।

तालिका 1 : भारत में स्कूल, प्रवेश-संख्या और शिक्षक

स्कूल-प्रकार	स्कूल	प्रवेश-संख्या/दाखिला	शिक्षक
सरकारी (अनुदान-प्राप्त समेत)	1196658	174765189	5808273
सब तरह के प्रबन्धन (सरकारी तथा निजी)	1522346	260596960	8691922

(स्रोत: U-DISE 2014-15)

किसी भी दृष्टि से यह एक बहुत बड़ी संख्या है। इन शिक्षकों ने इस देश के 18,000 से भी अधिक शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में से किसी एक से एक व्यावसायिक, पेशेवर सर्टिफिकेट या डिग्री हासिल की होगी। इन आँकड़ों से यह संकेत भी मिलता है कि हम देश की स्वतंत्रता के बाद से बहुत आगे तक पहुँच चुके हैं – तब इन संस्थानों की संख्या केवल 350 थी।

राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के प्रबन्धन की सर्वोच्च संस्था है। इसकी मुख्य भूमिका 'सम्पूर्ण देश में शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था को योजनाबद्ध और संयोजित तरीके से विकसित करना है'[1] और इसमें शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था को संचालित और मॉनिटर करना भी शामिल है। इसके लिए उनके पास शिक्षक-शिक्षा के तहत लगभग हर बात पर काम करने का अधिकार है जिसमें अनुमति देने से लेकर पाठ्यक्रम चलाने और शिक्षक बनने के लिए न्यूनतम योग्यताएँ तय करने तक के मुद्दे आते हैं।

इस लेख में शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र के समक्ष कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों को पकड़ने की कोशिश की गई है। इसमें शिक्षक-शिक्षा संस्थानों की हालत और शिक्षक-विकास से सम्बद्ध पहलुओं से लेकर शिक्षकों पर लागू होने वाली नीतियाँ तथा शिक्षक-प्रबन्धन के पक्ष शामिल हैं। सुधार के लिए मुख्य विचार लेख के प्रत्येक खण्ड के अन्त में दिए गए हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई अन्य विचार नहीं हो सकते लेकिन प्रत्येक खण्ड के तहत शिक्षक-शिक्षा में बेहतरी के लिए बुनियादी पहलुओं को चिह्नित करने की कोशिश की गई है।

शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ

शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की संख्या 18,000 से भी अधिक है। तालिका-1 के आँकड़ों से संकेत मिलता है कि कुल में से 80% सरकारी स्कूल हैं और कुल विद्यार्थियों तथा शिक्षकों का 65% इस व्यवस्था में हैं। लेकिन जब हम शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की संख्या का विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि यहाँ निजी क्षेत्र के खिलाड़ियों

शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ

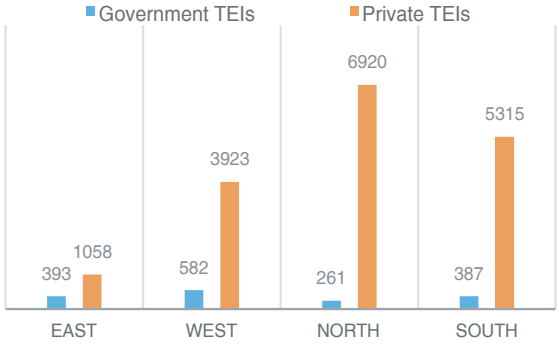

[1]NCTE at a Glance; Objectives http://ncte-india.org/ncte_new/?page_id=782

का बोलबाला है – देश भर की शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं का 90% से अधिक का प्रबन्धन निजी हाथों में है। संकेत यह मिलता है कि निजी क्षेत्र ने मौका हथिया लिया और सरकार स्कूली-शिक्षा से बढ़ती माँग की गति के साथ नहीं चल पाई। सरकार ने स्कूल तो बनाए लेकिन पर्याप्त शिक्षक मुहैया करवाने का ध्यान निजी हाथों पर छोड़ दिया गया और यह बात देश के सभी क्षेत्रों के लिए सत्य है। लेकिन हमें यह भी देखना चाहिए कि एक ही क्षेत्र के भीतर राज्यों में असमान वितरण है।

देश में कम ही अच्छी शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ हैं जो निजी होने के बावजूद व्यापारिक लाभ के लिए न हों; इनमें से बहुमत तो उनका है जिन्हें 'शिक्षा की दुकानें' कहा जा सकता है या 'दाम' के एवज में डिग्रियाँ बाँटने वाली एजेंसियाँ। मात्रा के साथ गुणवत्ता तो नहीं ही रखी गई।

दूसरी ओर सरकारी क्षेत्र में 571 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डी.आइ.ई.टी. - डाइट),106 शिक्षक-शिक्षा महाविद्यालय (सी. टी.ई.), 32 शिक्षा में विकसित अध्ययन संस्थान (आइ.ए.एस.ई.) और 33 राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (एस. सी.ई.आर.टी.)/राज्य शिक्षा संस्थान (एस.आइ.ई.) हैं जिनकी उत्पत्ति 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बाद 8वीं योजना के काल से है। शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में जो कुछ रचनात्मक काम हुआ है, वह इन संस्थानों में हुआ है लेकिन इन सभी में योगदान की गुणवत्ता में असमानता है। हालाँकि इन्हें भारत सरकार से समर्थित केन्द्रीय परियोजना के तहत स्थापित किया गया था, इनमें से कई संस्थाएँ खराब मूलभूत ढाँचा, बड़ी संख्या में खाली पड़े पद, उच्च गुणवत्ता के अकादमिक नतीजों की कमी आदि कई तरह की समस्याओं से ग्रस्त हैं — जिसकी वजह से किसी भी तरह की प्रगति होना असम्भव हो जाता है (अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, 2010)।

देश भर में फैली शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के हालात को उजागर करने वाले कई अध्ययन और रपटें हमारे बीच हैं। जस्टिस वर्मा कमीशन (जे.वी.सी.) की रिपोर्ट इनमें सबसे महत्वपूर्ण है।[2] 2012 में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त इस कमीशन की रिपोर्ट शिक्षक-शिक्षा यानी शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के केन्द्र में मौजूद बीमारी और बुरी हालत को उजागर करती है। यह न केवल महाराष्ट्र में शिक्षक-शिक्षा को नियन्त्रित करने में एन.सी.टी.ई. की असफलता का कटु चित्रण है बल्कि शिक्षक-शिक्षा के नाम पर जो कुछ भी पूरे मुल्क में है, उसका ही एक आईना है।

शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के सम्बन्ध में मुख्य, महत्वपूर्ण सुधार :

- *इस समय अस्तित्व में सब निजी शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की समीक्षा हो और नियमों का पालन न करने वाली तथा एक शिक्षक-शिक्षा संस्था कैसी होनी चाहिए, इस भावना को न समझने वाली संस्थाओं पर रोक लगे – दूसरे शब्दों में, शिक्षा की डिग्रियाँ बाँटती फिरती 'दुकानों' को बन्द किया जाए। लेकिन साथ ही, सरकारी शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को मजबूत करने की जरूरत है। जहाँ आवश्यकता हो, उन्हें अपग्रेड किया जाए, ताकि जो लोग शिक्षक-शिक्षा में अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें एक अच्छी शिक्षक-शिक्षा संस्था में ऐसा कर पाने का मौका मिले।*

पेशेवर विकास के विभिन्न तौर-तरीकों के उदाहरण

- *शुरुआती दौर का प्रशिक्षण – अनुभवी शिक्षकों, प्राचार्यों या विशेषज्ञों को नए शिक्षकों की कक्षाओं के अवलोकन के लिए प्रशिक्षक के तौर पर चिह्नित किया जा सकता है।*
- *समकक्षों से सीखना – स्कूल का नेतृत्व करने वालों द्वारा सारणियों को इस प्रकार सुनियोजित किया जाए कि शिक्षक काफी समय इकट्ठे योजना बनाने में, एक – दूसरे की कक्षाएँ देखने और प्रतिक्रिया देने में बिताएँ।*
- *स्कूल से बाहर सीखने के समुदाय – स्वैच्छिक पेशेवर-शिक्षक विकास नेटवर्क (उदाहरण के लिए राजस्थान, उत्तराखण्ड और कर्नाटक) तथा आइ.सी.टी.-समर्थित ऑनलाइन विषय-शिक्षक समूह (उदाहरण के लिए – आर.एम.एस.ए. कर्नाटक)।*
- *संसाधन केन्द्र – जिला, खण्ड और क्लस्टर केन्द्र प्रिंट तथा डिजिटल, दोनों तरह के भरपूर संसाधनों समेत पाठ्यक्रम-सामग्री के संग्रहालय की भूमिका निभाएँ - वे शिक्षकों को कक्षाओं के लिए तैयार होने और स्व-निर्देशित अध्ययन पर काम के लिए तैयार होने में मदद करें।*
- *प्रदर्शन-कक्षाएँ – अपने विषय और शिक्षा-शास्त्र में निपुण शिक्षक अन्य शिक्षकों के लिए प्रदर्शन-कक्षाएँ लगाएँ। इस प्रकार अन्य शिक्षक अवलोकन करते हुए उनसे सीख सकते हैं। इस तरह की कक्षाओं के संग्रहण और उन्हें सब शिक्षकों के साथ साझा करने के लिए आई.सी.टी. (सूचना सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी) का प्रयोग किया जा सकता है।*
- *शोध/उच्च अध्ययन के लिए अवकाश; सेमिनार, भ्रमण, पेशेवर शोध-पत्रिकाओं तथा ई-ज्ञान समुदायों तक पहुँच आदि।*

[2] *JVC Report mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/JVC%20Vol%201.pdf*

शिक्षक-शिक्षा और शिक्षकों/शिक्षक-शिक्षकों का पेशेवर विकास

शिक्षण एक पेशा है और शिक्षक पेशेवर व्यवसायी हैं। इसलिए इस पेशे में एक विशेष स्तर बनाकर रखने की जरूरत है। लेकिन एक शिक्षक के लिए योग्यता की शर्तें इसका संकेत नहीं देतीं। हमारे मुल्क में एक प्राथमिक स्कूल में पढ़ाने के लिए आवश्यक बुनियादी सत्यापन डिप्लोमा का है जो कक्षा-12 के बाद दो साल की पढ़ाई करके प्राप्त होता है, और जिसे कई नामों से जाना जाता है लेकिन सबसे प्रचलित डी.एड. (शिक्षा में डिप्लोमा) है। और किसी भी माध्यमिक (सैकण्डरी) स्कूल में शिक्षक होने के लिए आपको बी.एड. (शिक्षा में स्नातक) होना होता है जो कुछ ही समय पहले तक स्नातक होने के बाद मात्र 9 महीनों में हासिल किया जा सकता था! 2014 के एन.सी.टी.ई. के संशोधनों[3] के तहत यह अवधि बढ़ाकर दो साल कर दी गई। दुर्भाग्य से हमारे अधिकतर प्री-प्राइमरी उपक्रमों के लिए 'शिक्षक' बनने के लिए किसी भी योग्यता की आवश्यकता नहीं है!

देश में चल रहे शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों की विषयवस्तु में न भी जाएँ तो उनके समयकाल से ही उनके अपर्याप्त होने की बात दिखाई दे जाती है – कुछ ही समय पहले तक, नौ महीनों के पाठ्यक्रम से प्राप्त पेशेवर योग्यता 15 साल के बच्चों को पढ़ाने के लिए आवश्यक थी! एन.सी.टी.ई. को कितना समय लगा बी.एड. और एम.एड., दोनों के समयकाल को दो साल का करने में (जब कि. शिक्षक-अध्यापक बनने के लिए एम.एड. अनिवार्य है)। न केवल यह कि इतने कम पाठ्यचर्या-सम्बन्धी सुधार के साथ बी.एड. प्रोग्राम के समयकाल में बढ़ोतरी अपर्याप्त है, बल्कि यह किसी भी तरह का वांछित बदलाव ला पाने के लिए पूर्ण तौर पर बेअसर है।

शिक्षक-तैयारी की गुणवत्ता में बुनियादी परिवर्तन के बिना शिक्षक-शिक्षा में कोई भी लम्बे दौर का बदलाव नहीं होगा। इसमें पाठ्यचर्या, समयकाल और संस्थागत गुणवत्ता शामिल हैं। इस क्षेत्र में जरूरी मुख्य सुधार आवश्यक योग्यता को तथा शिक्षक-शिक्षा के समयकाल को सुव्यवस्थित करना है :

- *देश भर में, शिक्षक बनने के लिए बस एक ही विकल्प मुहैया करवाएँ – विषय (भाषा, गणित आदि) तथा ग्रेड-स्तरीय विशिष्टताओं (प्रारम्भिक शिक्षण, माध्यमिक शिक्षण तथा शुरुआती शिशु शिक्षा) के विकल्पों के साथ चार-वर्ष का एकीकृत शिक्षक-शिक्षा प्रोग्राम।*

वर्तमान सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा भी कार्यरत शिक्षकों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती। शिक्षकों को मुहैया करवाई गई अकादमिक सहायता की गुणवत्ता आशा से बहुत कम है – संसाधनों की कमी, कई तरह की व्यावसायिक सीमाओं तथा काम में लगाई गई मेहनत की कमी की वजह से।

इस सम्बन्ध में सुधार का मुख्य विचार यह है :

- *सेवाकालीन कार्यक्रमों के ध्यान के केन्द्र को बदलते हुए शिक्षक को प्रशिक्षण-कार्यक्रमों का चुनाव करने की छूट देना। सम्बद्ध शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ एक साल में पाठ्यक्रमों का कैलेण्डर मुहैया करवाएँ जिसमें से शिक्षक अपने लिए चुनाव कर पाएँ। इसी तर्ज पर शिक्षकों को अध्ययन के लिए छुट्टी, फेलोशिप, शोध के लिए मदद, अध्यापकगण के आदान-प्रदान और चुनाव की सख्त शर्तों के आधार पर चिह्नित संस्थाओं में पेशेवर विकास के हिस्से के तौर पर नई बातों से परिचय सम्बन्धी भ्रमण के लिए भेजना चाहिए।*

शिक्षक-शिक्षक की गुणवत्ता

शिक्षकों की गुणवत्ता में बहुत हद तक तथा लम्बे दौर तक रहने वाली बेहतरी के लिए यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक-शिक्षकों की गुणवत्ता को बेहतर और दीर्घायु बनाया जाए। शिक्षक-शिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार के लिए ये बातें शामिल होंगी – शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (2009) के आधार पर एम.एड. कार्यक्रम की पाठ्यचर्या, समयावधि और संरचना में फेर-बदल और नयापन लाना, तथा शिक्षक-शिक्षकों के स्वैच्छिक पेशेवर नेट्वर्कस की स्थापना जिनमें व्यावसायिक आदान-प्रदान तथा विकास के लिए भौतिक और आइ.सी.टी. समर्थित वर्चुअल (आभासी) मंच शामिल हों।

शिक्षक-शिक्षा तैयारी में बेहतरी के लिए पहला कदम तो एम.एड. कार्यक्रम की अवधि को बढ़ाकर दो साल कर दिए जाने से उठा लिया गया है। पूरे देश के सभी राज्यों में इस तरह के फेर-बदल वाले प्रोग्राम को चलाने में सक्षम कम से कम एक सौ ऐसी संस्थाएँ चिह्नित की जानी चाहिए कि वे ऐसे कार्यक्रमों को साकार रूप दें।

शिक्षक-शिक्षकों के सम्बन्ध में सुधार का मुख्य विचार यह है:

- *बारहवीं पंचवर्षीय योजना की सिफारिश के अनुसार प्रत्येक राज्य में कम से कम 500 अलग से दिखाई देने वाले शिक्षक-शिक्षकों का समूह और शिक्षक-शिक्षकों के लिए एक अलग कर्मचारी-दल विकसित किया जाए।*

शिक्षक-प्रबन्धन : प्रथाएँ और नीतियाँ

1950 के दशक से लगभग सभी महत्वपूर्ण रिपोर्टों ने व्यवस्था में शिक्षक-प्रबन्धन से सम्बन्धित संकेतों पर ध्यान केन्द्रित करने के महत्व पर बल दिया है। यह नीति सम्बन्धी दस्तावेजों में लगातार चलता विषय है, वह चाहे 1964 का राष्ट्रीय शिक्षा आयोग हो या

[3] *NCTE Act 2014 ncte-india.org/ncte_new/?page_id=910*

फिर 1968, 1986 और 1992 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में 'शिक्षक' पर एक अलग खण्ड है।

शिक्षक स्वायत्तता की आवश्यकता

शिक्षक सीधे तौर पर उन दिक्कतों को अनुभव करता है जिनका सामना बच्चों को सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई बाधाओं से दो-चार होते हुए करना पड़ता है। स्कूल से बाहर के प्रत्येक बच्चे को एक विद्यार्थी के रूप में परिवर्तित करना होगा। केन्द्र, राज्य या जिला स्तर पर तय किए गए लक्ष्यों की बजाए प्रत्येक स्कूल और शिक्षक को अपनी दृष्टि से सोचने तथा शैक्षिक गतिविधियों की योजना बनाने की इजाजत होनी चाहिए। लेकिन असल में तो शिक्षक-प्रशिक्षण भी केन्द्रीय स्तर से सर्व शिक्षा अभियान के तहत संचालित है। स्कूलों और शिक्षकों को स्वायत्तता पृथकता में, बिल्कुल अलग से नहीं मिल सकती। इसके लिए राज्य-स्तरीय संस्थाओं की स्वायत्तता से शुरू होकर 'डाइट' जैसी जिला-स्तरीय संस्थाओं तक अलग-अलग स्तरों की और अलग-अलग तरह की व्यवस्थागत स्वायत्तता की जरूरत होगी। इसी तरह के बड़े बदलाव स्कूलों और शिक्षकों के स्तर पर आवश्यक जमीनी परिवर्तनों की लिए गुंजाइश बनाएँगे।

शिक्षक भर्ती, पदोन्नतियाँ एवं तबादले

इस समय देश में प्रशिक्षित शिक्षकों का जबरदस्त अभाव है और मौजूदा शिक्षकों में उपयुक्त गुण नहीं हैं।

सम्पूर्ण देश के लिए प्राइमरी स्तर पर औसत विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात 24:1 है, जो बहुत ही अच्छा है, और उच्च-प्राइमरी स्तर पर भी इतना ही अच्छा, 17:1 है (यू-डी.आइ.एस.ई 2014-15); उत्तर प्रदेश में यह स्वीकार्य स्तर का, यानी 39:1 – और यह पूरे देश में सबसे अधिक है! लेकिन यह भी सब जानते हैं कि ये आँकड़े सही तस्वीर नहीं दर्शाते। कई स्कूल हैं जहाँ विद्यार्थियों की संख्या अत्यधिक है और शिक्षक बहुत ही कम – या फिर इसका उलट भी है। देश भर के एक लाख से भी अधिक स्कूल एकल-शिक्षक संस्थाएँ हैं (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट, 2014-15)। शिक्षकों को बहुत-सा ऐसा काम करना पड़ता है जो स्कूल से सम्बद्ध नहीं होता। इस बात को ध्यान में रखें तो कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के साथ शिक्षकों का बिताया गया समय बहुत ही अपर्याप्त है।

विभिन्न राज्यों में प्राइमरी स्तर पर एकल विद्यालयों के प्रतिशत में बहुत अधिक अन्तर हैं : अरुणाचल प्रदेश (48.8%), गोवा (39.5%), राजस्थान (25%), आंध्र प्रदेश (24%), कर्नाटक (14.9%), हिमाचल प्रदेश (11.2%), बिहार (12.3%) तथा ओडिशा (9.2%)।

स्रोत: डी.आइ.एस.ई. 2013-14

इसके अलावा विशिष्ट विषयों के लिए शिक्षकों की घोर कमी है, विशेषतौर से दूर-दराज के और जनजातीय इलाकों में। साथ ही, माध्यमिक स्तर पर विज्ञान, गणित और भूगोल के शिक्षकों की पूरे देश में कमी है, जो निकट भविष्य में और प्रखर होने वाली है। विद्यार्थियों की कमी की वजह से विज्ञान में स्नातक प्रोग्राम बन्द हो रहे हैं, जबकि यही वह रास्ता है जिसके माध्यम से हम माध्यमिक स्तर के विज्ञान और गणित शिक्षक विकसित करते हैं। अगर यह 'पाइपलाइन' बन्द हो जाती है तो माध्यमिक स्तर के लिए विज्ञान और गणित के योग्य शिक्षकों की उपलब्धता का संकट गम्भीर तौर पर गहरा जाएगा।

एक ओर तो नए शिक्षकों का बहुत अभाव है, दूसरी ओर मौजूदा शिक्षकों में बड़ा प्रतिशत ऐसे शिक्षकों का है जिनमें गुणवत्ता नहीं है और इसके साथ ही मुद्दा है भाई-भतीजावाद का, जिसने देश भर में शिक्षक-भर्ती और प्रबन्धन की प्रक्रियाओं को संचालित किया है। हम अकसर सरकारी शिक्षक की नौकरी के 'रेट' के बारे में सुनते हैं। यह स्कूल के स्तर और उसके स्थान पर निर्भर करता है और आपकी शैक्षिक योग्यता की इसमें कोई भूमिका नहीं रहती।

अध्ययनों (रामचन्द्रन आदि, न्यूपा, 2015) ने दिखाया है कि पूरे देश के स्तर पर मौजूदा प्रथाओं में बहुत अन्तर हैं और राज्यों में अब भी अस्थाई कदम ही उठाए जाते हैं। लेकिन करीब एक दशक से कुछ राज्य सरकारों ने भाई-भतीजावाद समेत हर तरह के भ्रष्टाचार से छुटकारा पाने के लिए पहलकदमियाँ ली हैं जिनके चलते शिक्षक-प्रबन्धन प्रक्रिया बहुत हद तक व्यवस्थित हुई है। दक्षिणी राज्यों ने इस मामले में नेतृत्व दिया है और शिक्षक-भर्ती तथा प्रबन्धन प्रक्रियाओं को बहुत पारदर्शी बना दिया है (कर्नाटक के उदाहरण के लिए देखें बॉक्स)। मगर इन बेहतर प्रथाओं का सब राज्यों ने अनुसरण नहीं किया और जब तक ऐसा नहीं होता, तब

शिक्षा अधिकार कानून की सिफारिश थी कि सब नए शिक्षकों की भर्ती के लिए शिक्षक योग्यता परीक्षा (टी.टी.ई.– टेट) हो। कर्नाटक जैसे राज्यों में भर्ती की प्रक्रिया के हिस्से के तौर पर सार्वजनिक प्रवेश परीक्षा (कॉमन एन्ट्रेंस टेस्ट – सी.ई.टी.) को लागू किए जाने की व्यवस्था पहले से कायम थी। उदाहरण के लिए, इसी उद्देश्य से एक केन्द्रीय प्रवेश कक्ष (सेन्ट्रल एड्मिशन सेल) बनाया गया जो न केवल शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों के लिए दाखिलों को देखता था बल्कि शिक्षकों की भर्ती परीक्षाओं को भी कार्यान्वित करता था। इन योग्यता परीक्षाओं के बाद 'परामर्श (काउंसलिंग)' होता था और सी.ई.टी. में प्राप्त रैंक के आधार पर वह स्थान/स्कूल तय होता था जहाँ स्थापित शर्तों के भीतर रहते हुए शिक्षक को पहला कार्यस्थल मिलता था।

तालिका 2: कर्नाटक में शिक्षक-तबादले के लिए नियम

नियम	प्राथमिक स्कूल शिक्षक	माध्यमिक स्कूल शिक्षक
वरीयता-युनिट	जिला स्तरीय	डिवीजन स्तरीय
सक्षम अधिकारी	ब्लॉक शिक्षा अधिकारी (बी.ई.ओ.) (नियुक्ति के अधिकारी)	डिप्टी डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन (डी.डी.पी.आई.); जिला स्तरीय (नियुक्ति करने वाले अधिकारी)
	डिप्टी डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन (डी.डी.पी.आई.) (चुनाव करने वाले अधिकारी)	जॉएंट डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन (जी.डी.पी.आई.); डिवीजन स्तरीय (चुनाव करने के अधिकारी)
तबादलों के द्वारा खाली पड़े स्थानों/पदों को भरने का हिसाब	पी.टी.आर.(विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात) = 40	विषयवार स्टाफ
कम्प्यूटरीकृत परामर्श	हाँ	
तबादले के लिए ऊपरी सीमा	वरीयता-युनिट के भीतर रहते हुए कर्मचारीगण का 8%*; वरीयता-युनिट के बाहर कर्मचारीगण का 1%	

**यह 2015 तक 5% था जब इसे अधिनियम में संशोधन करके 8% कर दिया गया।*

स्रोत : सी.बी.पी.एस 2015 से उद्धृत।

तक जो मुद्दे इस क्षेत्र के लिए परेशानी का कारण बनते रहे हैं, और जिनका सीधा असर शिक्षकों के उत्प्रेरण पर पड़ा है, उनका नकारात्मक प्रभाव बना रहेगा और नतीजे के तौर पर स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता भी प्रभावित रहेगी।

तालिका-2 में प्रदर्शित कर्नाटक के शिक्षकों की स्थानान्तरण-प्रक्रिया की ही तरह स्पष्ट नियम तय किए जाएँ तो यह शिक्षक-प्रबन्धन के क्षेत्र में गड़बड़ को ठीक करने की ओर पहला कदम होगा। एक बार शिक्षकों का विश्वास जीत लिया जाता है और शिक्षक-समुदाय को लगता है कि प्रक्रिया में कोई अनुचित साधन प्रयोग नहीं किए गए हैं तो परिवर्तन की शुरुआत हो जाएगी और मुश्किल सुधारों के लिए सकारात्मक भावना को सही दिशा दी जा सकेगी।

शिक्षकों के वेतन

आमतौर पर यह माना जाता है कि सार्वजनिक स्कूली व्यवस्था के शिक्षक सरकारी कर्मचारियों में सबसे कम वेतन प्राप्त करने वालों में से हैं। लेकिन आँकड़ों से दूसरे ही संकेत मिलते हैं। जैसा कि राज्य सरकारों द्वारा दावा किया जाता है, वर्तमान वेतन छठे वेतन आयोग के आधार पर और कुछ मामलों में सम्बद्ध राज्य आयोगों के

(चुनिन्दा राज्यों में) 'हाथ में आने वाला' वेतन, छठे वेतन आयोग से पहले और बाद में

	छठे वेतन आयोग से पहले		छठे वेतन आयोग के बाद	
	(न्यूनतम)	(अधिकतम)	(न्यूनतम)	(अधिकतम)
सरकारी प्राइमरी स्कूल शिक्षक	8697	9630	13762	21045
पी.एस.टी. 10 साल का अनुभव/मुख्य अध्यापक	11775	15635	20270	39831
डाइट प्राध्यापक/एम.ई.ओ./बी.ई.ओ.	11722	14762	22762	55082
डाइट प्रिंसिपल/डी.ई.ओ.	15635	35034	27547	60802
महिला/पुरुष डाकिया	2750		4700	18000
पी.एच.सी. नर्स	8427	19568	16298	46333
पुलिस कॉन्स्टेबल	6091	13691	10655	31499

	छठे वेतन आयोग से पहले		छठे वेतन आयोग के बाद	
	(न्यूनतम)	(अधिकतम)	(न्यूनतम)	(अधिकतम)
लाइनमैन (बिजली विभाग)		11228		16983
ग्रामीण अकाउन्टेन्ट			5200	20200
एस.एम.(स्टेशन मास्टर) – रेल्वे (गाँव स्तर पर)			14350	33000
बैंक कर्मचारी	8118		11495	28000
पोस्ट मास्टर				26076
पी.एच.सी. डॉक्टर	9809	33203	26108	59287
पुलिस इंस्पेक्टर	9090	21637	18760	49919
बैंक मैनेजर	18450		20359	35100

**अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा धरातल पर अपने कार्यस्थलों से एकत्रित प्राथमिक आँकड़ों के उच्चतम और न्यूनतम बिन्दुओं पर आधारित।*

 # ये आँकड़े कुल वेतन (मूल + महँगाई भत्ता + गृह किराया भत्ता) का प्रतिनिधि हैं।

^ ऐसे राज्य भी हैं जहाँ वर्तमान प्रारम्भिक वेतन ऊपर कथित न्यूनतम से भी कम (उदाहरण के लिए तमिल नाडु: 15,000) और ऊपर कथित अधिकतम से अधिक है (उदाहरण के लिए पंजाब 36,000)। स्रोत: राज्यों की रिपोर्टें –भारत में शिक्षकों के काम की स्थितियाँ।

आधार पर तय किए जाते हैं। औसतन, प्रवेश के स्तर पर सरकारी प्राइमरी स्कूल शिक्षक को लगभग 20,000 रुपये प्रति माह मिलते हैं और करीब 10 साल के अनुभव के बाद लगभग 32,000 रुपये प्रति माह। जिस बैण्ड में शिक्षकों का वेतनमान है, वह पुलिस कॉन्स्टेबल, बिजली कम्पनी के लाइनमैन, ग्रामीण अकाउन्टेन्ट, बैंक कर्मचारियों और स्टेशन मास्टरों से ऊपर है और अपने व्यावसायिक जीवन के अन्त तक पहुँचने पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में डॉक्टर, नर्स, पुलिस इन्स्पेक्टर और बैंक मैनेजर ही ऐसे व्यवसायी हैं जिन्हें एक अनुभवी शिक्षक/ मुख्य अध्यापक से अधिक वेतन मिलता है। यहाँ दी गई तालिका से इस बात पर और अधिक रौशनी डालती है।

इसका अर्थ है कि शिक्षकों के वेतन पर कम ही ध्यान देने की जरूरत है। सरकार ने सातवें वेतन आयोग की भी घोषणा की है जो वेतनों को और भी बढ़ाता है। यह भी सम्भावना है कि जिन राज्यों ने अब तक छठे वेतन आयोग को लागू नहीं किया है वे उसी के अनुरूप या सातवें आयोग से भी बेहतर स्तर पर अपने वेतन आयोग बैठाएँगे।

शिक्षक-प्रबन्धन के सम्पूर्ण क्षेत्र में सुधार का मुख्य विचार यह है:

- *शिक्षक प्रबन्धन को बहुत पारदर्शी बनाया जाए और शिक्षकों को बहुत स्वायत्तता दी जाए – कम से कम कक्षा के भीतर और पाठ्यक्रम के आदान-प्रदान के लिए तो जरूर। भर्ती की एक पारदर्शी नीति तथा तबादलों और पदोन्नति के लिए स्पष्ट तथा उचित नियम स्थिति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह कुछ राज्यों में हुआ है और अन्य राज्यों में ऐसा ही करने की जरूरत है।*

शिक्षक-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय परिषद (एन.सी.टी.ई.) पर पुनर्विचार और पुनर्दृष्टि की आवश्यकता

पिछले एक दशक में राज्य और उसके नीचे के स्तर की महत्वपूर्ण संस्थाओं ने तो नहीं, लेकिन राष्ट्रीय स्तर की अधिकतर संस्थाओं ने बहुत हद तक अपनी भूमिका निभाई है। लेकिन यह बात शिक्षक-शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए स्थापित नियामक संस्था यानी एन.सी.टी.ई. के बारे में नहीं कही जा सकती।

एन.सी.टी.ई. को इस समय एक जाँच-परीक्षण से सम्बद्ध, मूलभूत ढाँचे की आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करने वाली नियामक संस्था के रूप में देखा जा रहा है न कि शिक्षक-शिक्षा में पेशेवर, व्यावसायिक मापदण्डों, अकादमिक कड़ाई और पाठ्यचर्या सम्बन्धी नवाचार पर विचार को नेतृत्व देने वाली संस्था के रूप में। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत में शिक्षा को बेहतर करने के लिए शिक्षक-शिक्षा में बेहतरी लाना केन्द्र में होना होगा और उसके लिए पूरे पैमाने पर नीचे से व्यवस्था, पाठ्यचर्या और क्रियाकलापों की पुनर्रचना की जरूरत होगी। इस तरह के सम्पूर्ण फेर-बदल के लिए एक 'चैम्पियन' की जरूरत है न कि 'इंस्पेक्टर' की!

असल में तो एन.सी.टी.ई. इंस्पेक्टर के तौर पर भी असफल रही है। उसके कार्यों में से एक "शिक्षक-शिक्षा के व्यापारीकरण को रोकने

के लिए सब आवश्यक कदम उठाना" है ।[4] लेकिन करीब एक दशक से शिक्षक-शिक्षा में हुए व्यापक निजीकरण से संकेत मिलता है कि वह न केवल व्यापारीकरण को रोकने में बल्कि देश भर में शिक्षक-शिक्षा के नाम पर दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता को नियमित और उसका परीक्षण करने में असफल रही है ।

इसलिए एन.सी.टी.ई. को एक बार फिर शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं पर नजर रखने की अपनी भूमिका पर दृष्टिपात करना चाहिए और शिक्षक-शिक्षा पर चल रही नई सोच के साथ तालमेल में रहना चाहिए जिसमें प्रस्तावित है कि सब शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ बहु-विषयक ज्ञानार्जन के माहौल में रहें और उन्हें विश्वविद्यालयों के तहत ले आया जाए । एक बार यह हो जाता है तो शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को विश्वविद्यालयों की कार्यप्रणाली को नियन्त्रित करने वाले विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) के माध्यम से संचालित किया जा सकता है । इसकी रोशनी में महत्वपूर्ण हो जाता है कि एन.सी.टी.ई. यू.जी.सी. के प्रयासों को ही न दोहराए बल्कि अन्य रचनात्मक गतिविधियों पर ध्यान केन्द्रित करे ।

ए.सी.टी.ई. के सन्दर्भ में सुधार का मुख्य एजेण्डा :

- *एन.सी.टी.ई. या तो इन सब बातों की जोश के साथ पैरवी करे या फिर उसे बन्द कर दिया जाए । इस सन्दर्भ में एन.सी.टी.ई. के पास दो विकल्प हैं : (क) वह एक सहायक की भूमिका निभाए और व्यापक अकादमिक निर्देश विकसित करने के माध्यम से गुणवत्ता में मददगार हो : उदाहरण के लिए – तरह-तरह के शिक्षकों के लिए दिशा-निर्देश (न कि नियम) और विश्वविद्यालयों की सहायता हेतु शिक्षक-शिक्षा की पाठ्यचर्या-रूपरेखाएँ विकसित करे तथा/या एन.ए.ए.सी. (नैक) के तहत शिक्षक-शिक्षा के लिए स्तर-प्रमाणीकरण की संस्था बन जाए; (ख) यदि उपरोक्त बात सम्भव न हो तो वह अस्तित्वहीन हो जाए और शिक्षक-शिक्षा का स्वामित्व विश्वविद्यालयों को सौंप दे और नियंत्रण की कार्यप्रणाली यू.जी.सी. को सौंप दे ।*

कोठारी आयोग ने सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 6% शिक्षा के लिए लगाए जाने की सिफारिश की थी लेकिन अब जब हम उस आयोग की रिपोर्ट की 40वीं वर्षगाँठ मना रहे हैं, हम मुश्किल से 4% का आँकड़ा नियमित रूप से पार कर पाए हैं । हमने (मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आँकड़ों के मुताबिक) अब तक 1952 में शिक्षा पर जी.डी.पी. व्यय का 1% से भी कम से ले कर 4% से कुछ अधिक तक का सफर तय किया है (ए.बी.ई.; एम.एच.आर.डी. 2015) लेकिन यह हर साल घटता-बढ़ता रहता है और अब भी बहुत ही अपर्याप्त है ।

शिक्षक-शिक्षा को वित्तीय मदद

कोठारी आयोग तथा उसके बाद शिक्षा से सम्बद्ध सभी आयोगों और व्यक्तियों ने स्पष्ट तौर पर कहा है कि यदि हमें घोषित शैक्षिक लक्ष्यों तक पहुँचना है तो उन उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए राज्य को उनके अनुरूप और अनुपात में निवेश करना होगा । शिक्षा के लिए अपर्याप्त धन-राशि ने शिक्षक-शिक्षा को प्रभावित किया है क्योंकि शिक्षा के सम्पूर्ण बजट का एक बहुत छोटा प्रतिशत ही शिक्षक-शिक्षा के काम आया है ।

बारहवीं योजना में शिक्षक-शिक्षा

मार्च 2012 में केन्द्रीय सरकार ने बारहवीं योजना के लिए शिक्षक-शिक्षा परियोजना के संशोधन को अनुमोदित किया । योजना ने शिक्षक-शिक्षा परियोजना में बहुत बड़े परिवर्तन की सिफारिश करते हुए ग्यारहवीं योजना में बजट को 350 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष से बढ़ाकर 1400 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष कर दिया है । परियोजना संस्थागत है और इसमें एस.सी.ई.आर.टी., डाइट, सी.टी.ई., आइ.ए.एस.ई. तथा अभी नई बनी बी.आई.टी.ई. (ब्लॉक इंस्टिट्यूट ऑफ टीचर एजुकेशन) संस्थाओं के लिए धन निर्धारित है और काम के केन्द्र में पहुँच बनाना, गुणवत्ता तथा इन सब संस्थाओं के लिए एक विस्तारित भूमिका है (मसलन, डाइट अब माध्यमिक क्षेत्र में भी काम करना शुरू करेंगी) । साथ ही शिक्षक-शिक्षकों का एक कार्यकर्ता-समूह बनाने, शिक्षकों/शिक्षक-शिक्षकों के पेशेवर विकास, इन सब संस्थाओं के आर-पार प्रौद्योगिकी और सहक्रियाओं/जुड़ावों को एकीकृत करने पर भी ध्यान रहेगा ।

शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र की मौजूदा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण है कि इस सबको और अधिक बढ़ावा मिले । शिक्षक-शिक्षा से जरूरत और माँग केवल यह नहीं है कि शिक्षा का अधिकार के तहत प्राथमिक स्तर पर अभिभावक-शिक्षक अनुपात

इन सालों में शिक्षक-शिक्षा के लिए धन (एम.एच.आर.डी., 2012)

(क) *ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के पिछले कुछ सालों (2010-11) से शिक्षक-शिक्षा का सालाना बजट 500 करोड़ रुपये रहा है (500 करोड़ रुपयों में से 146.07 करोड़ रुपये 8 जनवरी 2012 तक जारी किए गए थे; और 500 करोड़ रुपयों का व्यय 2013-14 के लिए प्रस्तावित है)* ***(ख)*** *इससे पहले की परियोजना में एस.सी.ई.आर.टी. को सम्पूर्ण योजना-काल के लिए खर्च के सभी हिस्सों हेतु 2 करोड़ रुपये दिए गए थे, जो प्रस्तावित परियोजना में केवल मूलभूत ढाँचागत व्यवस्था की बेहतरी के लिए मुहैया रकम है* ***(ग)*** *इसी तरह, अन्य संस्थाओं के लिए भी धनराशियाँ निर्धारित की गई हैं ।*

[4] *NCTE at a Glance; Functions of the Council http://ncte-india.org/ncte_new/?page_id=782*

के नियमों को पूरा करने के लिए आवश्यक संख्या में शिक्षक हों और माध्यमिक स्तर पर उनकी कमी को पूरा किया जाए, बल्कि आवश्यकता शिक्षकों और शिक्षक-शिक्षकों की गुणवत्ता को बढ़ाने की भी है। इसके लिए न केवल मौजूदा शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की सामर्थ्य में विस्तार की आवश्यकता है (मूलभूत ढाँचे और मानव संसाधन, दोनों स्तर पर), बल्कि देश भर में स्कूल्स ऑफ एजुकेशन स्थापित करने की भी जरूरत है। और आवश्यकता शिक्षक-शिक्षा को उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में ले जाते हुए उसे विश्वविद्यालयों के तहत लाने की भी है। इसका अर्थ है कि उच्च-शिक्षा पर व्यय को काफी बढ़ाना होगा।

शिक्षा के स्कूल स्थापित करने का महत्व

शिक्षा के क्षेत्र के लिए उपलब्ध होने वाले पेशेवरों को पैदा करने के लिए एक मुख्य समाधान केन्द्रीय सरकार द्वारा विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्कूल स्थापित करने की योजना बनाना और लागू करना है। इस आवश्यकता के पैमाने को ध्यान में रखें तो प्रत्येक राज्य में कम से कम एक शिक्षा का स्कूल स्थापित करना होगा, और बड़े राज्यों के लिए एक से अधिक। उद्देश्य होना चाहिए कि स्नातक होकर निकलने वाले विशेषज्ञों की संख्या 5000 से 10,000 पेशेवरों के बीच तक हो जाए। यह एक लम्बी अवधि का काम है,जिसमें कुछ गम्भीर वित्तीय प्रतिबद्धता की आवश्यकता रहेगी।

लेकिन अगर हम अपने व्यवस्थागत सुधारों के बारे में गम्भीर हैं, तो इस मामले में किसी भी तरह का असमंजस नहीं होना होगा। सुधार का मुख्य विचार यह है :

- *बजट में बढ़ोतरी के साथ-साथ यह सुनिश्चित करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि अतिरिक्त धनराशि को सार्थक ढंग से इस्तेमाल किया जाए और किसी भी तरह के रिसाव को स्रोत पर ही रोका जाए।*

शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था को बिल्कुल शुरुआत से पुन:निर्मित करने की जरूरत

हम जिस भीषण अवस्था में इस वक्त हैं, उससे निपटने के लिए जरूरी है कि शिक्षक-विकास और प्रबन्धन के सभी पहलुओं में पूरी तरह और तुरन्त बेहतरी लाई जाए। जस्टिस वर्मा कमीशन की सिफारिशें और एन.सी.एफ़.टी.ई. 2009 के दिशा-निर्देश अपनी सम्पूर्णता में बेहतरी के लिए इस योजना हेतु जरूरी हैं। ये दिशा-निर्देश मोटेतौर पर लम्बी अवधि के सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा प्रोग्राम, सही अर्थों में पेशेवरों के विकास के लिए पाठ्यचर्या-पुनर्गठन, अन्य विषय-क्षेत्रों/ विभागों के साथ अकादमिक संस्थाओं के एकीकरण और सूचना सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी) के पहले से अधिक प्रयोग की पैरवी करते हैं। इसे अधिक बल देने के लिए शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं का एक-दूसरे के साथ जुड़ाव, नियमित आधार पर उनकी ग्रेडिंग और इन संस्थाओं के लिए एक शक्तिशाली नियामक कार्यप्रणाली का प्रबन्ध किए जाने के सुझाव भी आए हैं।

और अन्त में शिक्षा के अधिकार, एन.सी.एफ़.टी.ई. 2009 और बारहवीं योजना के दिशा-निर्देशों के साथ तालमेल में शिक्षक-शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय दृष्टि बनाने की भी तुरन्त आवश्यकता है। सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जो भी किया जाता है, वह शिक्षा व्यवस्था के सभी हिस्सों के लिए एकीकृत योजना होनी चाहिए। इस एकीकृत नजरिए को भूतकाल की समस्याओं का हल निकालना होगा – यानी नीतियों और उनके क्रियान्वयन के बीच के अन्तर को दूर करना होगा। और सबसे आखिरी लेकिन इतनी ही जरूरी बात है कि शिक्षक-शिक्षा और शिक्षक-प्रबन्धन को पेशेवर रूप देने के लिए व्यवस्था में गहरे सांस्कृतिक परिवर्तन होने होंगे जो ईमानदारी, सामर्थ्य और विकेन्द्रीकरण की बुनियाद पर टिके हों और हमें दशकों पुरानी कठोरता, नियंत्रण और अच्छी शिक्षा के लिए बस बोलने भर की बात से दूर ले जाए।

References:

Government Notifications / Reports / Websites

Planning & Monitoring Unit; MHRD. Analysis of budgeted expenditure on education 2011-12 to 2013-14, MHRD, New Delhi, 2015

Joint Review Missions (JRM), MHRD, 2015

www.teindia.nic.in/**jrm**.aspx)/**mhrd**.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/**JRM**

National Council for Teacher Education (NCTE) ACT, 2014

www.ncte-india.org

ncte-india.org/ncte_new/?page_id=910

NCTE at a glance; Objectives / Functions of the Council

http://ncte-india.org/ncte_new/?page_id=782

http://ncte-india.org/ncte_new/?page_id=782

Justice Verma Commission (JVC) recommendations, MHRD, 2012

mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-**reports**/JVC%20Vol%201.pdf

Articles / Research Reports

Comments and Suggestions to inputs on the draft New Education Policy, Azim Premji Foundation, August 2016

Ramachandran, et al. *Teachers in the Indian Education System: How we manage the teacher work force in India*, NUEPA, December 2015

Minni, Puja; Jha, Jyotsna. *National Study on Working Conditions of Teachers: Karnataka State Report*, Centre for Budget and Policy Studies (CBPS), Bangalore, February 2015

Knowledge resource Centre. *Changes in the educational Budget of Central Government*, Azim Premji Foundation, June 2015

Behar, Anurag. *Education agenda for the new Government*, The Mint, March 2014

Behar, Anurag. India needs a new teacher education system, The Mint, July 2014

Azim Premji Foundation. *Teacher and Teacher Education in India – A Position Paper*, 2014

Rishikesh, *Teacher Salaries in India*, Azim Premji Foundation, August 2010

Rishikesh, *District Institutes of Education and Training – A Status Report*, Azim Premji Foundation, June 2010

Surya, Vasantha. *An interview with Prof Krishna Kumar titled 'Teaching profession is in a crisis'*. Frontline, volume 25 - issue 05, March 2008

Kumar, Krishna. *The Child's Language And The Teacher - A Handbook*, United Nations Children's Fund, 1986

बी.एस.ऋषिकेश अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ पॉलिसी एण्ड गवर्नेंस में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं और वे विश्वविद्यालय में ही स्थित शिक्षा, कानून एवं नीति के केन्द्र का भी नेतृत्व करते हैं। शोध में उनकी रुचि के क्षेत्र शैक्षिक मूल्यांकन और शिक्षक-शिक्षा हैं तथा वे शैक्षिक नीति से सम्बद्ध वर्तमान मुद्दों के साथ गहरे तौर पर जुड़े हुए हैं। उनसे rishikesh@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन

अच्छे शिक्षक और ज्ञानार्जन

कृष्ण हरेश

परिप्रेक्ष्य

यह बात अच्छी हो या बुरी, मानव समाजों में स्कूली व्यवस्थाएँ अब स्थापित हो चुकी हैं। घर में ही स्कूलिंग को छोड़ दें तो स्कूल चाहे मुख्य धारा का हो या वैकल्पिक, बच्चे घर और माता-पिता से दूर वयस्कों के एक और समूह के पास जाते हैं, जिन्हें शिक्षक कहते हैं और यहाँ वे एक ऐसी गतिविधि के लिए जाते हैं जिसे हम शिक्षा कहते हैं। स्कूलों में शिक्षा कमोबेश स्पष्ट लक्ष्यों के साथ की जाने वाली गतिविधि है। स्कूलों ने ज्ञानार्जन के इस प्रोजेक्ट के एक बड़े हिस्से को (व्यावसायिक तथा आर्थिक मायनों में) अपने व्यापार के तौर पर ले लिया है। स्कूल व्यक्तियों को भविष्य में किसी पेशे के लिए तैयार करने की आशा करते हैं।

स्कूल जाना बस एक नियम ही नहीं है : यह तब तक के लिए ही एक मानक है जब तक कि आपके लिए इसका खर्च वहन करना सम्भव न हो। उनमें से अधिकतर माँ-बाप के लिए, जिनके लिए ऐसा कर पाना सम्भव हो, शिक्षा उनके बच्चों के बौद्धिक विकास, व्यावसायिक जगह बना पाने, सामाजिक स्तर पर ऊपर की ओर गतिशीलता और कई अन्य ऐसे ही लेकिन विभिन्न कारणों से स्पष्ट तौर पर आवश्यक है। कुछ लोग शिक्षा को एक मानवीय इन्सान को पोषित करने की ओर प्रवृत्त एक आध्यात्मिक गतिविधि के रूप में देख सकते हैं।

कुल मिलाकर स्कूलों को जीवन के लिए एक तैयारी के रूप में देखा जाता है और स्कूली शिक्षा एक सुरक्षित भविष्य की जरूरत के साथ बँधी नजर आती है (या तो पूरी शिद्दत से अपनाए गए पेशे के रूप में या फिर एक विकासरत वेतन के स्रोत के रूप में) या फिर स्वयं की इच्छा-पूर्ति के लिए। अपनी शिक्षा के लिए विद्यार्थियों के लक्ष्य केवल उनके माता-पिता की (और कुछ अपनी भी) आकांक्षाओं से संचालित नहीं होते बल्कि समाज की उन माँगों से भी प्रभावित होते हैं जिन्हें हम किसी विशेष सामाजिक परिवेश के सरोकारों में स्थित कर सकते हैं। इस व्यापक क्षेत्र में स्कूली व्यवस्थाएँ स्वतंत्र और विलग खिलाड़ी नहीं हैं। वे अक्सर विद्यार्थियों को विशिष्ट तरीकों से सक्षम बनाने या दिशा-निर्देशित करने का वादा करती हैं – ऐसे तरीकों से जो मौजूदा समाज की माँगों को सुव्यवस्थित तौर पर पूरा करते हैं या फिर एक नए और अपेक्षित बेहतर समाज की माँगों के लिए।

व्यक्ति के तौर पर शिक्षक

अब हम शिक्षक की बात कर सकते हैं। दुर्भाग्य यह है कि शिक्षक को अक्सर इस स्कूल-व्यवस्था का बस एक तत्व मात्र बना दिया जाता है। आम-प्रचलित भाषा-प्रयोग में मशीन का एक पुर्जा, जिसे भविष्य की सफलताओं के लिए तयशुदा संवेग को बनाए रखने हेतु स्थित करते हुए गति दी जाती है, और जिसका इस्तेमाल व्यावसायिक तथा अकादमिक प्रशिक्षण की स्थापित रिवायत को बनाए रखने के लिए होता है।

लेकिन मेरा विचार है कि शिक्षक किसी के लिए या किसी जगह के लिए नहीं होते। वे न तो स्कूल नामक विशेष संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं और न ही वे एक ऐसे समाज के एजेन्ट हैं जिसने उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के मकसद से युवा दिमागों को ढालने के लिए रोजगार दिया है। वे तो ज्ञानार्जन की प्रक्रिया से सम्बद्ध होने वाले स्वतंत्र खोजी हैं। वे किन्हीं विशेष विचारधाराओं के प्रचारक नहीं हैं, वे हर तरह की विचारधारा के विचारशील आलोचक हैं। वे वयस्क संसार के अनुकरणीय व्यक्ति या आदर्श नहीं हैं। बल्कि वे उस संसार से बाहर कदम रखने वाले, उस समाज की ओर पीछे नजर डालने वाले और उस पर टिप्पणी करने वाले वयस्क हैं जिसे कई वयस्कों ने आवेश में, और कई बार विवशता में, चाहे-अनचाहे, रचा है।

लगता है कि विद्यार्थियों और उनके सीखने पर सीधा और पूरे जोर के साथ प्रभाव छोड़ने की सामर्थ्य एक शिक्षक में होती है। अक्सर इनमें से कई अच्छे शिक्षक हमारे लिए दीर्घकालिक चिन्तन और सोच-विचार से सम्बद्ध सबक छोड़ जाते हैं। जब मैं अपने जीवन में आए अच्छे शिक्षकों के गुणों को याद करता हूँ तो मैं देख-समझ पाता हूँ कि किस वजह से वे अच्छे शिक्षक थे। अच्छे शिक्षक अपने विद्यार्थियों की जरूरतों और प्रतिक्रियाओं के प्रति संवेदनशील, बिना शर्त स्नेही लेकिन कुछ हालात में डाँटने वाले, खुले मन के व्यक्ति होते हैं। वे जानकार और ज्ञानवान होते हुए भी सीखने को तैयार होते हैं, अपनी कक्षा के लिए अच्छे से तैयार होते हुए लचीले, सहज और स्वत: स्फूर्त स्वभाव के। वे आदान-प्रदान में स्तर की ऊर्जा दर्शाते हैं, सीखने की सामग्री व्यवस्थित करने में बड़ी पहलकदमी भी लेते हैं। वे व्यवहार में अनौपचारिक, ध्यान देने वाले, प्रतिक्रिया देने को तैयार और आसानी से उपलब्ध रहते

हैं। वे सख्त होते हुए भी दयालु होते हैं और उनमें विद्यार्थियों तथा कक्षा से भी ऊपर उठते हुए जिम्मेदारी की गहरी भावना होती है और समय के साथ वे हमें अपने ही जैसे हाड़-माँस के सामान्य इन्सान की तरह दिखाई देते हैं। अक्सर इन शिक्षकों में अपनी अच्छाई का कुछ एहसास नहीं होता और इसलिए वे विनम्र होते हैं। और बहुत ही सराहनीय।

शिक्षण, एक पेशे के रूप में

एक सहकर्मी ने हाल ही में 'द इकॉनमिस्ट' में शिक्षण और शिक्षक-प्रशिक्षण पर छपा एक लेख साझा किया। कक्षा का छोटा या बड़ा होना, (विद्यार्थियों को) योग्यता के मुताबिक व्यवस्थित/पंक्तिबद्ध करना आदि जैसी बातें बहुत से माँ-बाप के लिए सबसे अधिक महत्व रखती हैं। लेकिन लगता यह है कि इन बातों का विद्यार्थी के सीखने के सफल अनुभव पर लगभग कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह सफलता सबसे अधिक तो शायद शिक्षक के कौशल से प्रभावित होती है, यानी इस बात से कि शिक्षक असल में सब सम्बद्ध विद्यार्थियों के साथ कक्षा में क्या करता है।* यह शायद बहुत हैरत में डालने वाली बात न लगे लेकिन इस पर किए गए अध्ययनों की बड़ी संख्या को ध्यान में रखें तो यह बहुत फायदे की बात है – जिसके मुताबिक यह स्थापित हुआ कि शिक्षक बेशक शिक्षा की एक विशाल व्यवस्था में प्रभाव और परिवर्तन का एक मूल एजेन्ट दिखाई देता है।

इसके अलावा लेख यह भी सुझाता है कि अक्सर विश्वास किया जाता है कि अच्छा शिक्षण एक जन्मजात, स्वाभाविक कलात्मक प्रतिभा है। शिक्षक इसके साथ ही जन्म लेते हैं। यह बात बहुत ही दुर्लभ मामलों में सही हो सकती है, लेकिन यह तो स्पष्ट ही है कि कक्षा में शिक्षण अधिकतर एक परिष्कृत, दक्षतापूर्ण हुनर है जिसके बारे में सीखा और जाना जा सकता है। दक्षताएँ सीखी जा सकती हैं, उन्हें पैना किया जा सकता है, तकनीकों को अच्छे से समझा और लागू किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, व्यवहारवादी विज्ञान के तहत समझी और व्याख्यायित की गई इस प्रकार की शिक्षण-प्रथा को शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सीखा जा सकता है। इस विषय में हुए शास्त्रीय और समकालीन अनुसन्धान में पर्याप्त ऐसी जानकारी है जिससे हमें कक्षा में शिक्षण हेतु ऐसे विचार मिलते हैं जिन्हें हम चाहें तो जीवन भर लागू कर सकते हैं। यह अनुसन्धान लाभप्रद सिद्धान्तों और प्रतिमानों से भरा पड़ा है। जानकारी मिलती है कि शिक्षकों और विद्यार्थियों की शिक्षण और सीखने की शैलियाँ हैं और व्यक्तित्व सम्बन्धी शैलियाँ भी; बोध और नैतिक विकास में बच्चों के विकासात्मक मीलपत्थर होते हैं; अनुसन्धान में शैक्षिक संस्थाओं के लिए, इस बारे में लाभप्रद विचार भी हैं कि प्रभावशाली होने के लिए अपने स्थान को कैसे व्यवस्थित किया जाए; और सीखने की विशेष आवश्यकताओं के लिए समावेशी शिक्षा के बारे में भी विचार हैं - आदि-आदि।

हम इस क्षेत्र से मिलने वाली अन्तर्दृष्टि को दरकिनार नहीं कर सकते। प्रभावशाली शिक्षण-प्रथाओं के बारे में जानना-सीखना व्यक्तियों के सीखने के अनुभव को बेहतर ही कर सकता है।

अच्छा शिक्षण और एक अच्छा शिक्षक

प्रभावशाली शिक्षण की तकनीकों को तो समय-समय पर लागू किया और दोहराया ही जाना चाहिए लेकिन मेरे विचार से हमें शिक्षण और सीखने की उस संस्कृति को समझने में भी दिलचस्पी होनी चाहिए जिसे रचने में हम योगदान देते हैं। मैं कुछ ऐसे सवालों पर संक्षेप में चर्चा करना चाहूँगा जिनमें इस बात की सम्भावना मौजूद है - बल्कि कक्षा के वातावरण को परिवर्तित करने की भी सम्भावना है। ये वे सवाल हैं जिनसे मैं शिक्षण की अपनी यात्रा में प्रेरित हुआ हूँ (बल्कि ये बार-बार मेरे जेहन में आते रहे हैं)। आशा है कि इनसे कुछ सोचना-विचारना पैदा होगा जिससे विभिन्न तरह के काम निकलकर आ सकते हैं न कि दैनिक दिनचर्या में विशेष काम के लिए बस सामान्य दिशा-निर्देश।

पहले एक शुरुआती बात : एक अच्छे शिक्षक को स्वीकारना महत्वपूर्ण है लेकिन हमें अच्छे शिक्षण के बारे में सोचना और उसे तलाशना-परखना चाहिए न कि कुछ विशेष व्यक्तियों को अच्छे शिक्षक के तौर पर चिह्नित करना। महत्वपूर्ण बात सीखना-सिखाना, शिक्षण और ज्ञानार्जन है – यह शैक्षिक प्रक्रिया के केन्द्र में है। एक शिक्षक को अच्छे या बुरे के तौर पर मूल्यांकित करने से ध्यान व्यक्ति और उसकी विशेष सामर्थ्य पर आवश्यकता से अधिक केन्द्रित रहता है। उसकी किसी भूमिका के सन्दर्भ में किसी व्यक्ति के मूल्यांकन की तह में कोई विशेष मान्यता रहती है, जिसके तहत उसे अपरिवर्तनीय योग्यताओं वाले एक सुपरिभाषित, कमोबेश स्थायी पहचान के व्यक्ति के रूप में लिया जाता है। हमें इस बात को सन्देह की नजर से देखना होगा।

ये विचार मेरे खुद के नहीं हैं और कई विचारकों से प्रेरित हैं। मैं पिछली सदी के जाने-माने विचारक और वक्ता, जे. कृष्णमूर्ति (जिन्होंने जीवन और शिक्षा पर बहुत वार्तालाप किया है) द्वारा उठाए गए कुछ सवालों को लेना चाहूँगा। हम कह सकते हैं कि शिक्षण और ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को ज्ञानयुक्त रखने के लिए इन सवालों को जिन्दा रखे जाने से एक अच्छा शिक्षक बनता है।

एक सही सम्बन्ध होने का क्या अर्थ है?

ऐसा लगता है कि सम्बन्ध सीखने के केन्द्र में होता है - कम से कम एक स्कूल में तो जरूर। न केवल विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच एक ईमानदार, खुले दिमाग का सम्बन्ध, बल्कि सहकर्मियों तथा शिक्षकों और माता-पिता के बीच भी। इसका अर्थ होगा कि वयस्क के तौर पर किसी अन्य के साथ प्रतिस्पर्द्धा की भावना नहीं होगी और न ही शिक्षा की प्रक्रिया में सामर्थ्य तथा महत्व के अर्थ में किसी के साथ तुलना की जा रही होगी।

इसी तरह, क्या विद्यार्थियों को जैसे वे हैं, वैसे ही देखना सम्भव होगा? यानी एक व्यक्ति के सीखने के अनुभव को उसी रूप में देखना जैसा वह है – तुलनात्मकता के बिना। क्या एक शिक्षक अपनी इस जरूरत के प्रति जागरूक और सतर्क हो सकता है कि विद्यार्थियों से उसे अनुमोदन और प्रशंसा मिले? क्या सम्बन्ध को इस तरह स्थापित किया जा सकता है कि उसमें पूर्ण और गहरे रूप से जिम्मेदारी का भाव हो, जहाँ निज के हित और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा उभरते दिखें तो हम सजग रहते हुए उनका यह उभरना देख पाएँ?

कक्षा में व्यवस्था की जाँच-पड़ताल कैसे हो?

कक्षा पर नियन्त्रण होने को एक अच्छे शिक्षक की सबसे बड़ी विशिष्टता माना जाता है! ऐसा लगता है कि अनुशासन निकलवाना और व्यवस्था स्थापित करना एक व्यक्ति में गहरी तसल्ली का भाव पैदा करता है। मैं यह नहीं कह रहा कि एक अव्यवस्थित, अराजक कक्षा बेहतर होती है। लेकिन शायद बेहतर यही है कि ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को खुलने दिया जाए और ऐसा व्यक्तिगत ज्ञान या अनुभव की सत्ता पर बल दिए बिना किया जाए। एक प्रिय सम्बन्ध बनने पर इन दोनों बातों को उनका उचित आदर-सम्मान मिल जाएगा। जहाँ एक ओर विषयवस्तु के बारे में निश्चित न होना या कक्षा में विद्यार्थियों के साथ व्यवहार या विषय में अक्षम होना अस्पष्टता की ओर ले जाता है, वहीं इसकी कोई गारण्टी नहीं है कि इसके विपरीत स्थिति में प्रभावी ज्ञानार्जन होगा ! कक्षा में अनुशासन विद्यार्थी के व्यवहार पर कठोर नियन्त्रण के बारे में नहीं है बल्कि सीखने की जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने के बारे में है। दमनकारी या दबाव वाले शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्धों में ऐसा हो पाना सम्भव नहीं होगा।

भय और विरोध का ज्ञानार्जन पर क्या प्रभाव रहता है?

स्कूलों में अब प्रदर्शन की ही बात होती है। अक्सर, एक अच्छा स्कूल ढूँढ पाना माता-पिता के लिए अच्छे माता-पिता होने का सबूत बन गया है! लेकिन ज्ञानार्जन बस इसके बारे में ही नहीं हो सकता। प्रदर्शन या कार्य का मूल्यांकन और आकलन विद्यार्थियों में दक्षता-विकास को समझने के उपकरण हैं। इन उपकरणों का निरन्तर इस्तेमाल किसी के ज्ञानार्जन के बारे में निर्णय लेने के लिए, और सीखने को केवल प्रदर्शन से जोड़कर तथा ज्ञान के संग्रहण के रूप में देखा जाता है तो शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों में चिन्ता और घबराहट ही पैदा होते हैं। ये उपकरण सीखने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का स्थान नहीं ले सकते। स्कूलों में कक्षाओं के कमरे और सम्बन्ध विषय और कार्य-प्रदर्शन से सम्बद्ध डर मन में बैठा देते हैं। क्या हम इस बात को समझ सकते हैं कि अच्छा प्रदर्शन कर पाने से सम्बद्ध यह भय किस तरह एक बाधा का काम करता है? - केवल एक विषय में प्रदर्शन या एक रिश्ते में भय को समझने के अर्थ में नहीं, बल्कि स्वयं भय के बारे में सीखने हेतु अवलोकन के अर्थ में। सीखना एक भावनात्मक अनुभव है – उससे भी अधिक जितना कि हम मानने को तैयार हैं। हम यह समझ पाएँ तो काम करने के प्रति विरोध की समस्या सुलझाने का भी संकेत हमें मिल सकता है। ऐसे में शायद किसी भी बाहरी उत्प्रेरक की जरूरत हमें न पड़े।

प्रेरणा को कैसे समझा जाए?

हम वयस्क के तौर पर अपने जीवन में विभिन्न तरह की हिंसा को निरन्तर बनाए रखते से दिखाई देते हैं। ऐसा ही एक उदाहरण है ज्ञानार्जन की समस्याओं से सम्बोधित होते हुए ईनाम और दण्ड देने की प्रवृत्ति। प्रेरणा की इस व्यवस्था की हिंसा को सीधे तौर पर देखना सम्भव है। यह तो बहुत जल्दी ही स्पष्ट हो जाता है कि दण्ड हिंसक क्यों है, लेकिन ईनाम का हिंसक होना शायद इतना स्पष्ट न हो। मेरे विचार से जब हम अपेक्षित व्यवहार को छाँटकर ईनाम देते हैं और इस तरह ईनाम देने को अनुकूल व्यवहार के साथ जोड़ते हैं तो हम विद्यार्थियों को पावलोव के कुत्तों की तरह देख रहे होते हैं! यहाँ मैं प्रेममयी एवं सच्चे मन से प्रोत्साहन, प्रभावी प्रशंसा, उचित डाँटना जैसी बातों का जिक्र नहीं कर रहा।

ईनाम और दण्ड की एकांगी व्यवस्था अनुकूलन, अधिकारियों के प्रति बेसमझ आज्ञाकारिता और रचनात्मकता के दमन को प्रोत्साहित करती है। हम गणित और अँग्रेजी साहित्य तो सीख ही सकते हैं, इसी तरह किसी को गणित और अँग्रेजी साहित्य सीखने के लिए चालाकी से संचालित करने में निहित हिंसा के बारे में भी जान सकते हैं।

ऊपर चर्चा में आए चार सवाल एक शिक्षक के लिए सीधे तौर पर प्रासंगिक प्रतीत होते हैं, जब वह ज्ञानार्जन की किसी जगह के साथ सम्बन्ध बना रहा हो। इनके अलावा दिखने में कुछ और जटिल सवाल हैं जिन्हें, मेरे विचार से, कोई भी शिक्षक शिक्षण का काम करते हुए दरकिनार नहीं कर सकता।

अनुकूलन की क्या भूमिका है?

यह समझना आवश्यक है कि जीवन में हमारी प्रेरणाएँ और भय केवल हमारे अपने नहीं होते। वे समाज के तौर पर हमारी चेतना

का साझा हिस्सा होते हैं, और कई पीढ़ियों से व्यवस्थित तौर पर बहुत ही बारीकी से अनुकूलित होते हैं। क्या यह देख पाना सम्भव होगा, कि "हम ही संसार हैं" (कृष्णमूर्ति के शब्दों में, माइकल जैक्सन के नहीं !)? हम कुछ विशेष तरह से महसूस करने के लिए अनुकूलित होते हैं : असफल होने का, भविष्य का, सत्ता का भय आदि। हमारी भावनाएँ इस बारे में शायद अधिक बता सकती हैं कि हम कैसे सोचते हैं, न कि संसार की असल प्रकृति के बारे में। शायद हमारे भीतर के इस अनुकूलन की गतिशीलता को देख पाना, उसका अवलोकन कर पाना, हमें उसकी मजबूत पकड़ से आजाद करवा पाए?

किसी बात की जड़ तक पहुँचना और उससे आजाद होना

कुछ सवाल शायद हमारे लिए इन्सान के मस्तिष्क के बारे में हमारी सोच को खोल पाएँ। बहुत बार इस आशय की बात की जाती है कि सीखने के लिए मस्तिष्क को एक तरह से चेतनाशून्य अवस्था से जगाने की जरूरत होती है, कि हमें ध्यान केन्द्रित कर पाने से सम्बद्ध तकनीकें विकसित करनी होंगी नहीं तो हम असावधानी और लापरवाही के भँवर में खो जाएँगे। लेकिन अगर मानव-मस्तिष्क सीखने के लिए हमेशा तैयार ही हो, तो क्या हो? तब क्या हो अगर हमारे विचारों से लगातार उपज रहे व्यक्तिगत अनुभव की सशक्त भावनाएँ और वे बातें जो इस व्यवस्था के लिए खतरा हों, सीखने और ज्ञानार्जन के रास्ते में बाधा का काम करें? तब क्या, जब उभरती हुई इस असावधानी या बेध्यानी का अवलोकन करना ही ध्यान 'देना' हो? हम (विद्यार्थी और शिक्षक दोनों) किस तरह इस प्रस्ताव को ध्यान से देखकर उसके साथ खेल सकते हैं, उसे अलग-अलग तरह से विश्लेषित कर सकते हैं?

हमारे अनुभवों की प्रकृति क्या है और अनुभवकर्ता कौन है?

यह ऐसा सवाल प्रतीत नहीं होता जिस पर शिक्षकों और विद्यार्थियों को सोचने की जरूरत हो। इसके बारे में कोई भिक्षु, उपासिका या तपस्वी तो सोच सकते हैं, लेकिन शायद विद्यार्थी तो नहीं! लेकिन शिक्षा में इन सवालों से जूझने की सम्भावना दिखाई देती है। ये सवाल महत्वपूर्ण हैं क्योंकि हमारा 'स्वत्व', हमारा 'अहं' ही तो वह लेंस है जिसके बीच से गुजरकर संसार का हमारा अनुभव प्रसाधित होता है, एक प्रक्रिया से गुजरकर तैयार होता है। और हम इन अनुभवों के बारे में इतना कम समझते प्रतीत होते हैं क्योंकि हम स्वयं लेंस के बारे में पर्याप्त कुछ नहीं सीखते ! क्या सीखा जा रहा है और किस तरह उसे और बेहतर सीखा जा सकता है, एक अच्छी शिक्षण प्रक्रिया पक्के तौर पर इस बारे में हमारी जिज्ञासा को (एक अच्छे उत्प्रेरक, यानी शिक्षक, के माध्यम से) बढ़ाती है। इससे भी महत्वपूर्ण है कि कौन सीख रहा है, आत्मकथनात्मक स्वत्व के वृत्तांत की रूपरेखा को देखना, और उस स्वत्व और अहं (यानी उस खुद) को देखना जो किसी अन्य के सम्बन्ध में निरन्तर हमारी भूमिका या व्यवहार को तय करता है - वह स्वत्व या अहं जो बार-बार स्वयं को प्रदर्शित करता है, शिक्षक या विद्यार्थी या अभिभावक या किसी भी अन्य रूप में।

इस व्यक्तिगत अहं के मस्तिष्क की और स्वयं तथा संसार के बारे में सत्य के रूप में एकत्र किए जाने वाले छोटे-छोटे कथनात्मक तथ्यों की, प्रकृति और स्वभाव क्या है? हम विद्यार्थियों के साथ इस सबके बारे में बात कर सकते हैं। यह ऐसे सोच-विचार को खोल सकता है जो स्कूल से शुरू होकर पूरा जीवन हमारे सीखने पर प्रभाव छोड़ सकता है।

अच्छी शिक्षा

हमें अक्सर कक्षा में और मंथर गति से चलते जीवन में अच्छे शिक्षक मिल जाते हैं। एक अच्छे शिक्षक के माध्यम से अच्छा शिक्षण एक चिंगारी सुलगाता है, एक जिज्ञासु मस्तिष्क को जन्म देता है, अच्छी शिक्षा सम्भव बनाता है – शिक्षा जो बस विशेष विषयों के ज्ञान के क्षेत्र तक सीमित नहीं है, एक ऐसी शिक्षा जो निरन्तर अवलोकन और अपने भीतर और बाहर के संसार को सुनने को जिन्दा रखती है।

References:

* 11 जून 2016 को प्रकाशित द इकॉनमिस्ट ऑन्लाइन के शिक्षा सुधार खण्ड के लेख **'टीचिंग द टीचर्स'** से उद्धृत :

'पिछले साल नवीनीकृत एक अध्ययन में युनिवर्सिटी ऑव मेल्बर्न के जॉन हैट्टी ने 250 मिलियन विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन पर सैकड़ों हस्तक्षेपों के प्रभावों के बारे 65,000 से अधिक शोध-पर्चों के नतीजों का मूल्यांकन किया। उन्होंने पाया कि कक्षा के आकार, वर्दी और योग्यता के आधार पर समूह बनाना जैसे पहलू, जिनके बारे में माता-पिता बहुत ध्यान करते हैं, इस बात पर कोई असर नहीं डालते कि बच्चे सीखते हैं या नहीं।.... महत्वपूर्ण बात "शिक्षक की दक्षता" की है। अध्ययन के तहत स्कूल में ज्ञानार्जन को बेहतर बनाने के सभी 20 सशक्त तरीके इस बात पर निर्भर थे कि शिक्षक कक्षा में क्या करता है।'

** *कृष्णमूर्ति फ़ाउण्डेशन ऑफ इण्डिया, 2005 द्वारा प्रकाशित* ***अ फ़्लेम ऑफ लर्निंग : कृष्णमूर्ति विद टीचर्स।***

कृष्ण हरेश बेंगलूरु की सरहद पर स्थित एक छोटे से स्कूल सेण्टर फॉर लर्निंग (www.cfl.in) में कार्यरत हैं। उन्हें विद्यार्थियों के साथ काम करना अच्छा लगता है। वे मनोविज्ञान, काष्ठकला और थियेटर के बारे में पढ़ाते हैं। उनसे kruxys@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन

शिक्षकों का मिलकर काम करना है प्रभावशाली

उमाशंकर पेरिओडी

पिछले कुछ साल लगातार इस तलाश के साल थे कि स्कूल के बनने में जो कुछ शामिल होता है, क्या उसका कोई पैटर्न (कोई निश्चित क्रम या व्यवस्था) भी होता है? यह प्रक्रिया कैसे चली और धीरे-धीरे खुली, यह बात मैं यहाँ साझा करना चाहूँगा। शुरुआत उन तत्वों या पैटर्न का पता लगाने से हुई जिनसे एक अच्छा स्कूल बनता है। इसके बाद यह आभास हुआ और समझ बनी कि एक अच्छा स्कूल बनाने में कोई एक कारण या तत्व नहीं होता। फिर धीरे-धीरे उन दो तत्वों की बहुत ही न्यूनतम समझ बनी जो हमें उन स्कूलों से उभरते दिखाई दिए जिनके साथ हम एक दशक से भी अधिक समय से सम्बद्ध रहे। शिक्षा के क्षेत्र के लिए यह कोई नई बात नहीं है मगर हमारे लिए इस सीख तक पहुँचना कड़े परिश्रम के बाद ही हो पाया। ये दो तत्व हैं शिक्षकों का मिलकर एक समूह के तौर पर काम करना और एक लोकतांत्रिक नेतृत्व का होना।

मैं औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में 2003 में आया। उससे पहले मेरा अनुभव गैर-औपचारिक शिक्षा में, विशेषकर वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में था। फाउण्डेशन में भी हमने अभी काम शुरू ही किया था तथा परिवर्तनकारी साधनों और प्रभावशाली प्रक्रियाओं की तलाश में थे। हम इस क्षेत्र के बहुत से लोगों और विशेषज्ञों से यह जानने के लिए मिल रहे थे कि स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए काम करने का सबसे बेहतर तरीका क्या है। हम विशेषज्ञों से परामर्श ले रहे थे और इस क्षेत्र को समझने के लिए अध्ययनों में शामिल हो रहे थे। हमने प्रो. जलालुद्दीन से अनुरोध किया कि वे हमारे लिए यह जानने हेतु एक अध्ययन करें कि एक अच्छा स्कूल बनने में क्या शामिल रहता है। (प्रो. जलालुद्दीन 1990 के दशक में एन. सी.ई.आर.टी. के निदेशक रहे थे और नेट्वर्क ऑफ एन्टर्प्राइज़िंग एजुकेशनल वेन्चर्स का नेतृत्व कर रहे थे)। उन्होंने हमें यह कहकर चौंका दिया कि, "आपको कोई एक अकेला तत्व नहीं मिलेगा जो एक अच्छा स्कूल बनने के लिए जिम्मेदार हो और न ही अच्छे स्कूलों का कोई पैटर्न निकलकर आएगा। एक अच्छा स्कूल बनाने में अलग-अलग तत्व मदद देते हैं और अलग-अलग स्कूलों में यह अलग होगा - इस सवाल का कोई एक जवाब नहीं है कि एक अच्छा स्कूल बनाने में क्या कुछ शामिल रहता है। तलाशने का कोई लाभ नहीं, बस जुटे रहिए।"

इससे हमें कोई जवाब तो नहीं मिला लेकिन एक दिशा जरूर मिली। हमने स्कूलों, कक्षा की प्रक्रियाओं और मुख्यत: शिक्षकों और अधिकारियों के साथ सम्बद्ध होना शुरू किया। हमारे काम का केन्द्र शिक्षक पेशेवर विकास बनने लगा। शिक्षकों की सामर्थ्य का निर्माण हमारे काम के केन्द्र में आ गया। अपने काम के दौरान हमने हर तरह के स्कूल देखे – अच्छे, और वे भी जो इतने अच्छे नहीं थे। लेकिन शिक्षकों से हमें आशा मिली। हमने दूर-दराज के इलाकों में शिक्षक देखे जो न्यूनतम सुविधाओं के साथ भी ऐसे स्कूलों में थे जहाँ बच्चों ने सीखने के अच्छे स्तर हासिल कर लिए थे। हमने राजमार्गों और अच्छी दशा की सड़कों से दूर उमंगशील स्कूल देखे जहाँ समय की पाबन्दी भी थी और बच्चों को कई तरह की अकादमिक गतिविधियों में शामिल किया जाता था। हमने शिक्षक देखे जिन्होंने विरोधी भावना लिए हुए समुदाय को स्कूल चलाने वाले दोस्ताना सहभागियों के तौर पर परिवर्तित कर लिया था। सुरपुर (कर्नाटक) में एक नौजवान शिक्षक था जिसने राजसी परिवार के एक शक्तिशाली जमींदार का सामना करते हुए मंजूरशुदा स्कूल के लिए भूमि हेतु संघर्ष किया था। मेरे ख्याल से यह शिक्षक के लिए एक बहुत ही साहस की बात थी और अन्य लोगों से मिले सहयोग के चलते वह स्कूल के लिए जमीन लेने में कामयाब हो गया।

अकादमिक तौर पर अच्छा प्रदर्शन करने वाले कई स्कूल थे। रेखा जैसे शिक्षक थे जो अकेले 5 कक्षाओं को सम्भाल रहे थे और फिर भी बच्चों का सीखना बहुत अच्छा था। ये विश्वास से भरे स्वतंत्र बच्चे थे। कुछ शिक्षक सुधार के लिए शिक्षण को बहुत गम्भीरता से लेते थे और यह काम पूरी प्रतिबद्धता के साथ करते थे, जिसका लाभ स्कूल से बाहर के बच्चों को भी मिलता था। इन बच्चों को अतिरिक्त समय देकर उन्हें सीखने में मदद देने वाले शिक्षक भी रहे हैं। कई शिक्षकों ने समुदाय के लोगों और पुराने विद्यार्थियों से अच्छे सम्बन्ध बना लिए हैं और उन्हें शिक्षण तथा विद्यार्थियों के साथ काम करने में सम्मिलित कर लिया है। यही वे शिक्षक हैं जिनसे हम आशा रख सकते हैं - काम किए जाने की आशा और व्यवस्था को बेहतर बनाए जाने की आशा। हमें इस बात का पक्का विश्वास हो गया था कि इस व्यवस्था में अच्छे प्रतिबद्ध लोग हैं जो रचनात्मक हैं, अपनी समस्याओं को हल करते हैं और बच्चों के साथ आगे बढ़ते हैं।

इन 13 सालों में मैंने अपने कार्य-क्षेत्र के 6 राज्यों में अलग-अलग तरह के अच्छे स्कूल देखे हैं। जैसा कि प्रो. जलालुद्दीन ने कहा, एक नहीं, कई बातें हैं जिनसे एक अच्छा स्कूल बनता है। लेकिन जब मैं पीछे मुड़कर इन स्कूलों की ओर देखता हूँ, तो एक साझा पैटर्न

निकलकर आता है। इन सब अच्छे स्कूलों में दो बातें स्पष्ट दिखाई देती हैं। एक, शिक्षकों का समूह के रूप में मिलकर काम करना और दूसरा, एक लोकतांत्रिक नेतृत्व का होना।

शिक्षकों का समूह एक अच्छे और स्वस्थ सम्बन्ध के आधार पर बनता है। इन अच्छे स्कूलों में आने वाले किसी भी व्यक्ति का ध्यान शिक्षकों की टीम अपनी ओर खींचती है। उनका बहुत अच्छा परस्पर सम्बन्ध है। जब उनसे अच्छे सम्बन्धों के बारे में पूछा जाता है तो वे कहते हैं कि यह तो, "बस हो जाता है कि लोग अच्छे हों।" लेकिन यह सही नहीं है। इस सम्बन्ध को बनाने में बहुत मेहनत लगती है। एक-दूसरे के साथ सम्प्रेषण करने और समझ बनाने में समय लगता है। किसी को परेशानी होती है और उसे मदद की जरूरत होती है तो वे पूरी तौर पर मदद देते हैं। हम देखते हैं कि इसके लिए बहुत मेहनत की जाती है और यह निरंतरता में होता है। जैसा कि एक शिक्षक का कहना था, शुरुआत में बहुत समय लगता है और मेहनत भी होती है लेकिन बाद में तो आपको बस इसे जारी ही रखना होता है। बाद में यह जीवन का ही एक हिस्सा बन जाता है और यह नहीं होता तो आपको बहुत बुरा लगता है।

टीम के रूप में मिलकर काम करना ही असल कुंजी है। इन स्कूलों का दृश्य यही है – सब शिक्षक व्यस्त और काम करते दिखाई देते हैं। आप शिक्षकों को कोई भी काम मिलकर करते देख सकते हैं। सुबह की सभा, मध्याह्न भोजन या समुदाय के साथ आदान-प्रदान या अफसरों के साथ सम्बन्ध – इनमें से किसी में भी वे इकट्ठे हो सकते हैं। कलबुर्गी में शरणा सिरसागी थाण्डा स्कूल जैसे इन स्कूलों में शिक्षक-टीम जीवन्त और मिलनसार थी जबकि हम सब जानते हैं कि स्कूलों में यह आसानी से नहीं होता और इसके लिए बहुत तैयारी की जरूरत होती है। शिक्षक एक टीम के तौर पर आपस में बात करते हैं। अगर यह किसी कार्यक्रम के सिलसिले में है, कि किसे क्या करना है, तो यह सुनिश्चित किया जाता है कि बोझ बस किसी एक या दो पर न आए। देखने में सब एकसार, अटूट लगता है लेकिन इसे एक सामूहिक प्रयास बनाने में पीछे का काफी काम शामिल रहता है।

टीम के बनने के लिए समय और स्थान का महत्व होता है। इनमें से अधिकतर स्कूलों में औपचारिक बैठक के लिए व्यवस्थित ढंग से समय निकाला जाता है। माहौल अनौपचारिक होने के बावजूद शिक्षकों की बैठकें बहुत ही व्यवस्थित तथा विशेष एजेण्डा के साथ होती हैं। इसमें भी अलग-अलग सम्भावनाएँ रहती हैं। कई स्कूलों में ये बैठकें शनिवार को स्कूल के तुरन्त बाद होती हैं। लेकिन मैंने कुछ स्कूलों में ये स्कूल शुरू होने के बिल्कुल पहले या शाम को स्कूल समाप्त होने के फौरन बाद भी होते देखी हैं। ये प्रतिदिन की बैठकें बस 15 से 30 मिनट की होती हैं। लेकिन शिक्षक कहते हैं कि इनसे उन्हें बहुत मदद मिलती है। कलबुर्गी में नगनहल्ली जैसे स्कूलों में शिक्षक दोपहर के भोजनकाल को अकादमिक विषयों पर और विभिन्न बच्चों के बारे में विस्तृत बातचीत के लिए प्रयोग में लाते हैं। यह खासतौर से उन बच्चों के बारे में जरूर होता है जिनके बारे में कुछ चिन्ता हो। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सब शिक्षक मौजूद हों और सभी हिस्सा भी लें। दिलचस्प बात यह है कि इस बैठक में ये शिक्षक विषय, योजना और कठिनाई वाले बच्चों के साथ सम्बन्ध के बारे में बात करते हैं (ऐसे ही प्रयास सुरपुर, यादगीर में गद्दा नारायण टाण्डा में काशिबाई स्कूल में भी देखने को मिले)।

एक टीम के बनने में कई छोटी-छोटी बातें शामिल रहती हैं। स्कूलों के बाहर समय लगाना भी बहुत जरूरी है। यह किसी शिक्षक के घर चाय के लिए या घूमने के लिए किसी स्थान पर जाने की बात हो सकती है। या फिर ऐसा ही कुछ और भी हो सकता है। इससे मदद मिलती है। लेकिन शिक्षकों द्वारा चिह्नित की गई सब से महत्वपूर्ण बात है कि टीम को सीखने और विकसित होने को मिले। अपनी जानकारी तथा ज्ञान को साझा करना और दूसरों से कुछ जानना – यह बहुत ही सूक्ष्म तरीके से होता है। मैंने शिक्षकों को किसी विषय पर कोई निबन्ध लेकर, उसे पढ़ते और चर्चा करते हुए नहीं देखा है। लेकिन समाचार-पत्र में शिक्षा और उसके साथ के विषयों पर क्या छपा है, इस पर काफी चर्चा होती है। वे पढ़ी हुई पुस्तकों को भी साझा करते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण है कि वे एक-दूसरे को समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के लिए कुछ लिख भेजने को प्रोत्साहित करते हैं। यह सच है कि वे शोध-पत्र तैयार करने और जर्नल्स में प्रकाशित लेखों-निबन्धों पर चर्चा करने का काम नहीं करते। ऐसे अन्य लेखों पर चिन्तन भी नहीं होता। लेकिन यह जरूर है कि चर्चा व्यक्तिगत नहीं होती। वह शिक्षा और बच्चे के विकास के इर्द-गिर्द ही होती है।

शिक्षकों का टीम के तौर पर काम करना बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन यह बस यूँ ही नहीं हो जाता। इन प्रक्रियाओं को किसी का नेतृत्व भी चाहिए। एक ऐसा नेतृत्व जो उच्च दर्जे का और दूरदृष्टि लिए हुए हो, जिसके कुछ मूल्य हों और जो समूह-कार्य में विश्वास रखता हो। हमें इन स्कूलों में अच्छा नेतृत्व देने वाले मिल जाते हैं। नेतृत्व का भी एक पैटर्न देखने को मिलता है। मैं श्री शरणबसप्पा नसी (प्रधानाध्यापक, अनापुर स्कूल, यादगीर) की बात यह देखने के लिए करूँगा कि एक अच्छे स्कूल का प्रिंसिपल किस प्रकार काम करता है। मैं उन्हें अपने सुरपुर के दिनों से (2007 से) जानता हूँ।

नसी कल्पनाशील व्यक्ति हैं। वे जहाँ भी जाते हैं, उसी स्थान को एक बेहतर जगह बनाने के सपने देखने लगते हैं। हमने उन्हें प्रधानाध्यापक, क्लस्टर स्रोत व्यक्ति और फिर से प्रधानाध्यापक के रूप में देखा है। बात कुछ भी हो सकती है लेकिन वे लगातार

सोचते रहते हैं कि फलाँ को किस रूप में विकसित किया जा सकता है। अपनी दृष्टि को वे अपने साथियों के साथ साझा करते हैं। वे स्टाफ के सदस्यों और सहायक शिक्षकों को समझाकर अपने दृष्टिकोण तक लाने में वक्त लेते हैं। वे कहते हैं कि वे प्रत्येक व्यक्ति के साथ दृष्टि विकसित करने पर काम करते हैं। बहुत बार उनके दोस्त या अन्य शिक्षक उनसे कहते हैं कि वे क्यों किसी एक शिक्षक पर इतनी ऊर्जा लगाते हैं। लेकिन नसी अपनी बात पर अडिग रहते हैं। उनका मानना है कि एक टीम में साझा समझ विकसित करने के लिए आपको प्रत्येक शिक्षक पर समय लगाना होगा। एक जंजीर की ताकत उसकी सबसे कमजोर कड़ी पर निर्भर होती है। कुछ जल्दी समझ जाते हैं और कुछ को बहुत समय लगता है लेकिन नेतृत्व देने वाले के रूप में हमें प्रत्येक व्यक्ति पर काम करना होता है। एक बार यह हो जाता है तो साझा समझ और दृष्टि वाली टीम विकसित करना आसान हो जाता है। उनका कहना है कि टीम की समझ भी स्थाई या एक ही जगह स्थित नहीं रहती। वह गतिशील होती है और आप निरन्तर सम्प्रेषण की प्रक्रिया को रोक नहीं सकते। किसी भी टीम के आगे बढ़ने के लिए दृष्टि बाबत स्पष्टता और उत्तेजना का होना बहुत महत्वपूर्ण है। नेतृत्व करने वाले के पास कल्पनाशीलता होनी चाहिए लेकिन अच्छे नेतृत्वकारी के लिए यह दृष्टि पूरी टीम की दृष्टि होनी चाहिए। और दक्षता इसी में है कि इस कल्पनाशीलता और दृष्टि को टीम के साथ धीरे-धीरे विकसित किया जाए। नसी हर हालात में बहुत ही दक्षता के साथ यह करते हैं और अब तक सफल भी रहे हैं।

योजना बनाना नसी की ताकत है, और उन जैसे अन्य प्रधानाध्यापकों के लिए भी। वे जो भी कल्पना करते हैं, उसकी बहुत ठोस योजना बनाने में सक्षम हैं। नसी की टीम के सदस्य बताते हैं कि वे एक बहुत ही विस्तृत योजना बनाने में सक्षम हैं जो व्यावहारिक भी हो और चुनौतीपूर्ण भी। ऐसा लगता है कि नसी में बारीकी बातों पर आखिरी कदम तक काम करने की अच्छी पकड़ है। वे अपनी योजनाओं पर हमेशा अपनी टीम के साथ काम करते हैं।

जब मैं नसी से पूछता हूँ कि वे योगदान कैसे कर पाते हैं तो वे जवाब देते हैं, "मैं बहुत बुद्धिमान नहीं हूँ। मैं तो बस परिश्रमी हूँ। मैं तैयारी करता हूँ। मैं पढ़ता हूँ, उन लोगों से बात करता हूँ जो जानते हैं – और स्वयं को तैयार करता हूँ।" वे टीचर लर्निंग सेण्टर और जिला संस्थान में नियमित आते हैं। वे लोगों से मिलते हैं, उनसे बात करते हैं और पढ़ते हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि वे पढ़े हुए को अन्य लोगों के साथ चर्चा में लाते हैं। वे प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में भाग लेते हैं और अपने शिक्षकों को भी भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे कक्षाएँ लेते हैं। उनकी एक नियमित कक्षा है और कोई शिक्षक अनुपस्थित हो तो वे उसकी जगह भी पढ़ाते हैं। इस बात से अपने सहकर्मियों में उनके लिए आदर पनपा है। यह उदाहरण के साथ नेतृत्व प्रदान करने की बात है। वे किताबें पढ़ते हैं और आदतानुसार उनकी विषयवस्तु को अपनी टीम के सदस्यों के साथ साझा करते हैं। इसके चलते धीरे-धीरे उनकी टीम के अन्य सदस्य भी किताबें पढ़ने और उन्हें अन्य सदस्यों के साथ साझा करने लग गए हैं।

नसी लोकतांत्रिक हैं। वे अपनी टीम के सदस्यों की हर बात पर सलाह लेते हैं, बड़ी या छोटी, आम-साधारण चाहे महत्वपूर्ण। बैठकें खुली और पारदर्शी होती हैं। नसी के नेतृत्व की सबसे बड़ी बात क्या है? उनके शिक्षक कहते हैं कि वे अकादमिक नेतृत्व प्रदान करते हैं। उनका कहना है कि वे चाहे कुछ भी करें, उनके काम के केन्द्र में अकादमिक बातें ही होती हैं। बच्चों को अच्छी शिक्षा कैसे दी जाए? सीखना बच्चों के लिए रुचिकर और चुनौतीपूर्ण कैसे बनाया जाए? उनके लिए एक बेहतर माहौल कैसे बनाया जाए? शिक्षकों के लिए निरन्तर शिक्षा और विकास की प्रक्रिया कैसे रची जाए? ये सब बातें ही नसी के स्कूल को एक अच्छा, प्रदर्शन के लिहाज से भी बेहतर स्कूल बनाती हैं। सीखने का आधार रटना नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही प्रसन्न और बिना किसी भय के रहते हैं। बच्चों को ही क्यों, हमें भी अच्छा लगता है नसी के स्कूल में होना।

लर्निंग गारण्टी प्रोग्राम में 15 स्कूलों के 3 बार के विजेताओं पर किए गए अध्ययनों की 2006 की रिपोर्ट में भी इसी तरह का निष्कर्ष था। विजेता स्कूलों में कुछ बातें समान थीं, जैसे कि प्रतिबद्ध प्रधानाध्यापक और शिक्षकों के आपस में तथा समुदाय के साथ अच्छे सम्बन्ध होना। अब जब हम उत्तर-पूर्वी कर्नाटक के स्कूलों को देखते हैं, हमें कई अच्छे प्रदर्शन वाले स्कूल मिलते हैं। जब हम इन स्कूलों को यह जानने के लिए बहुत ध्यान से देखते हैं, कि इन स्कूलों की सफलता किस वजह से है, ये दो तत्व निकलकर आते हैं - एक, शिक्षक एक टीम की तरह काम कर रहे हैं और दो, एक अच्छा लोकतांत्रिक नेतृत्वकारी व्यक्ति है जो अकादमिक कार्य को प्रक्रिया के केन्द्र में रखता है और इस टीम को मिलकर काम करने और उसमें मजा लेने के स्तर तक ले जाता है। इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखते हुए हमने प्रो. जलालुद्दीन के शब्दों को नहीं भुलाया है, "एक अच्छा स्कूल बनने में क्या शामिल रहता है? तलाशने का कोई लाभ नहीं, बस काम में लग जाइए।"

उमाशंकर पेरिओडी अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के कर्नाटक राज्य प्रमुख हैं। उन्हें विकास के क्षेत्र में काम करने का 30 साल से भी अधिक समय का अनुभव है। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन तथा बी.आर.हिल्स, कर्नाटक में आदिवासी शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका व्यापक योगदान रहा है। वे जमीनी स्तर पर काम करने वालों और प्राइमरी स्तर के स्कूल-शिक्षकों को उनके कथनानुसार बेयरफुट रिसर्च में प्रशिक्षित करते रहे हैं। वे कर्नाटक राज्य प्रशिक्षुओं के समूह (कर्नाटक स्टेट ट्रेनर्स कलेक्टिव) के संस्थापक सदस्य हैं। उनसे periodi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन

शिक्षक और सरकार

रश्मि शुक्ला शर्मा

जब हम शिक्षक के बारे में सोचते हैं तो विद्यार्थियों, कक्षाओं और स्कूलों की छवियाँ मन में उभरती हैं। शिक्षक कितने बच्चे पढ़ाता है, कक्षा-कक्ष में फर्नीचर और सीखने-सिखाने की सहायक सामग्री, स्कूल किस प्रकार का है, छोटा है या बड़ा आदि – हम ये सब बातें करते हैं। इन सबको हम उस परिप्रेक्ष्य के तौर पर समझते हैं जिसमें शिक्षक काम करता है और हम जानते हैं कि परिप्रेक्ष्य शिक्षक के पढ़ाने के तरीके को प्रभावित करता है। हम यह भी जानते हैं कि पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें, विद्यार्थियों के मूल्यांकन की व्यवस्था, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि का शिक्षक के दृष्टिकोण और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के संचालन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

हम सरकार के बारे में और इस बारे में कि वह किस तरह एक शिक्षक को प्रभावित करती है, कम सोचते हैं। हम जानते हैं कि सरकार पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें तैयार करती है, शिक्षकों का प्रशिक्षण करती है और विद्यार्थियों के मूल्यांकन की व्यवस्था तय करती है और इस प्रकार वह उस ढाँचे को तैयार करती है जिसके तहत सीखने-सिखाने की प्रक्रिया चलती है। इन नीतियों का प्रभाव शिक्षक पर स्पष्ट ही पड़ता है और अक्सर शिक्षाविदों, शिक्षकों और आमतौर पर लोगों के बीच इनके बारे में बहस भी होती है। शिक्षकों की सेवा और कार्य की शर्तें तय करने में भी सरकार की मुख्य भूमिका रहती है। अधिकतर शिक्षक सरकारी कर्मचारी होते हैं, या कुछ मामलों में पंचायत के (हमारे संविधान के तहत पंचायतें 'स्थानीय शासन की संस्थाएँ' हैं)। सरकार शिक्षकों का वेतन, समयकाल तथा अन्य शर्तें तय करती है। लेकिन इससे भी बहुत कम स्पष्ट यह बात है कि स्वयं सरकार की कार्यप्रणाली से शिक्षक गहरे तक प्रभावित होते हैं। शिक्षक सरकार के भीतर व्यवस्थागत लोकाचार और प्रथाओं के तहत काम करते हैं। सरकार शिक्षकों को विभिन्न तरीकों से मदद देती है और उनका निरीक्षण करती है। साथ ही कई सकारात्मक और नकारात्मक संकेत और प्रोत्साहन देती है। सरकार के भीतर इन व्यवस्थागत प्रथाओं और संस्कृति का शिक्षक पर (और नतीजतन कक्षा पर) गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए शिक्षक को समझने के साथ-साथ यह भी समझना लाभकारी होगा कि सरकार काम कैसे करती है।

भारत का संविधान सरकार की कार्यविधि के लिए एक कानूनी ढाँचा प्रदान करता है। हमारा संविधान स्पष्ट तौर पर सामाजिक बराबरी के हक में दिखाई देता है। संविधान जाति, समुदाय, लिंग के आधार पर भेदभाव की अनुमति नहीं देता। इस कोशिश के हिस्से के तौर पर स्कूली शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने की इच्छा है। संविधान के तहत प्रारम्भिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार मानने का आदेश है और देश का प्रत्येक बच्चा यह शिक्षा पाने का अधिकारी है। असल में तो आजादी के बाद से सरकारी स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी और बड़ी संख्या में शिक्षकों की भर्ती इस संवैधानिक अनिवार्यता को प्रतिबिम्बित करते हैं। इस अर्थ में शिक्षक हमारे संविधान के सामाजिक उद्देश्यों को हासिल करने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है। हमारे संविधान के तहत यह आदेश भी है कि वंचित समूहों, खासकर अनुसूचित जातियों (एस.सी.) और अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) के हक में सकारात्मक कदम उठाए जाएँ। यह शिक्षकों के लिए नौकरियों में आरक्षण तथा एस.सी. एवं एस.टी. विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों जैसे विशेष लाभों में प्रतिबिम्बित होता है।

इसके अलावा, संविधान सरकार का एक व्यापक ढाँचा प्रस्तुत करते हुए केन्द्रीय और राज्य सरकारों की शक्तियों को परिभाषित करता है। 'शिक्षा' का मुद्दा दोनों के हिस्से आता है। सरकार के ये दोनों स्तर इसमें भूमिका अदा करते हैं। केन्द्रीय सरकार व्यापक नीतिगत मुद्दों को सम्बोधित करती है। राज्य सरकारें विस्तृत नीति (यानी नीति की बारीकियों तक) की जिम्मेदारी लेती हैं और स्कूलों के सामान्य प्रशासन की भी। उदाहरण के लिए, जहाँ एक ओर केन्द्र सरकार ने 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम' बनाया है, वहीं राज्य सरकारों ने इसके नियम बनाए हैं और वे लागू करने की जिम्मेदारी उनकी है। केन्द्र सरकार सर्व शिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम लेती है जिनके तहत स्कूली शिक्षा की मदद के लिए अनुदान दिए जाते हैं लेकिन वेतन, काम की परिस्थितियाँ, प्रशिक्षण और निरीक्षण समेत स्कूलों का प्रशासन राज्य सरकारों के हाथ में है। परिणाम यह कि मूलभूत ढाँचा, शिक्षा-पद्धतीय प्रथाएँ और स्कूलों की गुणवत्ता सभी राज्यों में एक से नहीं हैं, इनमें अन्तर पाया जाता है। पंचायतों को शक्तियाँ हस्तान्तरित करने की बात संविधान राज्य सरकारों पर छोड़ता है और हम देखते हैं कि एक राज्य से दूसरे में पंचायतों की भूमिका में अन्तर है। सभी में तो नहीं लेकिन कई राज्यों में शिक्षकों की नियुक्ति पंचायतें करती हैं।

केन्द्र सरकार कुल मिलाकर किन बातों पर बल देती है, इसका कुछ न कुछ प्रभाव तो शिक्षकों पर होता है लेकिन शिक्षक काफी अधिक

हद तक राज्य सरकारों की कार्यप्रणाली से ही प्रभावित होते हैं। सरकारी स्कूलों में शिक्षक आमतौर पर सरकारी या पंचायत के कर्मचारी होते हैं। केवल केन्द्र सरकार द्वारा संचालित स्कूलों (जैसे कि केन्द्रीय विद्यालय और नवोदय विद्यालय) में शिक्षक केन्द्र सरकार के अधीन होते हैं। पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें राज्य सरकार द्वारा बनाई जाती हैं तथा निरीक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षक भी राज्य सरकार के कर्मचारी होते हैं। इसी वजह से स्कूलों में मुहय्या करवाई जाने वाली शिक्षा, शिक्षकों के वेतन, काम करने की परिस्थितियाँ आदि अलग-अलग राज्य में अलग-अलग हैं।

भारत में स्कूली शिक्षा ऊपर-कथित संवैधानिक ढाँचे में स्थित है लेकिन हमारी सरकार किस प्रकार की है, यह अकेले संविधान से तय नहीं होता। उदाहरण के लिए, संविधान सामाजिक बराबरी को बढ़ावा देता है और हाशिए पर पड़े समूहों के लिए विशेष प्रावधान करता है। इससे स्कूलों की जन-जन तक पहुँच के फैलाव की व्याख्या तो होती है लेकिन इस बात की व्याख्या नहीं होती कि ये स्कूल किस प्रकार कार्य करते हैं, किस प्रकार की किताबें तैयार की गई हैं, किस प्रकार का शिक्षक-प्रशिक्षण दिया गया है। ये सब तो इससे प्रभावित होता है कि सरकार किस प्रकार की है और वह कैसी नीतियाँ लागू कर रही है। और सरकार कैसी है, यह राजनैतिक परिदृश्य, नौकरशाही तथा सरकार के भीतर अपनाई जा रही प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।

भारतीय लोकतंत्र दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यह इस वजह से राजनीति-विज्ञानियों के लिए आकर्षण का स्रोत रहा है कि निम्न सामाजिक-आर्थिक विकास और अत्यधिक गरीबी के परिप्रेक्ष्य में इस तरह का टिकाऊ लोकतंत्र दुर्लभ है। हम अपने लोकतंत्र पर उचित गर्व कर सकते हैं लेकिन हमें यह भी पहचानना होगा कि इसका रूप विकसित देशों के पुराने लोकतंत्रों से बहुत भिन्न है। हमारी राजनीति में दो परस्पर विरोधी रूझान हैं। एक ओर तो राजनीतिज्ञ चुनाव जीतने की आशा तब ही कर सकते हैं अगर वे नागरिकों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हों। इसके फलस्वरूप बहुत बार जोर-शोर से काम हुआ है, जैसे कि स्कूली व्यवस्था का फैलाव तथा विद्यार्थियों के लिए नि:शुल्क पुस्तकों, मध्याह्न भोजन, छात्रवृत्तियों आदि का प्रावधान। लेकिन दूसरी ओर हमारी राजनीति में बहुत-सा भ्रष्टाचार और निरंकुशता तथा मनमानी का तत्व भी है। नागरिक सरकारों को सत्ता से बाहर तो कर सकते हैं लेकिन दिन-प्रतिदिन उन्हें बहुत उच्च स्तर के भ्रष्टाचार और काम करने की गैर-लोकतांत्रिक शैली का भी सामना करना पड़ता है।

भारत में शिक्षकों समेत सभी सरकारी कर्मचारी इस राजनैतिक गतिमान ताकत से प्रभावित होते हैं। एक ओर तो वे गरीबों के हक की कई नीतियाँ लागू करते हैं। लेकिन दूसरी ओर, वे यह एक ऐसी व्यवस्थागत संस्कृति में करते हैं जो अच्छे काम को नहीं पहचानती, न ही प्रोत्साहित करती है, जिसके चलते नीतियों का वास्तविक रूप में लागू होना संतोषजनक नहीं होता। राजनैतिक सम्पर्कों वाले शिक्षकों को अपनी मर्जी का कार्यस्थल मिल सकता है, बावजूद इसके कि वे अच्छा नहीं पढ़ाते (या शायद पढ़ाते ही न हों) जबकि उन्हें इसके कोई परिणाम भी नहीं झेलने पड़ते। इसके उलट अपने काम के लिए प्रतिबद्ध शिक्षकों को व्यवस्था में शायद बहुत कम पहचान मिले, उन्हें शायद मुश्किलों का सामना भी करना पड़े, जैसे कि कठिन इलाकों में लगातार तबादले होना। इससे एक ऐसी व्यवस्थागत संस्कृति पनपती है जिसमें काम का अवमूल्यन होता है और वह सरकार में शिक्षकों समेत सब लोगों को प्रभावित करता है, और धीरे-धीरे उनकी प्रेरणा कम होती चली जाती है।

भारत में नौकरशाही के चरित्र के भी महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव हैं। हमारी नौकरशाही उपयुक्त हद तक पेशेवर नहीं है। उदाहरण के लिए, स्कूल निरीक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों को अपने कार्य के लिए पर्याप्त पूर्व-सेवा और सेवाकालीन प्रशिक्षण नहीं मिल पाता। इसके अलावा एक व्यक्ति किसी एक पद पर हो सकता है, इसलिए नहीं कि वही उस पद के लिए उपलब्ध सबसे बेहतर व्यक्ति है बल्कि इसलिए कि कोई न कोई व्यक्ति इनका संरक्षक है या उस विशेष पद के लिए उसने पैसे चढ़ाए हैं। इसी का नतीजा है कि हमारे पास सबसे बेहतरीन निरीक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षक नहीं होते। एक बार किसी व्यक्ति को इस तरह पद की प्राप्ति हो जाती है तो समझिए कि काम करने के लिए उसका जोश भी बहुत कम होगा। इसका अर्थ है कि शिक्षकों को निरीक्षक और प्रशिक्षक सहायक वातावरण नहीं दे पा रहे। शिक्षकों के उत्साह और प्रोत्साहन के लिए इसके नकारात्मक नतीजे हैं।

भारत की अर्थव्यस्था 1990 के मध्य से बहुत तेजी से बढ़ी है। इसकी वजह से सरकार का राजस्व बढ़ा है और सरकार के पास अब 1950 और 1960 के दशकों के मुकाबले कहीं अधिक धन उपलब्ध है। इसी की वजह से सरकार संवैधानिक माँग के अनुरूप स्कूली व्यवस्था और ढाँचे को काफी बढ़ा और फैला पाई है। लेकिन जैसा कि कई राजनीति-विज्ञानियों ने दर्शाया है, पिछले तीन दशकों में सरकार में पैसे की ताकत और संरक्षण का प्रभाव भी बहुत बढ़ गया है। विडम्बना तो यह है कि आजादी के बाद भारत ने शुरुआत तो कम संसाधनों के आधार से की थी लेकिन तब सरकार बेहतर तरीके से काम करने वाली थी। तब सरकारी स्कूल आज के मुकाबले में कुछ बेहतर तरीके से कार्य कर रहे थे लेकिन उनकी संख्या बहुत कम थी। शिक्षक भी बहुत ही कम थे लेकिन जो भी थे, वे अपने दायित्वों को कहीं अधिक गम्भीरता से लेते थे। जैसे-जैसे सरकार के पास उपलब्ध धन बढ़ा, सरकार की कार्य-प्रणाली में गिरावट आती गई जिसका परिणाम यह है कि आज हमारे पास कहीं अधिक स्कूल हैं लेकिन वे कम अच्छी तरह काम करते हैं।

संज्ञान लेने लायक एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि 1980 के दशक के बाद से पूरे संसार में सार्वजनिक/शासकीय प्रशासन के बारे में गम्भीर पुनर्विचार होता रहा है और 'नया सार्वजनिक/शासकीय प्रबन्धन' एक उदाहरणस्वरूप उभरकर आया है जिसके तहत पक्के सरकारी कर्मचारी होने की बजाए लोगों को अनुबन्ध पर लगाने तथा कार्य को बाहरी एजंसियों को देने की प्रवृत्ति रही है। इस सोच का प्रभाव हमें कई राज्यों में पैरा-शिक्षकों को बड़े पैमाने पर भाड़े पर लगाने की शक्ल में दिखाई देता है। देश की आजादी के समय सरकार का आकार बढ़ाने तथा एक स्थाई नौकरशाही की बात को व्यापक तौर पर स्वीकृति प्राप्त थी। 1990 के दशक से इन बातों पर सवाल उठाए जा रहे हैं। इससे काम की स्थितियों में और परिणामस्वरूप शिक्षकों के काम करने की शैली में भी बड़ा बदलाव आया है। ध्यान देने की बात यह है - जबकि नए सार्वजनिक प्रबन्धन ने विकसित देशों में परिपक्व लोकतंत्रों के परिप्रेक्ष्य में जड़ पकड़ी थी, हमारे नए लोकतंत्र में इसकी गतिशीलता अलग तरह की रही है। हमें जाँचना होगा कि क्या इससे शिक्षकों के काम के हालात में संरक्षण और प्रश्रय तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है?

सार की बात यह कि शिक्षक और उनका काम उस सरकार के प्ररिप्रेक्ष्य में स्थित हैं जिसे संविधान, राजनीति और नौकरशाही ने ढाला है। सरकार की प्रकृति बदलने के साथ ही शिक्षकों पर भी समानान्तर प्रभाव दिखाई देता है। शिक्षक को समझने के लिए हमें न केवल शैक्षिक नीतियों और प्रथाओं को बल्कि सरकार को भी समझना होगा। सरकार के बारे में कुछ उल्लेखनीय बिन्दुओं पर ऊपर रोशनी डाली गई है लेकिन शिक्षक को पूरी तरह समझने और मदद के लिए सरकार की एक वास्तव में विस्तृत समझ बनाना आवश्यक है।

रश्मि शुक्ला शर्मा 1984 के बैच की भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी हैं। वे मध्य प्रदेश काडर से हैं। उन्होंने केन्द्रीय और राज्य सरकार में अलग-अलग पदों पर, तथा स्कूली शिक्षा और पंचायती राज में कई साल काम किया है। उन्होंने दो पुस्तकें लिखी हैं – 'भारत में स्थानीय शासन : नीति और व्यवहार' तथा 'भारत में प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था' (विमला रामचन्द्रन के साथ मिलकर सम्पादित)। शिक्षा तथा स्थानीय शासन पर कई लेख भी लिखे हैं। उनसे rashmishuklasharma@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** रमणीक मोहन

सेवा-पूर्व शिक्षक तैयारी – पाठ्यचर्या, व्यवहार और वास्तविकता

हृदयकांत दीवान

शैक्षिक प्रक्रिया और विकास को बल देने के लिए शिक्षक बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया है। यह दर्शाने के लिए पर्याप्त शोध उपलब्ध हैं कि बच्चों को व्यस्त और प्रक्रियाओं में शामिल रखने में सक्षम शिक्षक का स्वभाव, प्रोत्साहन और सामर्थ्य ज्ञानार्जन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वे शिक्षा के लिए एक कुंजी की तरह हैं। इसलिए उनकी तैयारी पर बल देना आवश्यक है। और इतना ही आवश्यक इस बात पर बल देना है कि उपलब्ध मौकों और स्थितियों से परिचय के आधार पर अनुभव के साथ आगे चलकर बेहतर प्रवृत्ति और अपनी गलतियाँ ठीक करने के साथ निरन्तर सीखना हो पाए। इसी सन्दर्भ में हम सेवा-पूर्व शिक्षक-तैयारी की पड़ताल करेंगे। हम शुरुआत करेंगे शिक्षक-तैयारी के ढाँचे और व्यवस्था के अवलोकन तथा विश्लेषण से। उसके बाद हम इसके महत्वपूर्ण तत्वों और चुनौतियों तथा सम्भावित विषयवस्तु और कार्यविधियों पर एक नजर डालेंगे।

शिक्षक-तैयारी बहुआयामी होती है। यहाँ हम कुछेक आयामों की ओर इशारा करेंगे तथा वर्तमान में प्रासंगिक और महत्वपूर्ण सरोकारों को उठाएँगे। पिछले कुछ दशकों में शिक्षकों को पुन: प्रशिक्षित करने के कई मिशन देखने में आए हैं। इसके पीछे दो मुख्य कारण रहे हैं। एक तो यह, कि शिक्षक स्वयं को तरोताजा कर पाएँ, अनुभव साझा कर पाएँ और सीख पाएँ; दूसरा यह, कि सेवा-पूर्व के दौरान उनके द्वारा सीखे गए विचार अब प्रचलित नहीं हैं और इसलिए नए सिद्धान्तों और विचारों के सम्पर्क में आने की आवश्यकता है। दोनों ही बातें वाजिब हैं और सेवा-पूर्व तैयारी के बारे में महत्वपूर्ण सवाल उठाती हैं। एक महत्वपूर्ण सवाल आज के कार्यक्रमों के प्रचलन को लेकर है और दूसरा शिक्षक-तैयारी के समयकाल, तरीके और गति को लेकर। पहले हम दूसरे सवाल को लेंगे – यानी तैयारी-कार्यक्रमों के समयकाल, वक्त, गति और स्थान के बारे में।

शिक्षक-तैयारी का ढाँचा क्या होना चाहिए?

कार्यक्रम के समय और व्यवस्था को तीन रणनैतिक तरीकों में बाँटा जा सकता है। एक तरीका तो है कि आप शिक्षक बनने से पहले ही लगभग सब कुछ कर लें और शिक्षक के तौर पर तब ही शुरुआत करें जब आपको काम के लिए प्रमाणित कर दिया गया हो। इसका मुख्य सन्देश ये है कि व्यक्ति का सही ढंग से चुनाव करें और फिर उसे 'तैयार' और लैस करें तथा शिक्षण का लाइसेंस दे दें। यह तरीका हम भारत में प्रयोग कर रहे हैं और हाल के निर्णय इसे और अधिक बढ़ावा देने की ओर ही ले जाते हैं।

दूसरा तरीका है कि कोई शुरुआती तैयारी न हो और होने-वाले-शिक्षक को एक बहुत ही संक्षिप्त लेकिन निर्णयकारी परिचय-सत्र के बाद स्कूल में धकेल दिया जाए - और फिर उसके साथ प्रशिक्षुओं के एक छोटे समूह के हिस्से के तौर पर, एक कोच या मेन्टर (मार्गदर्शक) को लेकर काम किया जाए, या स्कूल में समय-समय पर परस्पर मेल-जोल की अन्य कार्यविधियों के माध्यम से काम किया जाए। इन अन्त:क्रियाओं में विद्यार्थी-शिक्षक द्वारा किए जाने वाले विभिन्न तरह के काम और विचार हो सकते हैं जिन्हें साझा किया जा सकता है - और जिनके बारे में रिपोर्ट किया जा सकता है। यह शिक्षक की किसी स्कूल में नियुक्ति से कुछ साल बाद तक जारी रह सकता है और फिर धीरे-धीरे इसका होना घट सकता है और कम अवधि का भी। इसके पीछे विचार यह है कि इससे शिक्षक को अपनी ही तरह संघर्ष करने वालों के साथ बात साझा करने और उनसे सीखने का अधिक मौका मिलता है। साथ ही बार-बार उस सब पर विचार करने के अवसर भी मिलते हैं जो वह दूसरों के साथ मिलकर करती रही है।

तीसरा तरीका विभिन्न अनुपातों में इन दोनों के मेल का हो सकता है। इसमें बल इस बात पर होगा कि सेवा-पूर्व कार्यक्रम को शिक्षक तैयार करने के अन्य तरीकों के साथ जोड़ने, उन्हें अनुपूरक के तौर पर इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। इसका अर्थ होगा एक लम्बे सेवा-पूर्व कार्यक्रम के बाद किसी स्कूल में प्रशिक्षण (इन्टर्नशिप) का एक दौर और फिर परस्पर अन्त:क्रिया तथा कुछ और पाठ्यक्रमों के लिए वापसी। इसके अलावा विद्यार्थी-शिक्षक कई पाठ्यक्रमों की एक टोकरी से अपनी इच्छा से किसी भी पाठ्यक्रम का चुनाव कर सकती है और फिर उस पाठ्यक्रम से जो चाहे ले सकती है।

इनमें से दूसरे विकल्प के तहत विद्यार्थी-शिक्षक के लिए स्कूल और कक्षा में अधिक समय मिलता है। ऐसा नहीं है कि पहले विकल्प में स्कूल का अनुभव नहीं है लेकिन यह कम है - और उसका उद्देश्य और प्रक्रिया भी अलग है। ये मॉडल हमारे सामने सवाल पेश करते हैं – क्या शुरुआती शिक्षक-तैयारी का एक लम्बा समयकाल बेहतर और आवश्यक है या फिर शिक्षक के तौर पर उसका विकास इससे कहीं अधिक निरन्तरता में चलने वाली एक वैचारिक प्रक्रिया है? क्या शुरुआत में संस्था-आधारित एक छोटी अन्त:क्रिया हो

और फिर लगभग पूरा समय एक स्कूल के साथ सम्बद्ध होते हुए बीच-बीच में परस्पर अन्त:क्रिया? स्कूल-अनुभव या उसमें लीन होने (या फिर उसे हम चाहे जो कहें), का मुख्य उद्देश्य और प्रकृति क्या होने चाहिए?

क्या सेवा-पूर्व शिक्षक-तैयारी स्वावलम्बी हो सकती है?

इस सब पर काफी चर्चा और अनुसंधान हुआ है और पहले विकल्प वाले कार्यक्रम की काफी आलोचना हुई है । प्रक्रिया का प्रमाणीकरण मूलत: पहले होने और उसके बाद के समय में कुछ न होने के चलते ऐसा कोई मौका नहीं रहता कि शिक्षक शिक्षण के अनुभव के बाद कुछ विचार कर पाए। अनुभव ने दर्शाया है कि इस तरह के मौजूदा कार्यक्रम खुद अपने दम पर खड़े नहीं होते और उद्देश्य को विफल करते हैं। तर्क दिया जाता रहा है कि कक्षा और शिक्षण के पर्याप्त अनुभव के बिना पढ़ाने या पठन सामग्री का अर्थ विद्यार्थी-शिक्षकों की पकड़ में नहीं आता जबकि कुछ अन्य लोगों का तर्क है कि दोष तो विषयवस्तु की गुणवत्ता और प्रकृति का है। यह भी कहा जाता है कि स्कूल-अनुभव वैसा नहीं होता जैसा होना चाहिए और लेक्चरों के साथ उस का उपयुक्त सम्बन्ध नहीं है। हाँ, इस आवश्यकता पर सब की सहमति है कि शिक्षक अपने अनुभव साझा करें और उन पर सोचें। आवश्यकता यह भी है कि सोच-विचार के साथ-साथ पढ़ने और सैद्धान्तिक विचारों से सम्बद्ध हुआ जाए। समय-समय पर अन्त:क्रिया को फिर से ताजा करने की आवश्यकता को भी पहचाना गया है - और इसीलिए व्यापक-विस्तृत शिक्षक-तैयारी, मूल्यांकन, प्रमाणीकरण और निरन्तर सीखने (जरूरत पड़ने पर मूल्यांकन, पुन: प्रमाणीकरण) की आवश्यकता है।

शिक्षक-तैयारी के प्रोग्रामों को वर्गीकृत करने की एक और धुरी कक्षा के अनुभव तथा अवधारणात्मक चिन्तन के बीच सन्तुलन और अक्सर सैद्धान्तिक माने जाने वाले सवालों के साथ जूझने की हो सकती है।

स्कूल-अनुभव और शिक्षक-तैयारी

स्कूल-अनुभव पर पहले से अधिक दिया जा रहा बल स्वागत योग्य है। इसके बारे में कुछ नए विचार भी अब सुनने में आ रहे हैं। इनमें से कुछ सार्थक हैं जबकि अन्य ऐसे भी हैं जो कई सिद्धान्तों के विरुद्ध जाते हैं, जिनमें सफलता की सम्भावना की बात भी शामिल है। यह पहचाना जा रहा है कि शिक्षक को स्कूल में और अधिक जड़बद्ध होना चाहिए, उसे शिक्षण को पेशे के रूप में लेना चाहिए और इस तरह वास्तविक हालात के साथ आमना-सामना बढ़ना चाहिए, जैसा कि मेडिकल कॉलेजों में होता है। यह बात बहुत ही तार्किक और माने जाने लायक लगती है। लेकिन इसमें खतरे भी मौजूद हैं और काम की प्रकृति की वजह से इसे लागू न किए जा पाने की सम्भावनाएँ भी हैं और यह शायद एक तर्कसंगत उपमा होने की हद तक भी नहीं जा पाता। स्कूलों से अधिक मेल-जोल और जान-पहचान के तरीकों के बारे में और प्रशिक्षण के बड़े हिस्से को स्कूलों में ही हस्तांतरित करने के बारे में सोचा जाए, इस बारे में प्रयास किए गए हैं। सेवाकालीन प्रशिक्षणों के साथ हुए प्रयोगों से भी सेवा-पूर्व के लिए इस प्रकार के कई मॉडल निकले हैं लेकिन इनमें से किसी को भी पूरी तरह विकसित नहीं किया गया और न ही करके देखा गया है। सबसे बड़ी अड़चन विद्यार्थी-शिक्षकों की सँख्या और अच्छे मार्गदर्शकों की है। इतना ही कहना काफी है कि शिक्षक-प्रशिक्षण के नए सेवा-पूर्व कार्यक्रमों में इन्टर्नशिप के समयकाल को बढ़ा दिया गया है और शब्दों में पुन: परिभाषित भी किया गया है। यह शिक्षक-तैयारी पर चर्चाओं की वजह से हो पाया है लेकिन इन चर्चाओं की दलीलों की मूल भावना इसके डिजाइन या बुनावट में से कहीं छूट गई है।

स्कूल में अभ्यास के दौरान शिक्षक से क्या सीखने की आशा रखी जाती है, इस आधार पर उसकी भूमिका और जिम्मेदारी क्या रहेगी - इस पर पूरी तरह से विचार नहीं किया गया है। कार्यक्रम की संरचना और स्कूल के साथ उसके सम्बन्ध पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्कूलों के साथ डाइट, शिक्षकों, कॉलेजों और अन्य संस्थाओं के सम्बन्धों के लिए भी इसके निहितार्थ हैं – और ज्ञान से सम्बद्ध श्रेणीबद्ध व्यवस्था के व्याप्त प्रभुत्व के लिए भी। आशा की जानी चाहिए कि किसी स्कूल में प्रशिक्षण का समयकाल शिक्षक-विद्यार्थी और उसके कॉलेज, दोनों के लिए स्कूल की स्थितियों से सीखने और उस अनुभव को आत्मसात करने के लिए होगा। लेकिन जिस रवैये से प्राध्यापक - और विद्यार्थी भी - वहाँ जाते हैं, उसमें शिक्षकों को यह बताने का नजरिया रहता है कि क्या करना है और कोशिश भी वह करने को कही जाती है जिसके बारे में पहले से पता है और जो सही है। ज्ञान की श्रेणीबद्ध व्यवस्था स्कूल के अनुभव को पूर्व-निर्धारित और यांत्रिक बना देती है जिससे न तो स्कूल को और न ही कॉलेज को कोई लाभ हो पाता है। विद्यार्थी-शिक्षकों या प्राध्यापकों की ओर से स्कूल की कठिनाई को समझने का और न ही उनकी मदद करने का कोई प्रयास होता है। संस्थाओं में परस्पर संवाद का सम्बन्ध बहुत ही स्पष्ट तौर पर गायब है।

सिद्धान्त: स्कूल के साथ पहले से अधिक जान-पहचान, और स्कूल में बच्चों तथा शिक्षकों का अवलोकन एक अच्छी बात हो सकती है। असल सरोकार यह है कि इस काम के लिए पर्याप्त स्कूल कैसे उपलब्ध हो पाएँ और कैसे उन्हें इस बात के लिए तैयार किया जाए कि बड़ी संख्या में विद्यार्थी एक तयशुदा साझा कैलेण्डर के तहत किसी भी समय वहाँ पहुँच जाएँ और वे सब एक ही समय पर स्कूल और कक्षा में रहना चाहें। यह स्पष्ट नहीं है कि इस

कैलेण्डर को साझा तौर पर ही निर्देशित क्यों होना है जिसके चलते सभी विद्यार्थी-शिक्षक स्कूलों में एक ही समयकाल में पहुँचते हैं? मार्गदर्शक-शिक्षकों और मुख्याध्यापकों की तैयारी लगभग नदारद होती है। अधिकतर होता यह है कि तिथियों और विद्यार्थी-शिक्षकों के क्षेत्रों के बारे में निर्णय लेने से पहले उनके साथ कोई अन्त:क्रिया नहीं होती।

स्कूल के उपलब्ध होने की समस्या और स्कूल के लिए इस अभ्यास के लाभ की बात आपस में जुड़ी हुई लेकिन पूरी तरह से एक-दूसरे को कवर करने वाली नहीं हैं। बावजूद इसके कि स्कूल इन्हें लाभदायक न पाएँ, वे अपनी सीमाओं को लाँघकर भी भावी शिक्षक-विद्यार्थियों को अनुमति देने के लिए तैयार होते हैं। लेकिन कॉलेजों की बड़ी संख्या और कक्षाओं में स्थित किए जाने के लिए आवश्यक लोगों की संख्या उनके बेहतर से बेहतर इरादे को भी परास्त कर देती है।

पाठ्यचर्या के तत्वों का निर्माण

समयकाल चाहे कितना भी हो और व्यवस्था तथा संरचना का तरीका कैसा भी, सेवा-पूर्व तैयारी के लिए महत्वपूर्ण समझे जाने वाले तत्वों में कुछ अनिवार्यताएँ तो शायद शामिल होनी ही होंगी। इसके लिए तैयारी का खाका और कक्षा हेतु शिक्षक की आवश्यक सामर्थ्य होना होंगे। ये तत्व स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर मोटे रूप में एक से रहते हैं लेकिन उनका अनुपात और प्रकृति अलग-अलग कक्षा के लिए बदलता है। हम पहले विशिष्ट तत्वों पर नजर डालेंगे और फिर उन्हें व्यवहार में लाने के बारे में सोचेंगे।

सबसे महत्वपूर्ण शर्त है कि शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी पृष्ठभूमि, आकांक्षाओं, मान्यताओं, संस्कृति और प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में समझें और उनका आदर करें। उनकी भाषा को जानें और इस्तेमाल करें, उनका तथा उनके समुदाय के ज्ञान का आदर करें। उन्हें अपने आदर्श पहचानने में मदद करें तथा और भी ऐसे आदर्श रचने में सहायक हों।

इसका स्वाभाविक अर्थ है उनके जीवन में शिक्षा की भूमिका और अर्थ को समझना; यह भी समझना कि हम सबके लिए उसका अर्थ क्या है और एक लोकतांत्रिक मानव समाज में कुछ हद तक उसकी भूमिका क्या है; संविधान की प्रस्तावना में प्रस्तुत प्रतिबद्धताओं को भारतीय सन्दर्भ में समझना और इन्हें स्कूल में सम्मिलित करने की कोशिश करना। देखने में आता है कि किसे कितने अवसर तथा नई स्थितियों से अवगत होने के मौके मिलते हैं, इस सन्दर्भ में बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है - इस बात को ध्यान में रखते हुए जागरूक होना होगा कि सबको बराबर का स्थान और मौका प्रदान किया जाए।

तीसरा तत्व यह समझने का है कि इन्सान सीखते कैसे हैं – खासतौर से किसी विशेष आयु-समूह के बच्चे कैसे सीखते और व्यवहार करते हैं। इसमें यह समझ भी शामिल है कि ज्ञानार्जन का अर्थ क्या है। उदाहरण के लिए, ज्ञानार्जन का अर्थ केवल फिर से कुछ याद करने या कार्यपद्धतियों का अनुकरण करने की काबिलियत होना ही नहीं है। इसका अर्थ किताब में दिए गए सवालों के जवाब देने की सामर्थ्य या परीक्षा में उसके अनुसार प्रदर्शन भी नहीं है। यानी इस बात का एहसास और आभास होना होगा कि क्या सीखा जाना है; और कैसे यह अन्दाजा हो कि कक्षा में वह ज्ञानार्जन तथा उसके साथ सम्बद्ध होना हो पा रहा है या नहीं। नीतिगत एवं पाठ्यचर्या सम्बन्धी दस्तावेजों में तथा अन्यथा भी इस बारे में बहुत कुछ कहा गया है। इस बारे में बात करना आसान है मगर इसे अवधारणात्मक और फिर ठोस रूप देना मुश्किल है - व्यवहार में लाना तो और भी अधिक मुश्किल है।

चौथा तत्व है उस विषय को जानना जिसे कक्षा में पढ़ाया जा रहा है। यानी जानना कि उसे सीखना प्रासंगिक क्यों है, उसकी प्रकृति क्या है, विषय के बुनियादी ढाँचे को रूप देने वाली अवधारणाओं और उनमें अर्थ की बारीकियों एवं सूक्ष्म भेदों के बारे में विश्वस्त होना। विषय के प्रति रवैया जिज्ञासा और सहजता का होना चाहिए, विषय को जानने के घमण्ड से भरी प्रतिष्ठा के बोझ से पैदा होने वाले भय और चिन्ता का नहीं। शिक्षक में बच्चों की उस यात्रा की रूपरेखा खींचने की सामर्थ्य होनी चाहिए जिसके तहत वे समझ और सहानुभूति के साथ अवधारणाओं और विषय के अर्थ की बारीकियों और सूक्ष्मताओं को सीखते हैं। मौजूदा व्यवस्था द्वारा तैयार किया गया आज का शिक्षक इससे बहुत दूर है। तैयारी के समयकाल में यह सब कोशिश किए जाने की बात मुश्किल है, खासतौर से इसलिए कि शिक्षक कक्षा में कई विषय पढ़ाते हैं और यह भी कई चरणों में होता है। हम उनमें खोजी होने की भावना और उल्लास कैसे पैदा करें और विषयों का भय तथा उनके प्रति ऊब से कैसे बचा जाए?

इस सबका प्रयोग, बच्चों को सीखने में मदद के लिए

अन्तिम लेकिन निर्णायक कदम इस सबको बच्चों के साथ कक्षा में प्रयोग करने का है। इसके लिए ज्ञान को प्रस्तुत करने की काबिलियत, दिलचस्पी और बच्चों को व्यस्त रखना जरूरी होगा। साथ ही उनकी प्रवृत्तियों को प्रयोग में लाते हुए उनमें अर्थपूर्ण अन्त:क्रिया करवा पाना भी शामिल होगा। एक ओर उन्हें मासूम कलियों या साँचे में ढलने वाली मिट्टी की तरह मानने और दूसरी ओर दिक्कत पैदा करने वाले अनुशासनहीन बदमाशों के रूप में देखने के बीच सन्तुलन बैठाना होगा। कक्षा को वार्तालाप का स्थान बनाना होगा। दबाव-रहित तरीके से सही और गलत विचार विकसित करने में मदद देनी होगी। ऐसे विचार और मूल्य-व्यवस्थाएँ होने होंगे जिनके लिए वे तार्किक कारणों के साथ खड़े हो पाएँ।

यह बहुत ही व्यापक और समग्र बात लगती है और इस पर अक्सर बल दिया जाता है तथा इसकी चर्चा भी की जाती है। लेकिन इसे आंशिक तौर पर भी व्यवहार में ला पाना अगर नामुमकिन नहीं तो बहुत कठिन तो जरूर है। शिक्षार्थियों में और स्वयं आपस में भी ज्ञानार्जन का अर्थपूर्ण वार्तालाप निर्मित करने में मदद के लिए शिक्षक एक अनिवार्य तत्व हैं और शायद हमेशा रहेंगे। व्याख्यायित की गई क्षमताएँ कुछेक के लिए ही आवश्यक नहीं हैं। बल्कि अधिकतर बच्चों के साथ वे कुछ कर पाएँ, इसके लिए ये सभी शिक्षकों के लिए होना होंगीं।

एक शिक्षार्थी के रूप में शिक्षक का विचार और उससे अपेक्षित भूमिका

शिक्षक-तैयारी की जंग एक स्तर पर तो हमेशा न लाभ-न घाटे का खेल रहा है। आमतौर पर एक इच्छा तो यह रहती है कि हर बात का भार शिक्षक पर डाल दिया जाए और उसे इसके लिए तैयार किए जाने की अपेक्षा भी रहती है। या फिर यह दावा करने की इच्छा रहती है कि कुछ अधिक आशा नहीं रखी जाए। शिक्षक-तैयारी और प्रशिक्षण को व्यर्थ समझने वाले संशयवादियों का तर्क है कि इस पर खर्च और अधिक घटाया जाए। उन्हें लगता है कि पैसा सीधे बच्चों पर खर्च किया जाना चाहिए। उनका तर्क है कि कुछ भी हो, शिक्षक बदलेंगे नहीं। उनसे अपने सीखने-सिखाने के कार्यक्रम स्वयं तैयार करने की और शिक्षार्थियों से मिलने वाले इन्पुट्स (योगदान) की मदद से सक्रिय तौर पर अपनी कक्षा-निर्माण की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए उन्हें तो बस कुछ लाभदायक संकेत चाहिए और फिर कुछ स्पष्ट दिशा-निर्देश। स्वप्नदर्शी इसके बिल्कुल उलट विश्वास रखते हैं। लेकिन दोनों इस बात पर सहमत हैं कि वर्तमान स्थिति बहुत खराब है और शिक्षक दोषी हैं। कोई भी सूक्ष्मभेदी विश्लेषण मौजूदा व्यवस्था के साथ संघर्ष की असमर्थता के कारण सीमित और तंग रह जाता है। सम्पूर्ण शिक्षक-तैयारी और उसमें भी विशेष तौर पर सेवा-पूर्व तैयारी इस बात पर निर्भर करती है कि हम शिक्षकों को कैसे समझते हैं और बच्चों को सिखाने के लिए उपयुक्त होने के सन्दर्भ में हम उनके बारे में क्या सोचते हैं। इसका प्रभाव इस बात पर भी पड़ेगा कि हमारे विचार से उनकी सामर्थ्य को बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए और यह कैसे किया जाए।

शिक्षक को एक 'ईश्वर जैसा' समर्थ व्यक्ति मानने वाला, यथार्थ से कटा हुआ, मनोविदलित दृष्टिकोण (schizophrenic) तथा उन्हें एक श्रेणी और व्यक्ति के तौर पर अनादर एवं तिरस्कार की नजर से देखने का नजरिया व्यवस्था के साथ शिक्षक के सम्बन्ध को गड़बड़ा देता है। उनके तैयारी-कार्यक्रम को इस बात पर स्पष्ट होना चाहिए कि परिप्रेक्ष्य क्या है और ध्यान के केन्द्र में क्या है। क्या हम इस कार्यक्रम को इस मान्यता पर आधारित करें कि शिक्षक (और इसलिए शिक्षक-अध्यापक भी) शिक्षार्थी हो सकते हैं? और वे चाहे अलग-अलग कार्यविधियों और रणनीतियों का ही अनुकरण क्यों न करें, इन्हें जीवन, समाज, ज्ञान और शिक्षा की उनकी समझ के आधार पर शिक्षकों द्वारा स्वयं विकसित किया जाना चाहिए? या फिर कार्यक्रम इस निर्णय पर आधारित हो कि अनुसरण के लिए विस्तृत प्रोग्राम दिया जाए और फिर उसमें बदलाव की बहुत ही कम या बिल्कुल भी गुंजाइश न हो या उसे ढालने के लिए भी कोई प्रयास न हो?

यही हमें शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में होने वाले आदान-प्रदान की प्रकृति तक भी ले आता है। अगर शिक्षण मात्र अल्गोरिदम (यानी प्रतीक-गणित) नहीं है और शिक्षा वार्तालाप-आधारित आदान-प्रदान की प्रक्रिया है और अगर सीखने वाले तब ही सीखते हैं जब शिक्षक भी उस प्रक्रिया में संलग्न हो और सीख रहा हो, तो प्रक्रियाओं में यह सब कुछ झलकना चाहिए। शिक्षक उसी रवैये को प्रतिबिम्बित करेंगे जिसका बोध उन्हें शिक्षार्थी के रूप में हुआ था। ऐसा नहीं है कि उन्हें कुछ भी बताए जाने की आवश्यकता न हो या उन्हें खुद से अधिक बेहतर सीखे हुओं के साथ अन्त:क्रिया के माध्यम से सीखने की जरूरत न हो। हम यहाँ 'रचनावादी' या आत्म-विकास की शिक्षक-तैयारी योजना की बात नहीं कर रहे हैं। हम इस सबमें दो स्थितियों के बीच सन्तुलन की बात कर रहे हैं – एक ओर तो यह आवश्यकता कि शिक्षक चिन्तनशील, हर पल और हर बात में नई रणनीतियाँ और कार्य/स्थितियाँ/तरीके/गतिविधियाँ रचने वाला हो तथा दूसरी ओर उसे इस रूप में देखा जाना कि वह सीखने, कोशिश करने, स्वयं सोचने को तैयार और जिज्ञासु नहीं है। इसके लिए एक और सन्तुलन की भी जरूरत है। यानी एक ओर तो सीखने-सिखाने का सैद्धान्तिक ढाँचा विकसित किया जाए; तथा दूसरी ओर अनुभव करने और समझने के मकसद से स्कूलों और बच्चों के साथ व्यावहारिक पहलुओं को विकसित करने की बात हो – और इन दोनों स्थितियों के बीच सन्तुलन हो। तर्क दिया जाता है कि शिक्षकों को सिद्धान्त की जरूरत नहीं है क्योंकि उससे कोई मदद नहीं मिलती, और उन्हें तो अलग-अलग तरह के बच्चों के साथ व्यवहार के तरीकों की और विभिन्न स्थितियों में निर्देशानुसार करने वाले कामों की सूची की जरूरत रहती है। यह सिद्धान्त की गलत और असंगत समझ दर्शाता है जिसके तहत सिद्धान्त को बस वर्णित किए जाने वाले तथ्यों के रूप में देखा जाता है। सेवा-पूर्व पाठ्यक्रम और उसको लागू किए जाते समय ध्यान में रखना होगा कि वह उन सिद्धान्तों के अनुरूप हो जिनमें उसका विश्वास जतलाया गया है और उन्हें असल व्यवहार के प्रत्येक तत्व में प्रयोग भी किया जाए।

क्या हमें इतने कॉलेजों की आवश्यकता है?

महत्व का एक और मुद्दा सेवा-पूर्व प्रमाण-पत्र के उद्देश्य और अर्थ का है। इसके बारे में सोचना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रमाण-

पत्र उस सबको प्रभावित करता है, जो शिक्षकों के कॉलेजों में होता या नहीं होता है। यह सीखे और सिखाए गए के मूल्यांकन को भी प्रभावित करता है। पाठ्यक्रम में कितना और किस हद तक अच्छा प्रदर्शन रहा, यह विद्यार्थी के लिए कितना मूल्यवान है, इसके मूल्यांकन को भी यह प्रभावित करता है। आजकल विद्यार्थियों और शिक्षक-शिक्षकों को यह बात करते हुए सुनना आम बात हो गई है कि उक्त विशेष कॉलेज में कक्षाएँ नहीं लगतीं और कॉलेज में उपयुक्त संख्या से बहुत कम शिक्षक हैं। खुल रहे कॉलेजों तथा उनमें हो रही नियुक्तियों को ध्यानपूर्वक बनाई गई कमेटियों और जाँचों के माध्यम से संचालित और नियंत्रित करने की शिक्षक-शिक्षा राष्ट्रीय परिषद (एन.सी.टी.ई.) द्वारा की गई कोशिशें असफल ही रही हैं – बल्कि उनका उल्टा ही असर पड़ा है।

कॉलेजों की माँग तथा आवश्यकता और इनके लिए दी गई अनुमति में कोई सामंजस्य, कोई सुसंगति दिखाई नहीं देती और कई राज्य सरकारों को लगता है कि नए कॉलेज खुलने से सम्बद्ध फैसले लेने में उन्हें अनदेखा किया गया है। एन.सी.टी.ई. की भूमिका की वजह से राज्य सरकारें तथा विश्वविद्यालय पथभ्रष्ट निजी शिक्षक-कॉलेजों के विरुद्ध उस हद तक कोई कदम नहीं उठा पाते जिस हद तक वे चाहते हैं। एन.सी.टी.ई. के पास अनुमतियों के अनुमोदन तथा संस्थागत ढाँचे और शिक्षकगण की आवश्यकताओं समेत विभिन्न तरह के दिशा-निर्देश तय करने की जिम्मेदारी है। वहीं कार्यक्रम का समयकाल, उससे आशाओं की प्रकृति एवं आकलन के साथ-साथ पाठ्यचर्या सम्बन्धी सरोकार इन्हीं में से कई बातों पर निर्भर रहते हैं।

क्या आकलन अर्थपूर्ण होता है?

सेवा-पूर्व प्रशिक्षण को इम्तिहान पास करने और आवश्यक प्रमाण-पत्र हासिल करने तक सीमित कर दिए जाने के बहुत ही डरावने नतीजे रहे हैं। ऐसा लगता है कि जितने अधिक प्रयास शिक्षकों की गुणवत्ता को यांत्रिक तथा निरीक्षण-आधारित तौर-तरीकों से संचालित करने के हुए हैं, अपेक्षित शिक्षकों की ओर से असल में सीखने की उतनी ही कम कोशिश हुई है। इन पाठ्यक्रमों के लिए विश्वविद्यालयी परीक्षाएँ भी बाकी सभी पाठ्यक्रमों की ही तरह परीक्षार्थी के वास्तविक ज्ञानार्जन और समझ का मूल्यांकन करने के लिए निर्मित नहीं हैं। प्रश्नों की प्रकृति - असल में तो प्रश्न ही – अक्सर पूर्व-निर्धारित होते हैं और उत्तर, सोचने की किसी आवश्यकता से खाली। मूल्यांकन भी यह सुनिश्चित करने के लिए होता है कि अधिकतर परीक्षार्थी परीक्षा में पास हो जाएँ। पाठ्यक्रम की प्रकृति को ध्यान में रखें तो चयन की प्रक्रिया में परीक्षार्थी से उसके बी.एड. के अनुभव और उसमें आए अंकों के बारे बहुत कम आशा की जाती है। कई परीक्षार्थी दोनों परीक्षाओं (थ्योरी यानी सिद्धान्त और तथाकथित कक्षा-शिक्षण) में अव्वल हो निकलते हैं लेकिन यदि वे ऐसा नहीं भी कर पाते, तो चयन की असल प्रक्रिया में इसका कुछ महत्व नहीं होता। यह लगभग पक्की बात है कि अगर आपको बी.एड. प्रोग्राम में प्रवेश मिल जाता है, तो विश्वविद्यालय और उसकी कार्यविधियाँ चाहे जैसी भी हों, आप पास हो जाएँगे और आपको प्रमाण-पत्र भी मिल जाएगा, फिर आप या आपका कॉलेज चाहे जो भी करे। इस सन्दर्भ में हाल ही में बी.एड. पाठ्यक्रम को दो साल का किए जाने के निर्णय के कई दिलचस्प परिणाम और प्रभाव होंगे। ये अगले कुछ दशकों में देखने को मिलेंगे और तब स्पष्ट होगा कि इस बहुत बड़े निर्णय से लाभ मिलते भी हैं तो क्या मिलते हैं।

सार-संक्षेप

सेवा-पूर्व तैयारी और वास्तव में तो होने-वाले-शिक्षकों या कार्यरत-शिक्षकों के साथ किसी भी महत्व के आदान-प्रदान का सवाल, एक मनोवृत्ति, एक प्रवृत्ति, और एक प्रतिबद्धता तथा एजेंसी की तैयारी का सवाल है। स्पष्ट तौर पर मनोवृत्ति बहुआयामी है और इसमें सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक संरचना के तईं दृष्टिकोण और संविधान को लागू किए जाने की आवश्यकता के तत्व शामिल हैं। इसके अन्य पहलू हैं शिक्षार्थियों और समुदाय के प्रति दृष्टिकोण, जबकि हर तरह की विविधताओं का भी ध्यान रखना होगा जो लोगों में जबरदस्त विभाजनों से, कभी-कभी वैर-भाव, उदासीनता, तिरस्कार, उपहास, यहाँ तक कि सीधी-सीधी शत्रुता से प्रभावित होती हैं। हम क्या करें कि शिक्षक अपने सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया तथा विविधता की मौजूदा निर्मिति, प्रकृति और कारणों को भूल जाएँ, दूसरों के प्रति आदर की भावना को स्वयं में समाहित करें और उन्हें अपनी रणनीतियों में लाने के तरीके भी पा सकें। हम कैसे उन्हें बहुत ही भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई, आर्थिक पृष्ठभूमियों तथा शैलियों से आने वाले शिक्षार्थियों के साथ जूझने के तईं प्रतिबद्ध और समानुभूति रखने की भावना से परिचित करवा पाएँ? वे यह कोशिश क्यों करें? तो फिर सवाल यह है कि कैसे हम सही दृष्टिकोण और उद्देश्य वाले तथा संविधान की प्रतिस्थापना से निकलने वाले सिद्धान्तों के साथ पंक्तिबद्ध होते हुए इनकी प्राप्ति के लिए काम करने वाले शिक्षक तैयार करें और उनकी भूमिका के दीर्घकालिक योगदान को देख पाएँ? क्या इसके लिए हमें इस बात को फिर से देखना होगा कि समाज और प्रशासनिक व्यवस्था शिक्षकों को किस तरह देखते हैं?

References:

- Report of the International Conference on Teacher Development and Management held in Udaipur, 23-25 February, 2009 Report of international conference on Teacher Development and Management. (2009) Retrieved from http://www.teindia.nic.in/Files/TE-Vikram/International Conference/International_Conference_Teacher Development-Udaipur-23-25-feb-2009.pdf
- Report of the International Seminar on Pre-Service Elementary Teacher Education Feb 2, 2010 held at NCERT, New Delhi, Ministry of Human Resource Development (MHRD)
- Joint Review Mission of Teacher Education (2013) Retrieved from http://www.teindia.nic.in/Files/jrm/JRM_Reports/JRM_Chhattisgarh-Final.pdf
- Andhra Pradesh Joint Review Mission on Teacher Education February 2014
- www.teindia.nic.in/Files/jrm/2014-15/AP/APReport.pdf

हृदयकांत दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,बेंगलूरु में प्रोफेसर हैं। वे 'एकलव्य' के संस्थापक समूह के सदस्य हैं और उदयपुर की विद्या भवन सोसायटी के शैक्षिक-सलाहकार रहे हैं। वे पिछले 40 सालों से शिक्षा के क्षेत्र में कई तरह से कार्यरत रहे हैं। विशेषतौर से शिक्षा में नवीनता और राजकीय शैक्षिक ढाँचों में परिवर्तन के प्रयासों से सम्बद्ध रहे हैं। उनसे hardy.dewan@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन

शिक्षक-शिक्षा में निष्क्रियता तथा न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता

पूनम बत्रा

बीस-वर्षीय सरस्वती ग्रामीण मध्य प्रदेश से है। उसे आशा है कि उसके दो बच्चे आठ वर्ष की शिक्षा हासिल कर पाएँगे, जो वह स्वयं नहीं कर पाई थी। बारह-वर्षीय किशन जाटव अब्दुल कलाम की तरह 'अन्तरिक्ष वैज्ञानिक' बनना चाहता था लेकिन उसे अपने भाई की साइकिल-मरम्मत की दुकान चलाने में मदद करने के लिए कक्षा-6 में स्कूल छोड़ना पड़ा।

ऐसा क्या है जो ऐसे लाखों बच्चों के जीवन को एक साझा धागे में पिरोता है? यह धागा प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की संवैधानिक गारण्टी प्रदान करने में भारतीय राज्य की असफलता का धागा है - असफलता एक ऐसी शिक्षा देने की, जो इन बच्चों, उनके माता-पिता और समुदायों का सशक्तीकरण इस रूप में करे कि वे अपने जीवन को अपने लिए अर्थपूर्ण तरीके और अपनी गति से परिवर्तित कर पाएँ। यह शिक्षा ऐसी नहीं होना होगी जो कहीं दूर बैठी नौकरशाह कमेटियों द्वारा संचालित हो - या फिर संचालित हो वैश्विक नेट्वर्क्स से, जो लाभ के लिए निजी स्कूलिंग की पैरवी करते हैं, देश की मानव-पूँजी के निर्माण और वैश्विक हो रहे संसार में उसके प्रतियोगी होने की सामर्थ्य बनाने के मकसद से।

जटिल ढाँचागत, संरचनात्मक चुनौतियों का जवाब एक बहुत ही सरल लेकिन मुश्किल स्थान तक पहुँचने में छिपा है – और यह स्थान है स्कूल की कक्षा। भारत के बच्चों के दिलों, दिमागों और उनके भविष्य के लिए जंग, देश के लाखों स्कूलों में हर दिन हारी जा रही है। अगर हम सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की वास्तविकता को जल्द ही नहीं बदल पाते तो शायद एक और पीढ़ी के लिए हार ही होगी, फिर शिक्षा के लिए सकल घरेलू उत्पाद का चाहे 3% और चाहे 6% समर्पित हो।

इतना सब कहने के बाद यह महत्वपूर्ण है कि हम अपनी सफलताओं का जायजा लें और देखें कि हम क्यों आम आदमी की आशाओं पर खरा नहीं उतर पाए हैं।

शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार के तौर पर आधी सदी के संघर्ष के बाद 2009 में भारत के संविधान में स्थापित किया गया। इसके चलते भारत का राज्य सार्वभौमिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने, सुनिश्चित करने और संचालित करने की कानूनी जिम्मेदारी से बँध गया है। तत्पश्चात, इस संवैधानिक अधिकार के पूरा न किए जाने को सम्बोधित करना, संसद और केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से, उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के सिर आ गया। नीतिगत कदम, हस्तक्षेप, स्कूली व्यवस्था में शिक्षा का अधिकार को लेकर न्यायालय की व्याख्या के विरुद्ध जाकर उठाए गए या न उठाए गए कदम निरस्त किए गए हैं और न्यायालय की निगरानी में हस्तक्षेप तथा संचालन ने उनका स्थान लिया है।

जून 2011 में एक बड़े कदम के तहत उच्चतम न्यायालय ने बहुत व्यापक स्तर पर हो रहे अनाचार, नीतियों की विकृतियों और संचालन सम्बन्धी टकरावों से सम्बद्ध शिकायतों को सम्बोधित करने के लिए शिक्षक-शिक्षा में एक दूरगामी हस्तक्षेप किया[1]। विषैले सर्पों के बिलों के से निहित स्वार्थों को उजागर करने के बाद – जिनमें व्यापक भ्रष्टाचार, नकली महाविद्यालय, एक मृतप्राय: शिक्षक-अध्यापक समुदाय से लेकर अनाचार और व्यापक राजनैतिक संरक्षण तक शामिल थे – भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश जे.एस.वर्मा के नेतृत्व में कमीशन गठित किया गया।

इस कमीशन ने साल भर के राष्ट्र-व्यापी परामर्श के बाद इस सेक्टर में सुधार हेतु अगस्त 2012 में उच्चतम न्यायालय को एक विस्तृत रिपोर्ट[2] और क्रियान्वयन- योजना प्रस्तुत की। कमीशन ने इस ओर ध्यान दिलाया कि "..... लगभग 90 प्रतिशत सेवा-पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षक संस्थाएँ निजी क्षेत्र में हैं। दूसरी ओर राजकीय स्कूलों में नामांकित लगभग 80 प्रतिशत बच्चे शिक्षा का अधिकार कानून के तहत सीधे तौर पर राज्य की जिम्मेदारी हैं।" यह भी कहा गया कि शिक्षक-शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद (एन.सी.टी.ई.) द्वारा निम्न-स्तरीय शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को नियंत्रित करने की असफलता की वजह से "व्यापारीकरण हुआ है..... जिसके चलते शिक्षक-शिक्षा की गुणवत्ता नकारात्मक तरीके से प्रभावित हुई है" (पृष्ठ 21)।

जस्टिस वर्मा कमीशन ने शिक्षक-शिक्षा के लिए परेशानी का सबब बनी मुख्य समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया है। इनमें से प्रमुख ये हैं – शिक्षक-शिक्षा संस्थानों की अलग-थलग, बाकी सबसे पृथक प्रकृति; निम्न-स्तरीय, व्यापारिक निजी संस्थाओं की संख्या में बढ़ोतरी; समयकाल, पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र से सम्बद्ध, (65

[1]Rashtrasant T.M.S. & S.B.V.M.C.A. VID & Ors v Gangadar Nilkant Shende & Ors SLP (Civil) No. 4247-4248/2009.
[3]GoI (2012), Vision of Teacher Education in India: Quality and Regulatory Perspective, Report of the High-Powered Commission on Teacher Education Constituted by the Hon'ble Supreme Court of India, New Delhi: MHRD.

से भी अधिक सालों से) अपरिवर्तित ढाँचे में रहते हुए शिक्षकों की तैयारी; शिक्षकों और शिक्षक-अध्यापकों को तैयार करने के लिए संस्थागत सामर्थ्य का जबरदस्त अभाव तथा पेशेवर शिक्षकों और शिक्षक-अध्यापकों को तैयार करने के लिए वर्तमान स्नातकोत्तर (एम.एड.) कार्यक्रमों की सामान्यीकृत और संकीर्ण प्रकृति।

जस्टिस वर्मा कमीशन द्वारा महाराष्ट्र की जिन 291 संस्थाओं की समीक्षा की गई, उनमें से 85% से भी अधिक को बन्द किए जाने की अनुशंसा की गई थी। इस अनुभव के आधार पर सिफारिश की गई है कि एन.सी.टी.ई. को "स्वीकृत संस्थाओं की जाँच के लिए एक नया ढाँचा विकसित करना चाहिए जिसमें प्रक्रिया के मापदण्डों पर अधिक ध्यान केन्द्रित हो, ताकि संस्थाओं की गुणवत्ता का पता लगाया जा सके... सरकार को शिक्षक-शिक्षा संस्थान स्थापित करने के लिए निवेश में बढ़ोतरी करनी चाहिए।"

रिपोर्ट ने इस क्षेत्र को पुनर्जीवित करने, सेवा-पूर्व प्रशिक्षण तथा शिक्षकों के निरन्तर पेशेवर-विकास कार्यक्रमों की बेहतरी, एन.सी.टी.ई. के कानूनी नियामक कार्यों में फेरबदल तथा एन.सी.टी.ई. कानून के लिए 30 विशेष सिफारिशें कीं जिन्हें उच्चतम न्यायालय ने अनुमोदित किया। इस न्यायालय ने स्थापित व्यवहार के बरक्स तीन-सदस्यी क्रियान्वयन कमेटी[3] का गठन इस मकसद से किया कि भारत सरकार, राज्य सरकारों और शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र की संस्थाओं की सभी नीति-निर्माता, नियामक, परामर्श-सम्बन्धी तथा क्रियान्वयन एजेंसियों द्वारा जस्टिस वर्मा कमीशन की सिफारिशों को निष्ठा से लागू किए जाने बारे स्वतंत्र पर्यवेक्षण किया जा सके।

क्रियान्वयन कमेटी के आदेश पर एन.सी.टी.ई. तथा भारत सरकार द्वारा गठित कमेटियों ने इसके बाद एक रास्ता सुझाया जिसके तहत क्रियान्वयन के लिए कई ठोस रणनीतियों का खाका खींचा गया है। इनमें ये सब बातें शामिल हैं – संस्थागत बन्दोबस्त में ढाँचागत परिवर्तन; स्कूली एवं शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र की ओर ताजा प्रतिभा को आकर्षित किया जाना; विविधता को और बढ़ाने के उद्देश्य से शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या को पुनर्रचित किया जाना; भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान और ज्ञानार्जन को विकसित किया जाना; और धरातल पर होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों को सम्भव बना पाने के लिए उपयुक्त नियामक प्रणालियों का होना।

उदाहरण के तौर पर, जस्टिस वर्मा कमीशन ने कहा है कि "शिक्षकों को तैयार करने के लिए आवश्यक सामर्थ्य को बढ़ाने के अलावा, सेवा-पूर्व कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या और संस्थागत संरचना में एक बड़े बदलाव की जरूरत है।" उनकी 'पृथक, अलग से खड़े होने' की प्रकृति के चलते शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ "ज्ञान संवर्धन की गतिविधियों और शोध तथा अन्तर्विषयक अध्ययनों की संस्कृति से कटी रहती हैं... इसलिए अपेक्षित है कि नई शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ बहु तथा अन्तर्विषयक अकादमिक वातावरण में स्थित हों।"

जस्टिस वर्मा कमीशन की तीन सिफारिशों के बारे में हमें सोचना होगा। ये सिफारिशें हैं कि (क) सरकारी निवेश बढ़ाएँ (ख) सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के एकीकृत कार्यक्रमों के माध्यम से उच्च गुणवत्ता के शिक्षक तैयार करें, तथा (ग) उस अलग-थलग पड़ी बौद्धिकता को दूर करें जो स्कूली शिक्षकों तथा स्कूलों की विशेषता बन चुकी है। इन सिफारिशों से सम्बोधित होने के लिए आगे बढ़ने का एक महत्वपूर्ण तरीका है कि प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों को उदार शिक्षा और विज्ञान में स्नातक-अध्ययन के अवसर देने वाले विश्वविद्यालय-आधारित महाविद्यालयों में स्थित किया जाए।

देश में प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों को प्रशिक्षित करने वाली 16,000 से भी अधिक, एन.सी.टी.ई. से मान्यता-प्राप्त, शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ हैं। प्राथमिक शिक्षकों को प्रशिक्षित करने वाले लगभग आधे शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम विश्वविद्यालयी व्यवस्था के बाहर हैं। इसकी तुलना में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) का मान्यता-प्राप्त एवं घटक कॉलेजों से सम्बद्ध डेटा-बेस सुझाता है कि देश भर में उदार-शिक्षा (Liberal arts) तथा विज्ञान के 35,000 से अधिक कॉलेज हैं। जिन राज्यों में शिक्षकों की सख्त आवश्यकता है (यानी उनका अभाव है) लेकिन शिक्षक-शिक्षा संस्थाएँ भी नहीं हैं, वे सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा के लिए बड़ी संख्या में मौजूद स्नातक महाविद्यालयों को टटोलकर देख सकते हैं।

इस अभाव का सामना कर रहे 14 राज्यों में ही सालाना लगभग 19,000 और शिक्षक-अध्यापकों की आवश्यकता है। जस्टिस वर्मा कमीशन और बारहवीं योजना वर्किंग-ग्रुप ने शिक्षक-अध्यापकों की विशाल कमी को पूरा करने के लिए कई ठोस कदम सुझाए थे। इनमें ये शामिल हैं – (क) मौजूदा संस्थाओं में सालाना शिक्षकों की संख्या बढ़ाकर उनकी सामर्थ्य को बढ़ाना (ख) विश्वविद्यालयों में एम.एड. चलाने के लिए सामर्थ्य लाना (ग) शिक्षक-अध्यापकों के योग्यता-मापदण्डों में विविधता लाना।

इसलिए जस्टिस वर्मा कमीशन की सिफारिश है कि शिक्षक-अध्यापकों के लिए आवश्यक, सारभूत योग्यता के ढाँचे को

---

[3]क्रियान्वयन कमेटी का गठन मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के 14/16.5.2013 के आदेश की अनुपालना में हुआ था। क्रियान्वयन कमेटी ने वर्मा कमीशन की सिफारिशों को प्रभावी तौर पर लागू किए जाने के लिए एक व्यापक और विस्तृत कार्य-योजना तैयार की। उच्चतम न्यायालय द्वारा एस.एल.पी. (सी) संख्या 2399-2400/2009 में 10/9/2013 के साथ-साथ कई अन्य अनुमति याचिकाओं के तहत पारित आदेश में एन.सी.टी.ई. को निर्देशित किया गया कि अधिक से अधिक 30/11/2013 तक नए नियम अधिसूचित किए जाएँ – बाद में इसे बढ़ाकर नवम्बर 2014 तक किया गया। भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह निर्देश भी दिया कि 'क्रियान्वयन कमेटी द्वारा की गई सब सिफारिशें भारत सरकार, सभी राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासनों एवं एन.सी.टी.ई., यू.जी.सी. पर बाध्य होंगी और वे सब इन्हें बिना किसी फेर-बदल के लागू करेंगे।"

अधिक व्यापक बनाया जाए ताकि शिक्षक-अध्यापक बनने के लिए विशिष्ट प्राध्यापकगण का प्रवेश सुनिश्चित किया जा सके। बारहवीं योजना के तहत वर्किंग-ग्रुप ने भी आवश्यक योग्यता के मानक को एम.एड. तक सीमित कर देने के 'प्रतिबन्धक नियम' पर निम्नलिखित बातों की रोशनी में पुनर्विचार करने को कहा है - "(क) आवश्यक शिक्षक-अध्यापकों की दक्षताएँ और एन.सी.एफ़.टी.ई. 2009 की रूपरेखा के भीतर रहते हुए संशोधित पाठ्यचर्या की जरूरतें; तथा (ख) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार ..... मुख्य विचार यह है कि विभिन्न विद्या-क्षेत्रों के लोगों को शिक्षक-अध्यापक बनने के वैकल्पिक पथ प्रस्तुत किए जाएँ।"

इस पर जस्टिस वर्मा कमीशन के भी स्पष्ट विचार हैं। कमीशन बिना किसी शक के, दो-टूक ध्यान दिलाता है कि "सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के सन्दर्भ में शिक्षक-अध्यापकों की तैयारी एक कमजोर कड़ी रही है, और इसलिए एक शिक्षक-अध्यापक के प्रोफाइल के मुद्दे की ओर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए और यह इस विषय पर मौजूदा सोच से ऊपर उठकर होना होगा" (पृष्ठ 17)। कमीशन शिक्षण के आधारभूत पाठ्यक्रमों के लिए सामाजिक विज्ञान में एक मजबूत बुनियाद की सिफारिश करते हुए टिप्पणी करता है कि शिक्षक-अध्यापकों की भरती के लिए एम.एड. की डिग्री का मौजूदा संस्थागत-मानक एक सीमा में बाँधता है और इसमें बदलाव होना चाहिए।

यदि बहुविषयक और अन्तर्विषयक प्राध्यापकगण को मुख्य बुनियादी विद्या-क्षेत्रों में मजबूत सैद्धान्तिक और ज्ञानमीमांसीय आधार के साथ शिक्षक-अध्यापक बनने में मदद मिलती है तो शैक्षिक सिद्धान्त और व्यवहार के मुद्दों के साथ अधिक व्यापक और गहरे स्तर पर सम्बद्ध होने का मौका मिलेगा। इस प्रकार उच्च शिक्षा के साथ गहरे और पार्श्वीय, ('लेटरल') सम्बन्ध बनने की सम्भावना रहेगी, जो जस्टिस वर्मा कमीशन की एक सिफारिश है।

जस्टिस वर्मा कमीशन एक स्पष्ट रुख लेता है कि 'एम.एड. कार्यक्रम को द्विवर्षीय कार्यक्रम बनना चाहिए जिसमें पाठ्यचर्या अध्ययन, शिक्षाशात्रीय-अध्ययन, नीति, वित्त और आधारभूत अध्ययन जैसी विशिष्ट शाखाओं में फैलाव का पर्याप्त प्रावधान हो।' एन.सी.टी.ई. द्वारा 2014 में नए मानकों की अधिसूचना निकाले जाने के बाद यह अब प्रभावी तौर पर हो चुका है। एम.एड. कार्यक्रम को और अधिक बल प्रदान करने के लिए कमीशन ने सिफारिश की है कि "शिक्षक-शिक्षा के रास्ते के अलावा अन्य तरीकों से शैक्षिक अध्ययन करने के इच्छुक लोगों के लिए पार्श्वीय प्रवेश का प्रावधान हो।" सामाजिक विज्ञान, कला संकाय और विज्ञान के विभिन्न विद्या-क्षेत्रों के स्नातकों और स्नातकोत्तरों के लिए (शिक्षक बनने की योग्यता हासिल किए बिना भी) एम.एड. को खोल दिया जाए तो शिक्षक-अध्यापक बनने के लिए अधिक व्यापक स्तर पर प्रतिभा के लिए मैदान खुलेगा।

यह बात इस समझ से निकलकर आती है कि हमें ऐसे शिक्षक-अध्यापक चाहिए जिनमें पाठ्यचर्या-स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षार्थियों, ज्ञान और ज्ञानार्जन से जुड़े सवालों से उलझने की सामर्थ्य हो। और इसके लिए बुनियादी विषय-क्षेत्रों के साथ सघन सैद्धान्तिक सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता होती है न कि केवल शिक्षण के व्यवहार के माध्यम से।

शिक्षकों ने सुझाए गए संशोधित नियमों पर कई ऐतराज उठाए हैं जो इस चिन्ता से प्रेरित हैं कि शिक्षा के 'ज्ञानक्षेत्र' को बचाकर रखा जाए। उनके इस सरोकार और चिन्ता को बेहतर तरीके से सम्बोधित करने के लिए शायद ऐसी कोशिशें होना होंगी जिनमें शिक्षा के अध्ययन को एक उदार ज्ञानक्षेत्र के तौर पर लेने के साथ-साथ शिक्षा के अध्ययन और व्यवहार को एक पेशेवर व्यवसाय के तौर पर लिया जाए। ऐसा करने के दो बेहतरीन तरीके हो सकते हैं - पहला, शिक्षा को एक उदार अध्ययन और दूसरी ओर व्यावसायिक, पेशेवर अध्ययन के तौर पर देखने के बनावटी अन्तर को कम करके। इसके लिए 'व्यावसायिक' कहलाए जाने योग्य तत्वों, मुद्दों, सरोकारों और तरीकों पर तथा दूसरी ओर शिक्षा के 'उदार' कहलाए जाने लायक तत्वों पर संयोजित सोच-विचार और एकमत कायम करना होगा। यह एम.एड. कार्यक्रम के लिए पाठ्यचर्या विकसित किए जाने के स्तर पर सुलझाए जाने की बात होगी।

अगर हम इस बात पर सहमत हैं कि व्यावसायिक और उदार शिक्षा को एक-दूसरे को अनुप्राणित करना होगा ताकि शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार को समृद्ध किया जा सके, तो यह बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित और कला संकाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक-अध्ययन (स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान) करने के लिए समर्थ बनाया जाए फिर चाहे उन्हें शिक्षक-शिक्षा की डिग्री न भी हासिल हो। इतना ही महत्वपूर्ण है कि विभिन्न विद्या-क्षेत्रों में प्रशिक्षित प्राध्यापकगण को शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमों में पढ़ाने की भागीदारी के लिए आमंत्रित किया जाए। स्कूलों और अन्य ऐसे ही परिवेशों में शिक्षा के व्यवहार से उभरने वाले मुद्दों पर शोध के लिए भी बुलाया जाए।

2016 का नई शिक्षा नीति का प्रस्ताव स्कूल शिक्षकों की तैयारी में कुछ महत्वपूर्ण कमियों को अपने संज्ञान में लेता है। इनमें 'शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों में पेशेवर भावना की कमी, प्रशिक्षण और व्यवहार में तालमेल न होना, शिक्षकों का गैर-शिक्षण गतिविधियों में व्यस्त रहना, गैर-प्रशिक्षित शिक्षकों की समस्याएँ, शिक्षकों का अभाव, शिक्षक-अनुपस्थिति और शिक्षक-जवाबदेही' की बातें शामिल हैं। लेकिन यह बात समझ के बाहर है कि शिक्षक-शिक्षा

के क्षेत्र की इनमें से प्रत्येक महत्वपूर्ण कमी के इर्द-गिर्द उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित शिक्षक-शिक्षा पर जस्टिस वर्मा कमीशन (2012) द्वारा की गई महत्वपूर्ण सिफारिशों पर इस नीति-प्रस्ताव ने एक चुप्पी क्यों साधे रखी है।

नवम्बर 2014 में भारत के गजट में जारी अधिसूचना में जस्टिस वर्मा कमीशन की सिफारिशों पर आधारित, शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों के नियामक मानकों और मापदण्डों में बड़ा संशोधन किया गया लेकिन इस पर भी नई शिक्षा-नीति प्रस्ताव कोई ध्यान नहीं देता - जबकि यह कदम उच्चतम न्यायालय के सख्त दिशानिर्देश पर 2012 में कमीशन की सिफारिशों को ज्यों का त्यों स्वीकारते हुए उठाया गया था।

शिक्षा नीति का यह नया प्रस्ताव शिक्षकों में पेशागत भावना और उनकी सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए एक ही रणनीति प्रस्तावित करता है, और वह है राष्ट्रीय स्तर का शिक्षक-शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित करने की सिफारिश। जस्टिस वर्मा कमीशन के विचार-विमर्श के दौरान इस अवधारणा के विरुद्ध दलील दी गई है। इससे तो शिक्षकों को बौद्धिक शून्यता में तैयार किए जाने की मौजूदा समस्या को ही बढ़ावा मिलेगा, जो अलग-थलग-पृथक संस्थाओं के माध्यम से हो रहा है। इसकी ओर जस्टिस वर्मा कमीशन ने ध्यान दिलाया है और इसके विरुद्ध वह मजबूती के साथ खड़ा दिखाई देता है।

ऐसा लगता है कि इस नीति के मसविदे के केन्द्र में शिक्षकों को जवाबदेह बनाने और बेहतर प्रदर्शन कर पाने से सम्बद्ध सुझाव देने की बात है। सिफारिश की गई है कि किस तरह 'शिक्षक-अनुपस्थिति और अनुशासनहीनता' से निपटने के लिए जवाबदेही से सम्बद्ध कदम उठाए जा सकते हैं, जैसे कि प्रौद्योगिकी का सहारा लेते हुए मोबाइल फोन और बायोमीट्रिक यंत्रों के इस्तेमाल से हाजिरी दर्ज करवाना; और उसे आवश्यक बनाते हुए तथा भविष्य की पदोन्नति एवं वेतनवृद्धियों के साथ जोड़ते हुए, शिक्षकों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना। अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान ने दर्शाया है कि जवाबदेही की प्रणालियाँ किस तरह स्कूलों और कक्षाओं में शिक्षकों के काम को गम्भीर रूप से कमजोर करती हैं। इनमें सी.सी.टी.वी. का लगाया जाना, शिक्षकों को अपने काम का विस्तृत दस्तावेजीकरण करने के लिए बाध्य किया जाना, उन्हें लगातार निगरानी और नियन्त्रण में रखा जाना शामिल है।

शिक्षक तैयार किए जाने के लिए बहुत कम संस्थागत सामर्थ्य होने की वजह से कई राज्यों में शिक्षकों का बहुत अधिक अभाव है। इनमें से कई राज्यों ने शिक्षकों को अनुबन्ध पर लगाने का निर्णय लिया है और शिक्षा अधिकार कानून के तहत उनकी आवश्यक योग्यताओं के साथ समझौता किया है। जस्टिस वर्मा कमीशन के मुताबिक इनमें से अधिकतर लोग शिक्षक होने की योग्यता निम्न-मानक व्यवस्था वाली, और विविधतापूर्ण कक्षाओं की शिक्षाशास्त्रीय आवश्यकताओं को सम्बोधित करने में असफल, 'शिक्षण की दुकानों' से प्राप्त करते हैं।

प्रस्तावित नीति स्कूल और शिक्षक-शिक्षा के लिए एक नई दृष्टि प्रदान करने के हिसाब से बनाई गई है। ऐसा करने में उसे संविधान के ढाँचे के अन्तर्गत रहना होगा जिसमें शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करने का प्रावधान है, और उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए गए कानून के दायरे में भी रहना होगा जो जस्टिस वर्मा कमीशन के माध्यम से शिक्षक-शिक्षा के लिए नियामक रूपरेखा परिभाषित करता है।

पूनम बत्रा दिल्ली विश्वविद्यालय के केन्द्रीय शिक्षा संस्थान में पढ़ाती हैं और उन्होंने जस्टिस वर्मा कमीशन एवं कार्यान्वयन कमेटी की सदस्य के रूप में काम किया है। उनसे batra.poonam@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन

कमरे में हाथी, जिसे हम देखना नहीं चाहते

विमला रामचन्द्रन

कई दशकों से सेवाकालीन प्रशिक्षण की अधिकतर पहलकदमियों का ध्यान विषय के ज्ञान पर केन्द्रित है – जिसे अन्य शब्दों में काठिन्य निवारण भी कह दिया जाता है। इस परिघटना का प्रारम्भ डी.पी.ई.पी. के दिनों (यानी 1994 के समय) में देखा जा सकता है जब सेवाकालीन प्रशिक्षण को मजबूती देने के लिए एक बहुत जबरदस्त प्रोजेक्ट चलाया गया था। इसी का नतीजा था कि राज्य परियोजना कार्यालयों ने शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण-मॉड्यूल [मॉड्यूल यानी पाठ्यक्रम-इकाई] बनाने के लिए विशेषज्ञों को भाड़े पर लिया। दिलचस्प बात यह थी कि डी.पी.ई.पी. के दिनों में भी किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि शिक्षकों की आवश्यकता क्या है, वे चाहते क्या हैं और उसे उन तक पहुँचाने का सबसे बेहतर तरीका क्या है।

बहुत साल पहले, 1998 में मुझे शिक्षकों के लैंगिक संवेदीकरण के एक मॉड्यूल पर काम करने को कहा गया था। यह लैंगिकता के मुद्दे को मुख्यधारा में लाने के उस उद्यम के हिस्से के तौर पर होना था जिसे डी.पी.ई.पी. कार्यक्रम को सहायता करने वाले दानकर्ताओं द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा था। इसके लिए मैंने कुछ राज्यों (राजस्थान, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश) के प्राइमरी स्कूल-शिक्षकों के समूहों से मिलना तय किया। मैंने जो कुछ सुना और देखा, वह मुझ जैसे बाहरी व्यक्ति के लिए आँखें खोल देने जैसा ही नहीं था बल्कि कमरे में मौजूद उस हाथी को देखने जैसा था जिसे कोई भी देखना नहीं चाहता था। शिक्षक-अध्यापक, विशेषज्ञ और प्रशासनिक अधिकारी धरातल की स्थिति से परिचित थे लेकिन अजीब बात यह थी कि प्रशिक्षण-सामग्री या प्रशिक्षण-डिजाइन में उसे कभी भी ध्यान में नहीं रखा जाता था। हैरत की बात यह भी है कि इसी विषय पर 2016 में बनी विशेषज्ञ-कमेटी में बैठते हुए मैं पाती हूँ कि अधिक कुछ नहीं बदला है और हम अब भी मुँह दूसरी ओर फेरे हुए हैं।

1998 में मैंने शिक्षकों के एक समूह से पूछा था कि प्रभावशाली सीखने-सिखाने के रास्ते में क्या बाधाएँ थीं? हमने छोटे समूहों में बैठकर इन बाधाओं को सूचीबद्ध करने का निर्णय लिया। हमने ये सब बातें कीं जिनकी चर्चा मैं नीचे कर रही हूँ।

सेवानिवृत्त होने के कगार पर बैठे एक शिक्षक ने कहा कि बच्चों में उसका विश्वास ही उसे काम करने के लिए प्रेरित करता था। वे गणित के एक बहुत ही प्रभावशाली और प्रतिबद्ध शिक्षक के रूप में जाने जाते थे और डी.पी.ई.पी. कार्यक्रम ने उन्हें एक स्रोत-व्यक्ति के तौर पर चिह्नित किया था। उन्होंने यह भी कहा कि वे ऐसे कई शिक्षकों को जानते हैं जिनका मानना है कि 'ये बच्चे नहीं सीख सकते.....' या कि 'लड़कियों को गणित समझ में नहीं आता' या, जो इससे भी बुरा है, कि 'समुदाय विशेष के बच्चे मन्दबुद्धि हैं'..... उनका मानना था कि शिक्षकों द्वारा सबसे पहले पार की जाने वाली बाधा उनकी स्वयं की कमियाँ, दृष्टिकोण और पूर्वाग्रह हैं। इसके बावजूद सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण में बस कभी-कभार ही गहरी जड़ लिए हुए मूल्यों और पूर्वाग्रहों को सम्बोधित किया जाता था। इस शिक्षक की व्याख्यानुसार पहला कदम यह सुनिश्चित करने का है कि शिक्षक इस बात में विश्वास करें कि बच्चे सीख सकते हैं, उनका लिंग, आर्थिक स्थिति, माता-पिता का व्यवसाय, जाति-समुदाय चाहे कुछ भी हो।

मूल्यों और धारणाओं-विश्वासों पर चर्चा करते हुए कुछ प्रतिभागियों का तर्क था कि पाठ्यपुस्तकें और सीखने-सिखाने की सामग्री प्रचलित धारणाओं और पूर्वाग्रहों को बल प्रदान करती हैं। पुरुषों के लिए क्या सही है और महिलाओं के लिए क्या, और जाति-सम्बन्धी विशेष कार्य क्या हैं, इसके बारे में परम्परागत विचार

"पाठ्यपुस्तकों में अपनी, मैंने पढ़ा कि बस पुरुष ही होते हैं राजा और सिपाही
जब तक कि मैंने पढ़ी नहीं थी वह पुस्तक जिसमें
प्रसिद्ध रानियों ने किया राज और लड़ीं दुश्मनों से।
पाठ्यपुस्तकों में अपनी, मैंने पढ़ा कि बस पुरुष ही होते हैं डॉक्टर,
जब गए डॉक्टर के पास तो देखा कि वह महिला थी।
पाठ्यपुस्तकों में अपनी, मैंने पढ़ा कि बस पुरुष ही करते हैं किसानी मेरे देश में
मगर रेल-यात्रा करते हुए मैंने देखा महिलाओं को, काम करते हुए खेतों में
मैंने सीखा है कि मुझे देखकर भी सीखना है कुछ-कुछ।"

[पूजा, राम्या, अनुज, उत्कर्ष – बड़ौदा से कक्षा-7 के विद्यार्थियों की रचना, शिक्षा में लैंगिक मुद्दों पर फ़ोकस-ग्रुप,एन.सी.एफ़. 2005 से उद्धृत (यहाँ, पर अँग्रेजी से हिन्दी अनुवाद)]

हमारी पाठ्यपुस्तकों में वाक्याशों, उदाहरणों और चित्रों में झलकते हैं और बने रहते हैं। ग्रामीण और शहरी से सम्बद्ध बनी-बनाई, प्रचलित धारणाओं को न केवल बढ़ावा दिया जाता है बल्कि शहरी को ग्रामीण के और गैर-जनजातीय को जनजातीय के मुकाबले प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षकों ने कई सारे विषयों में से ऐसे लोगों और स्थितियों के उदाहरण दिए, जो शहर पर ही केन्द्रित हैं।

नायक और नेता हमेशा पुरुष, तथा देखभाल करने वालीं और घर चलाने वालीं हमेशा महिलाएँ होती हैं। ये प्रचलित धारणाएँ और पूर्वाग्रह प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में न तो चर्चा में आते हैं और न ही इन्हें चुनौती दी जाती है, क्योंकि ध्यान तो गणित या विज्ञान या भाषा के विशेष विषयों पर ही केन्द्रित रहता है।

चर्चा का तीसरा विषय राजकीय प्राथमिक स्कूलों पर था। 1998 में बहुत बड़ी संख्या में स्कूल मल्टी-ग्रेड (बहुकक्षीय – यानी कई कक्षाओं के विद्यार्थियों का एक 'कक्षा' में इकट्ठे पढ़ना) स्कूल थे और आज भी यह प्रतिशत बहुत महत्वपूर्ण है। वे या तो औपचारिक तौर पर मल्टी-ग्रेड हैं (जब स्कूलों में पाँच कक्षाओं के लिए पाँच से कम शिक्षक हों) या अनौपचारिक तौर पर मल्टी-ग्रेड हैं (जब शिक्षक बारी-बारी अनुपस्थित रहते हैं)। लेकिन सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा और सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण, दोनों में मानकर चला जाता है कि एक कक्षा के लिए एक शिक्षक होगा। दुर्भाग्य से यही तब भी था जब 1990 के दशक के मध्य में मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों ने हजारों एकल-शिक्षक स्कूल खोले (ई.जी. एस. केन्द्र, राजीव गांधी पाठशाला, शिक्षाकर्मी स्कूल)। कुछ शिक्षकों ने बताया कि उन्हें मल्टी-ग्रेड कक्षा को सम्भालना नहीं आता था और उन्हें खुद ही स्थिति को झेलने के लिए छोड़ दिया गया। यह विशेष तौर से इसलिए हतोत्साहित करने वाली बात थी क्योंकि भारत तो इस क्षेत्र में नवाचारों का देश रहा है – फिर वह चाहे ऋषिवैली प्रयोग रहा हो या फिर मॉन्टेसरी स्कूलों द्वारा किया गया काम। नतीजा यह कि आनन्दपूर्ण शिक्षण और बाल-केन्द्रित कक्षाओं की तरह की कई पहलकदमियों की कोई सुनवाई न हुई, क्योंकि अधिकतर शिक्षक ऐसी स्थिति से निबटने की कोशिश कर रहे थे जिसे हमारे प्रशिक्षकों ने स्वीकारने से इनकार कर दिया।

जब 'कठिनाइयों के बिन्दुओं' का जिक्र आया तो शिक्षकों के समूह हँसी और चुटकुलों में फूट पड़े। व्हाट्सैप के दिनों से पहले के जमाने के कई चुटकुले थे और शिक्षकों को 'काठिन्य निवारण' के नजरिए पर गम्भीरता से बात करने के लिए मनाने में कुछ समय लगा। सिद्धान्त: शिक्षक-अध्यापक और विषय-विशेषज्ञ कक्षा में शिक्षकों के सामने आने वाली अकादमिक कठिनाई के बिन्दुओं को चिह्नित करते हैं और उनको सम्बोधित कर पाने के लिए स्वतंत्र शैक्षणिक इकाई के रूप में 'मॉड्यूल' तैयार करते हैं। माना जाता है कि विद्यार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं का सघन विश्लेषण, विशेषज्ञों को कठिनाई भरे बिन्दुओं को चिह्नित कर पाने में मददगार होता है। दिलचस्प बात यह है कि शिक्षकों का कहना है कि उनकी अवधारणात्मक समझ कमजोर है और विशेष मुद्दों या विषयों (मसलन, गणित में स्थानीय मान या भिन्न) पर केन्द्रित प्रशिक्षण-कार्यक्रम अस्पष्ट अवधारणाओं को पुन: सीखने में मददगार नहीं है। विषय-विशेष केन्द्रित, सेवाकालीन प्रशिक्षण के प्रति अधिक व्यापक, सम्पूर्णता लिए हुए तथा बुनियादी अवधारणाओं से होकर गुजरता नजरिया शुरुआत में महत्वपूर्ण होगा।

एक और दिलचस्प रहस्योद्घाटन यह था कि प्रशिक्षण के लिए आने वाले शिक्षकों का चयन बहुत बार बिना किसी आधार के, बस यूँ ही किया जाता था और इस बात की कोई गारण्टी नहीं थी कि गणित पढ़ाने वाले एक समूह में होंगे और भाषा में कठिनाई का सामना करने वाले किसी अन्य समूह में। कुछ शिक्षकों ने कहा कि एक समूह-विशेष "प्रशिक्षण-शिक्षकों" का समूह है – यानी वे, जो सब प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में होते हैं। और वे भी हैं जो किसी भी प्रशिक्षण-कार्यशाला में नहीं होते। ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके तहत नजर रखी जा सके कि कौन-कौन प्रशिक्षण में भाग ले चुके हैं, उन्होंने किस तरह के प्रशिक्षण में भाग लिया है तथा उनकी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए और क्या कुछ करने की जरूरत है। यह स्थिति आज भी ज्यों की त्यों है। भारत में कार्यरत शिक्षकों के प्रबन्धन के तरीके से सम्बद्ध हाल ही में किए गए एक अध्ययन (विमला रामचन्द्रन आदि, न्यूपा,2015) में हमने पाया कि सेवाकालीन प्रशिक्षण में शिक्षकों की सहभागिता पर नजर रखने के लिए कोई भी सूचना-प्रबन्धन व्यवस्था (एम.आइ.एस.) नहीं है। इतना ही चौंकाने वाली बात यह है कि अधिकतर राज्यों में विषय-विशेष से सम्बद्ध प्रशिक्षण को शिक्षकों की जरूरतों से सम्बद्ध नहीं किया जाता। नतीजा यह कि 2014 और 2015 में जिन शिक्षकों से हम मिले, उनमें से अधिकतर ने कहा कि वे सेवाकालीन प्रशिक्षण से ऊब चुके हैं और वह उनके लिए कक्षा में कुछ खास उपयोगी नहीं है।

जिन नौ राज्यों को अध्ययन में शामिल किया गया, उनमें से किसी में भी शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए प्रभावशाली नीति नहीं थी। प्रशिक्षण एक बहुत ही अस्थाई तरीके से किया जाता है, और इसके लिए लगभग सम्पूर्ण धनराशि केन्द्र की दो योजनाओं (एस.एस.ए. तथा आर.एम.एस.ए.) से जुटाई जाती है; और इसलिए प्रशिक्षण की व्यवस्था आवश्यक धनराशि की उपलब्धता तथा उससे सम्बद्ध औपचारिकताओं और प्राथमिकताओं पर निर्भर रहती है। प्रशिक्षण कितना हो रहा है, यह स्थिति भी अलग-अलग राज्य में अलग-अलग थी। सबसे महत्वपूर्ण, ऐसा कोई आँकड़ों का आधार भी नहीं है जो किए गए प्रशिक्षणों की संख्या अंकित करता हो और साथ ही उन मुद्दों/विषयों को चिह्नित, जो प्रशिक्षण में हुए हों।

सारणी 1 : गत सालों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले प्राथमिक शिक्षकों की संख्या और प्रतिशत (अखिल-भारतीय)

	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13
प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या	1706214	1688255	2072961	2010873	2035106	1892474	2285050	1893841
प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत	36.4%	32.3%	36.8%	34.7%	35.0%	29.6%	34.2%	25.8%

(स्रोत : विमला रामचन्द्रन आदि, न्यूपा, 2015)

यह तो एक जानी-मानी बात है कि राज्यों को शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए एस.एस.ए. तथा आर.एम.एस.ए. योजनाओं के तहत काफी संसाधन मिलते हैं। उदाहरण के लिए 2012-13 के वित्त-वर्ष के लिए एस.एस.ए. के तहत राज्यों हेतु 1273 करोड़ रुपयों की धनराशि स्वीकृत की गई थी जबकि उसका लगभग आधा (619 करोड़ रुपये) ही असल में खर्च किए गए थे।[1] आर.एम.एस.ए. के लिए आँकड़े इससे काफी कम थे – शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए केवल 18 करोड़ रुपये अलग से रखे गए थे हालाँकि इस मद पर राज्य द्वारा होने वाले व्यय का काफी बड़ा हिस्सा यही था।[2] 2005-06 से 2012-13 के बीच देश भर में प्रशिक्षण पाने वाले प्राथमिक शिक्षकों की संख्या में बहुत कम प्रगति हुई हालाँकि यह संख्या 2007-08 में और फिर 2011-12 में जरूर बढ़ी (सारणी-1)। इस पूरी तस्वीर को और भी गम्भीर बनाने वाली बात है कि इस समयकाल में सेवाकालीन प्रशिक्षण के तहत 2005-06 में पूरे भारत के मात्र 36.4 % शिक्षक ही आए और 2011-12 में मात्र 34.2% - तथा 2012-13 में यह प्रतिशत घटकर 25.8% पर आ गया।

शिक्षकों का लैंगिक मुद्दों के प्रति संवेदीकरण, सामाजिक समता, बच्चों की स्कूली शिक्षा पर गरीबी का असर और थोड़े बहुत साधनों वाले परिवारों द्वारा अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से निकाल लेने की चौंका देने की हद तक की प्रवृत्ति हमेशा चुनौती बने रहे हैं। साथ ही शिक्षकों द्वारा उस सबको अनसीखा जाना, जो उन्होंने विद्यार्थी के तौर पर सीखा था और अवधारणाओं को फिर से सीखना भी कोई आसान काम नहीं है। पोलैण्ड जैसे देशों में कई-कई साल तक बहुत मेहनत की गई और उसके बाद ही कुछ आगे बढ़ पाने का रास्ता बन पाया।

वर्तमान में सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रभावशाली न होने का एक मुख्य कारण कुल मिलाकर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की निर्मिति की प्रकृति है। निरन्तर उपदेशात्मक, विषयानुसार लेक्चर को प्रशिक्षण का पसन्दीदा तरीका बनाया जाना प्रवृत्तियों, प्रथाओं और कक्षा में शिक्षकों के सामने आने वाली चुनौतियों को सम्बोधित किए जाने में बाधा बना है। असल में तो संवेदीकरण में प्रवृत्तियों-नजरियों, काम की संस्कृति, स्कूल-स्तरीय प्राथमिकताओं, संसाधनों की उपलब्धता और निगरानी शामिल हैं। इसलिए यह शब्द – प्रशिक्षण – उन सब व्यापक मुद्दों को अपने में नहीं समेटता जिन्हें एक साथ सुलझाने की आवश्यकता है। यह प्रक्रिया प्रशिक्षण से शुरू हो सकती है लेकिन आगे चलकर उन समस्याओं और मुद्दों को सुलझाने की ओर बढ़ना होगा जिनका सामना शिक्षकों को दिन-प्रतिदिन करना पड़ता है। प्रशिक्षित शिक्षकों ने 'शिक्षाकर्मी, राजस्थान' में अनुभव-आधारित प्रशिक्षण की ताकत की बात की तथा बताया कि किस तरह उसने उन्हें इन्सानों के तौर पर परिवर्तित किया और अच्छे शिक्षक बनाया। इसी तरह, गरीबों के समर्थन में नजरिये को पोषित करने की 'महिला समाख्या' की सामर्थ्य इस वजह से है कि उस द्वारा सम्पूर्णता लिए हुए व्यापक नजरिया अपनाया गया।

विभिन्न अनुभव-आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विचार करें तो कुछ सामान्य सिद्धान्तों की एक सूची बनाई जा सकती है[3]:

- अधिकतर अनुभव-आधारित या परिवर्तनगामी प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के पहले कदम में एक ऐसा माहौल तैयार करना शामिल होता है जिसमें प्रशिक्षु अपने काम के बारे में बात करते हैं, अपने अनुभवों पर विचार करते हैं, कटु आलोचना या आकलन के किसी भय के बिना चर्चा करने में आश्वस्त महसूस

[1] *स्रोत : एम.एच.आर.डी. की वेबसाइट पर मौजूद एस.एस.ए. की ऑडिट रिपोर्टों से एकत्र आँकड़े।*

[2] *स्रोत : आर.एम.एस.ए. प्रोग्राम के चौथे जॉएंट रिव्यू मिशन को रिपोर्ट किए गए आँकड़ों से लेखक द्वारा की गई गणना।*

[3] *एक और भी लम्बी चर्चा 1998 में प्रकाशित की गई थी। देखिए, Vimala Ramachandran: En-gendering Development: Lessons from the Social Sector programmes in India. Indian Journal of Gender Studies Vol 5, Number 1, pp 49 to 63*

करते हैं और इस तरह वास्तविक खोज और परस्पर सीखने के लिए एक माहौल बनाते हैं।

- परम्परागत प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में प्रशिक्षक जानकारी देने का काम करता है। लेकिन जब हमारा सामना मनोवृत्तियों से होता है तो जानकारी-हस्तांतरण ही पर्याप्त नहीं होता और ऐसा करना प्रतिकूल भावना तथा विरोध की ओर भी ले जा सकता है। प्रतिभागियों को अपने स्कूल, विद्यार्थियों, परिवार और समुदाय के बारे में बात करने का मौका देते हुए, जानकारी को उनसे बहुत ही प्रेमभाव के साथ निकलवाना होता है। सहायक (प्रशिक्षक) की भूमिका जानकारियों को सूचीबद्ध और वर्गीकृत करने की है। साथ ही, समूह को उस प्रक्रिया में शामिल करने की भी, जिसके चलते वे प्रत्येक तथ्य को बहुत आराम से तथा ईमानदारी से खोजते-जाँचते हुए व्यक्तिगत मूल्यों से प्रभावित कथनों को 'तथ्यों' से अलग करें। अधिकार स्थितियों में समूह से जानकारियाँ लेने पर लगभग वे सब मुद्दे उठकर आ जाते हैं जिन पर बात होना आवश्यक है।

- समूह से जानकारी और सूचनाएँ उत्पन्न कर लिए जाने के बाद अगला कदम सम्पूर्ण समूह को विश्लेषण में शामिल करने का है। हम ऐसा कर पाते हैं तो आमतौर पर होने वाली इस प्रतिक्रिया से बचा जा सकता है, कि 'आप जो कह रहे हैं, वह मेरे क्षेत्र, मेरे समुदाय, मेरे कार्यस्थल पर लागू नहीं होता।' इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हर सूरत में सहायकों को एक सुरक्षात्मक स्थिति में ले आती हैं और अक्सर समूह में उदासीनता लाती हैं। समूह द्वारा उत्पन्न सूचना और जानकारी का विश्लेषण मदद करता है कि वे प्रक्रिया में गहरे शामिल हों और यह प्रशिक्षु को अपने स्कूल तथा बच्चों के साथ जुड़ने में भी मदद करता है।

- प्रक्रिया के अन्त में इसे सुगम बनाने में सहायक व्यक्ति स्थितिनुसार जानकारी, विचार, वैकल्पिक शिक्षणशास्त्र साझा करता है। जब प्रशिक्षु स्वयं एक छोटे समूह में वह सब उत्पन्न करते हैं जिसकी जरूरत उन्हें शिक्षक के तौर पर है, तो उस प्रक्रिया की ताकत से वे उत्साहित और प्रोत्साहित होंगे। इस स्थिति में जानकारी या धारणाएँ या 'कठिन बिन्दु' भी एक बिल्कुल ही नया अर्थ ग्रहण कर लेंगे। असल बात वह नहीं है जो प्रशिक्षक द्वारा प्रशिक्षुओं से कही जाती है बल्कि वह, जो प्रशिक्षु एक-दूसरे से कहना चाहते हैं और प्रशिक्षकों या सहायकों से विशेष मदद माँगते हैं।

- इस प्रकार जानकारी/ ज्ञान/ विचारों का लेन-देन एक रचनात्मक काम बन जाता है, जिसमें प्रशिक्षुओं के ज्ञान की बुनियाद को टटोला जाता है जिससे वे अपनी योग्यता के बारे में भी आश्वस्त होते हैं और उनकी आत्म-छवि को एक उभार मिलता है। इससे उन्हें प्रशिक्षण की प्रक्रिया के साथ खुद को जोड़ने, उसे अपनाने का मौका मिलता है। यह महसूस करने का मौका मिलता है कि इस प्रक्रिया को उन्होंने स्वयं आकार दिया है। संक्षेप में, सहायक को समूह के सामूहिक ज्ञान का लाभ उठाना होगा, समूह को अपनी राय और विचारों की अभिव्यक्ति का मौका देना होगा और फिर इसके बाद के सत्रों में इसके आधार पर आगे बढ़ना होगा।

सीखने की अनुभव आधारित प्रक्रिया (या अनुभव आधारित प्रशिक्षण) में दिल और दिमाग दोनों शामिल रहते हैं। जब दिल किसी बात के लिए तैयार रहता है तो जानकारी, ज्ञान और रणनीतियाँ तुरन्त आत्मसात हो जाते हैं। दिल किसी बात का कायल हो जाए, इसके लिए न केवल यह आवश्यक है कि प्रशिक्षु की नजर में जानकारी प्रामाणिक हो, बल्कि यह एक ऐसे शीशे की तरह होना चाहिए जो 'सत्य' को उसी तरह प्रतिबिम्बित करे जैसा कि उसे प्रशिक्षुओं के द्वारा देखा जाता है। यह बात उन प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के लिए महत्वपूर्ण है जो नजरिए में परिवर्तन लाना चाहते हैं – और सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं के लिए भी।

एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसे आमतौर पर भुला दिया जाता है – सामान्य-बुद्धि की अहमियत और मूल्य की पुन: पुष्टि करने का मुद्दा जो हमें शिक्षक के तौर पर अपने दैनिक अनुभव को शैक्षिक प्रक्रियाओं के साथ सम्बद्ध करने में मददगार होता है। शिक्षकों में समाज, प्रभावशाली पूर्वाग्रहों, स्कूल, पाठ्यचर्या और शिक्षण-पद्धतियों पर आलोचनात्मक सोच-विचार करने की सामर्थ्य होती है। जो प्रशिक्षण प्रशिक्षुओं को पेशेवर दृष्टिकोण और सामान्य-बुद्धि के अंशों का मेल-जोल करने से रोकते हैं, वे अनुभवजन्य यथार्थ को खण्डित करते हैं। इन दो संसारों के बीच पुल बनाए जाने से महत्वपूर्ण, मूल्यवान अन्तर्दृष्टियाँ मिलती हैं।

सेवाकालीन प्रशिक्षण के एक नव-निर्मित ढाँचे को उपरोक्त सिद्धान्तों का समर्थन करना होगा। सहायकों के एक समूह को शिक्षकों के समूह के साथ पूरे प्रशिक्षण के दौरान रहना होगा। उन्हें प्रशिक्षण में ऐसे अभ्यास पिरोने होंगे जो शिक्षण-पद्धतियों को कक्षा के वातावरण के साथ जोड़ने में शिक्षकों की मदद करें। सब विद्यार्थियों का समावेश तब सम्भव होगा जब प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण में भाग लेने वाले सब शिक्षकों का शामिल होना सुनिश्चित किया जाए। इसी तरह शिक्षक-अध्यापक भी प्रशिक्षण में जागरूक रहकर ऐसा करेंगे तो शिक्षक भी सुनिश्चित करेंगे कि वे कक्षा में प्रत्येक बच्चे तक पहुँच पाएँ। वे यह पता लगाने के तरीके निकालेंगे कि कक्षा में मौजूद प्रत्येक इन्सान उनके साथ है। इस सबके लिए सहभागिता सुनिश्चित करने वाले शोध के औजारों का रचनात्मक इस्तेमाल, और शिक्षकों को न केवल प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के 'विषय' सम्बन्धी लक्ष्यों बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण, शिक्षा-पद्धतीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करना शामिल है।

नए विचारों और संसार को देखने की एक अलग, नई दृष्टि के सम्पर्क में आना, और नई अन्तर्दृष्टि को व्यवहार में लाना – सीखे हुए को अनसीखा किए जाने के सतर्क प्रयासों के साथ-साथ यह सब भी होना होगा। हमें "कुशल विशेषज्ञों" या "शिक्षक-शिक्षकों" या "शिक्षा-प्रशासनिकों" के तौर पर पहले वह सब भुलाना और छोड़ना होगा जो हम बिना सोचे-समझे करते रहे हैं और शुरुआत करना होगी सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा के प्रति वैकल्पिक नजरियों और निर्माण-ढाँचों की एक सच्ची खोज और जाँच-पड़ताल की।

विमला रामचन्द्रन एजुकेश्नल रिसोर्स युनिट, नई दिल्ली से हैं। वे महिला समता के लिए शिक्षा से सम्बद्ध महिला समाख्या की संकल्पना करने में शामिल रही हैं। वे भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय में 1988 से 1993 तक प्रथम राष्ट्रीय परियोजना निदेशक रही हैं। उन्होंने 1998 में एजुकेश्नल रिसोर्स युनिट की शिक्षा पर काम करने वाले शोधकर्ताओं तथा प्रेक्टिशनरों के नेट्वर्क के रूप में स्थापना की, जिसे अब ई.आर.यू. कन्सल्टेन्ट्स प्राइवेट लिमिटिड के नाम से जाना जाता है। वे न्यूपा (नेशनल युनिवर्सिटी ऑफ एजुकेश्नल प्लानिंग एण्ड एड्मिनिस्ट्रेशन) में नेशनल फैलो तथा शिक्षक प्रबन्धन एवं विकास की प्रोफेसर रही हैं। वे प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में शोध करती रही हैं। इसके केन्द्र में लैंगिकता एवं समता के मुद्दे, शिक्षक का रुतबा और प्रोत्साहन, प्राथमिक शिक्षा, प्रौढ़ साक्षरता एवं निरन्तर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के समता सम्बन्धी लक्ष्यों को हासिल करने की राह में व्यवस्थागत बाधाएँ हैं। हाल के समय में वे स्कूल से बाहर युवाओं, विशेषकर लड़कियों, की शैक्षिक आवश्यकताओं पर काम में व्यस्त रही हैं। उनसे vimalar.ramachandran@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** रमणीक मोहन

शिक्षक-अध्यापकों का सशक्तीकरण

मैथिलि रामचन्द

इस लेख में मैं सेवा-पूर्व प्रारम्भिक शिक्षक-शिक्षा सेक्टर (जो शिक्षा में डिप्लोमा, डी.एल.एड. प्रदान करता है) में काम करने वाले शिक्षक-अध्यापकों के साथ हुए अपने अनुभवों[1] को साझा करूँगी। परिप्रेक्ष्य था 2012-13 में एस.सी.ई.आर.टी., कर्नाटक द्वारा डी.एल.एड. प्रोग्राम के पाठ्यचर्या सुधार का काम। लेख शिक्षक-अध्यापकों की तैयारी और व्यवहार को समस्यामूलक नजरिए से देखते हुए उस पर विचार करता है।

शिक्षक-शिक्षा इस समय हमारे देश में निरन्तर परिवर्तन और प्रवाह की अवस्था में है। शिक्षकों से आशाएँ हर ओर से बढ़ रही हैं जबकि समता के मुद्दे अब भी अनसुलझे हैं और लगभग हर श्रेणी के स्कूलों में ये और प्रबल ही हुए हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005, शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 तथा जस्टिस वर्मा कमेटी रिपोर्ट 2012 की रोशनी में शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में व्यवस्थात्मक बदलावों की शुरुआत की जा रही है। देश भर में शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में फिर से फेर-बदल किए जा रहे हैं। उद्देश्य यह सुनिश्चित करने का है कि संशोधित स्कूली पाठ्यचर्या की बोधात्मक माँगों को शिक्षक पूरा कर पाएँ और समावेशी कक्षाओं के लिए नए कानून द्वारा आदेशित आवश्यक दक्षताओं और शपथों को विकसित कर पाएँ। इस तरह के कार्यक्रमों के लागू किए जाने में शिक्षक-अध्यापक एक कुंजी की तरह हैं।

शिक्षक-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ़.टी.ई.,2009) सेवा-पूर्व और सेवाकालीन, दोनों क्षेत्रों के लिए शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यचर्या-सम्बन्धी संशोधनों हेतु पथ-निर्देश देती है। विचारशील व्यवहार को शिक्षक-शिक्षा के केन्द्रीय सिद्धान्त के तौर पर एक शर्त माना गया है। विचारशील व्यवहार 'प्राप्त' ज्ञान के प्रति आलोचनात्मक नजरिए की माँग करता है और अपने ज्ञान और व्यवहार को लगातार निरीक्षण किए जाने वाली परिकल्पना के रूप में लेने की माँग भी (सॉकेट, 2008)। इस समय शिक्षक-अध्यापक ऐसा कर पाने के लिए लैस नहीं हैं। उनमें ज्ञान को एक 'मौजूद, दी गई' चीज के तौर पर देखने की प्रवृत्ति है और व्यवहार को वे अधिकतर लेक्चर के माध्यम से परोसे जाने वाले कुछ स्थायी 'तरीकों' के रूप में देखते हैं (मैथिलि, 2011)। यह मूल रूप से इसलिए है कि अपने व्यवसाय की शुरुआत में शिक्षक-अध्यापकों को ज्ञान की मौजूदा कसौटियों और नियमों की आलोचना कर पाने के काबिल विद्वान के रूप में आवश्यक ज्ञान, दक्षताओं और प्रवृत्तियों के साथ तैयार नहीं किया जाता। एन.सी.एफ़.टी.ई. भी इस ओर ध्यान दिलाता है कि "शिक्षक-शिक्षा का शायद सबसे कमजोर पक्ष शिक्षक-अध्यापकों की पेशेवर तैयारी का अभाव है" (एन.सी.टी.ई., 2009; पृष्ठ 15)। शिक्षक-अध्यापकों के लिए आदेशित पेशेवर योग्यता एम.एड. है। इससे पहले इस प्रोग्राम में जीवंतता नहीं थी और यह शिक्षक-अध्यापकों को अपने व्यवसाय की माँगों को पूरा कर पाने के लिए पर्याप्त तरीके से लैस करने में असफल रहा है (एन.सी.टी.ई., 2009)। शिक्षक-अध्यापकों के लिए बाद में ज्ञान का एक मजबूत आधार तैयार करने हेतु पेशेवर विकास के मौके भी बहुत सीमित होते हैं (वही)। कर्नाटक में किए गए एक अध्ययन[2] में प्रारम्भिक शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में कार्यरत शिक्षक-अध्यापकों ने बताया कि वे किसी भी सेवाकालीन प्रोग्राम में नहीं रहे हैं (मैथिलि, 2011)।

इसलिए जब कर्नाटक सरकार ने 2012 में डी.एड. कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में संशोधन की पहलकदमी ली तो राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण विभाग (डी.एस.ई.आर.टी.) ने शिक्षक-अध्यापकों के सशक्तीकरण के लिए कई कदम उठाने शुरू किए। पाठ्यचर्या संशोधन की प्रक्रिया के लिए उनमें से कुछ की सलाह लेने के अलावा संशोधित पाठ्यचर्या के व्यावहारिक आदान-प्रदान में मददगार होने के लिए निर्देश-पुस्तिका और कार्य-निदेशिकाओं की शक्ल में पाठ्यचर्या सहायक सामग्री प्रकाशित की गई। साथ ही सम्बद्ध विषय-क्षेत्रों के विशेषज्ञों की वीडियो रिकॉर्डिंग्स की शृंखला भी निकाली गई। दिशानुगमन (ओरिएंटेशन) प्रोग्राम भी किए गए – आमने-सामने के साक्षात् रूप में भी और टेलिकॉन्फ्रेंस से भी।

प्राथमिक शिक्षक-शिक्षा संस्थानों की एक सौ से भी अधिक कक्षाओं के अवलोकन से संकेत मिला कि कक्षा में आदान-प्रदान का एकमात्र तरीका लेक्चर का था (मैथिलि, 2011)। शिक्षक-अध्यापकों को इससे आगे बढ़ने में मदद करने के लिए और उन प्रथाओं को मॉडल रूप में लाने के लिए जिन्हें एक प्राथमिक शिक्षक द्वारा अख्तियार किए जाने की आशा रहती है, पाठ्यचर्या मसौदा कमेटी ने शिक्षक-अध्यापकों के लिए एक निर्देश-पुस्तिका तैयार की।[3] प्रत्येक पाठ्यक्रम में प्रत्येक इकाई हेतु कुछ सुझाए गए बोधात्मक कार्यों और सीखने के अनुभवों के साथ-साथ सम्भावित संसाधनों और मूल्यांकन रणनीतियों का भी एक खाका खींचा गया। शिक्षक-अध्यापकों को प्रोत्साहित किया गया कि वे एक

'पाठ्यपुस्तक' पर निर्भरता से बाहर निकलने के लिए मुनासिब संसाधनों की शृंखला का इस्तेमाल करें। कक्षा में आदान-प्रदान की जीवंतता को सुनिश्चित करने के लिए और प्रक्रियाओं का मूल्यांकन हो पाने के लिए संशोधित पाठ्यचर्या ने 40% अंक आन्तरिक मूल्यांकन के लिए निर्धारित किए। निर्देश-पुस्तिका में साधनों, तकनीकों और कार्यों की एक लड़ी सुझाई गई। जब शिक्षक-अध्यापकों ने एक सिरे से दूसरे तक सभी संस्थानों में आन्तरिक मूल्यांकन की गुणवत्ता बनाए रखे जाने बाबत शंकाएँ व्यक्त कीं तो मूल्यांकन पर भी एक कार्य-निर्देशिका तैयार की गई।

दो चरणों में एक दस-दिवसीय दिशानुगमन (ओरिएंटेशन) प्रोग्राम की योजना बनाई गई। प्रत्येक जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डी.आइ.ई.टी.) ने जिले से पाँच शिक्षक-अध्यापकों को मुख्य स्रोत-व्यक्ति के तौर पर चुना। लगभग 150 लोग इस प्रोग्राम में प्रतिभागी रहे। उसके बाद उन्होंने राज्य भर के 4000 से अधिक शिक्षक-अध्यापकों का उनके जिलों में दिशानुगमन किया। शिक्षक-अध्यापक देश में शिक्षा के वर्तमान विमर्शों और नीतियों से परिचित नहीं थे, इसलिए पाँच दिनों के पहले चरण में एन.सी.एफ़. 2005, एन.सी.एफ़.टी.ई. 2009 और शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 की एक व्यापक समझ बनाने की क्रिया रही। दूसरे चरण का ध्यान डी.एड. प्रोग्राम के औचित्य और आशाओं तथा संशोधित पाठ्यचर्या के प्रत्येक पाठ्यक्रम के मोटे सिद्धान्त सम्प्रेषित करने पर केन्द्रित था। इस प्रकार के चरणबद्ध प्रशिक्षण में सन्देश के नीचे तक पहुँचने में कमजोरी रह जाना निहित है लेकिन समस्या इस वजह से और बढ़ गई कि निरन्तरता की भी कमी रही – कुछ प्रतिभागी, खासतौर से डाइट के प्राध्यापकगण अन्य प्रतिबद्धताओं की वजह से दोनों चरणों में उपस्थित नहीं रह पाए। इसके अलावा प्रतिभागियों की संख्या बहुत अधिक होने की वजह से गहन बातचीत और वार्तालाप भी नहीं हो पाए। इन कमजोरियों को कुछ हद तक दूर करने के लिए 2013-14 में पाठ्यचर्या का मसौदा तैयार करने वाली टीम और कर्नाटक भर के शिक्षक-अध्यापकों के बीच हर तीन महीनों में एक टेलिकॉन्फ्रेंस की गईं – यह संशोधित पाठ्यचर्या के लागू किए जाने का पहला साल था।

बोलने-लेक्चर देने से आदर्श और निर्देशित व्यवहार की स्थिति में आने की प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है, जबकि ये भी शिक्षक-शिक्षा के लिए अपर्याप्त हैं। अगर शिक्षक-शिक्षा को वास्तव में विचारशील और समावेशी होना है तो उसे जाँच के लिए सवाल उठाने, खोजबीन और समीक्षा का स्थल होना होगा तथा तकनीक भर से आगे तक जाना होगा (Loughran, 2014)। शिक्षक-अध्यापकों में अपने विद्यार्थी-शिक्षकों में "अनुकूलन की दक्षता" विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए। ऐसा हो पाने पर ही वे तेजी से हो रहे बदलावों और अनिश्चितता की स्थितियों में काम कर पाने वाले गतिशील शिक्षक के तौर पर उभर पाएँगे। सबसे महत्वपूर्ण यह कि ऐसा होने पर ही वे सामाजिक स्तर पर समावेशी व्यवहार और प्रथाओं के लिए क्षमताएँ विकसित कर पाएँगे तथा कई स्कूलों के भीतर (और व्यापक स्तर पर अलग-अलग स्कूलों में भी) उपलब्धि सम्बन्धी कमियों और अन्तरों को कम कर पाएँगे। इसके लिए जरूरी है कि शिक्षा में प्रचलित धारणाओं और प्रथाओं के साथ शिक्षक-अध्यापक अधिक गहरे ढंग से सूक्ष्मभेद करते हुए जूझें। उन्हें स्वयं के पेशेवर विकास के लिए एक दृष्टि पैदा करनी चाहिए और सुधारों के चालक के रूप में उभरना चाहिए न कि 'सुधार के पात्रों' के रूप में, जैसा कि पूनम बत्रा (2014) शिक्षकों के मामले में कहती हैं।

इसके साथ ही प्रवेश-सम्बन्धी शर्तों को और व्यापक बनाने में नियामक व्यवस्था को कल्पनाशील तथा दूरदृष्टि वाला होना होगा, जैसा कि एन.सी.एफ़.टी.ई. 2009 ने सुझाया है, ताकि विभिन्न पृष्ठभूमियों से सम्बद्ध और दिलचस्पी लेने वाले लोग शिक्षक-शिक्षा को पेशे के तौर पर लेने के लिए प्रोत्साहित हों। ऐसा होगा तो इसमें वो जीवन्तता भी आ पाएगी जिसकी बहुत जरूरत दिखाई देती है। संशोधित एम.एड.पाठ्यचर्या (एन.सी.टी.ई.,2014) के अर्थपूर्ण क्रियान्वयन के लिए इस प्रोग्राम को चलाने वाले विश्वविद्यालयी विभागों और शिक्षा के कॉलेजों को कई तरह के संसाधनों से लैस करना होगा और प्राध्यापकगण को सघन दिशानुगमन प्रदान करना होगा। शिक्षक-अध्यापकों के निरन्तर चलने वाले पेशेवर विकास के लिए सुदृढ़ ढाँचे और प्रारूप केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा स्थापित किए जाने होंगे।

संक्षिप्त टिप्पणियाँ

1. राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण विभाग (डी.एस.ई.आर.टी.) के अधिकारियों एवं पाठ्यचर्या का मसौदा और उससे सम्बद्ध सामग्रियाँ की तैयारी से सम्बद्ध समूह को मेरा आभार, विशेष तौर से क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (आर.आइ.ई.), मैसूर के प्रो. सी.जी. वेंकटेश मूर्ति जिन्होंने पाठ्यचर्या क्रियान्वयन टीम का नेतृत्व किया।
2. यह अध्ययन कर्नाटक ज्ञान आयोग द्वारा 2010 में आर.वी. एजुकेशनल कन्सोर्शियम (आर.वी.ई.सी.), बेंगलूरु के जिम्मे लगाया गया था। पूरे कर्नाटक से 108 शिक्षक-शिक्षा संस्थानों (जो उस समय मौजूद कॉलेजों का 10% थे) से एक स्तरीकृत रैण्डम सैम्पल (अनियमित/ संयोगिक नमूना) लेकर अध्ययन किया गया।
3. अधिकतर पाठ्यक्रमों के संयोजक विषय-क्षेत्र के विशेषज्ञों और प्रेक्टिशनर के साथ काम करते हुए पोजीशन पेपर लिखने, सम्बद्ध पाठ्यक्रम-पाठ्यचर्या का मसौदा तैयार करने, शिक्षक-अध्यापकों की निर्देशिका और विद्यार्थी-शिक्षकों के लिए स्रोत-पुस्तिका तैयार करने के साथ-साथ कर्नाटक राज्य प्राथमिक शिक्षा बोर्ड (के.एस.ई.ई.बी.) की अन्तिम परीक्षा के लिए प्रश्न-पत्रों का पहला सेट तैयार करने में शामिल रहे।

References:

- Batra, Poonam. 2014. Problematising teacher education practice in India: Developing a research agenda. *Education as change*. 18(1); pp.55-58
- Department of State Education Research and Training (DSERT). 2012. Karnataka *Elementary Teacher Education Curriculum. Bangalore*: DSERT.
- Department of State Education Research and Training (DSERT). 2013. *Teacher Educators' Handbook*. Bangalore: DSERT.
- Loughran, J. 2014. Professionally developing as a teacher educator. *Journal of Teacher Education*. 65 (4). pp. 271-283.
- National Council for Educational Research and Training (NCERT), 2005. *National Curriculum Framework*. New Delhi: NCERT.
- National Council for Teacher Education (NCTE), 2009. National Curriculum Framework for Teacher Education. New Delhi: NCTE.
- Ramchand, Mythili. 2011. *Pre-Service Elementary Teacher Education in Karnataka: A Status Study*. Bangalore: Karnataka Knowledge Commission.
- Sockett, Hugh. 2008. The Moral and Epistemic Purposes of Teacher Education. In Cochran-Smith, Feiman-Nemser & Mc Intyre (Eds). *Handbook of Research on Teacher Education*. New York: Routledge.

मैथिलि रामचन्द वर्तमान में आर.वी. एजुकेशनल कन्सोर्शियम(आर.वी.ई.सी.), बेंगलूरु की निदेशक तथा टाटा इन्स्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसिस (टिस), मुम्बई में एड्जंक्ट असोशिएट प्रोफेसर हैं। आर.वी.ई.सी. के मुख्य काम का केन्द्र प्रारम्भिक शिक्षक-शिक्षा में शोध एवं विकास का क्षेत्र है। मैथिलि इस समय आर.वी.ई.सी. की मौजूदा परियोजनाओं को स्थिरता प्रदान करने तथा टिस के साथ शिक्षक-अध्यापकों के लिए एक सर्टिफिकेट कोर्स की तैयारी में व्यस्त हैं। समावेशी शिक्षा और शिक्षा का दर्शन उनकी अन्य रुचियों के क्षेत्र हैं। उनसे rvecbangalore@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** रमणीक मोहन

शिक्षकों के कार्य-सम्बन्धित विकास (शिक्षक-शिक्षा) की संरचना को पुनर्निर्मित करना : ज्ञान शाला के अनुभव से प्राप्त विचार

पंकज जैन

इस संक्षिप्त लेख में शिक्षकों के कार्य-सम्बन्धित विकास (शिक्षक-शिक्षा) कार्यक्रम को तैयार करने से सम्बन्धित कुछ विचार प्रस्तुत किए गए हैं जो निम्न तीन मानदण्डों के आधार पर बने हैं : (i) शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो शिक्षकों को अपने कार्य करने में समर्थ/ निष्णात बना सके, (ii) इस कार्यक्रम में भाग लेने वालों को उनके मौजूदा शैक्षिक आधार की नींव पर आगे बढ़ने का अवसर मिले, और (iii) नया कार्यक्रम पिछली सफलताओं के आधार को अपनाए। हमारे इस विश्लेषण से उभरने वाला विचार एन.सी.टी.ई. के शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों से भिन्न है अतः इस पर बहस और विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

I. विद्यालय शिक्षकों की भूमिका की आवश्यकताएँ

अपने विश्लेषण के लिए हमने शिक्षकों को उनके कार्य/ जिम्मेदारियों के आधार पर नौ वर्गों में बाँटा है, क्योंकि प्रभावी कार्य करने के लिए प्रत्येक वर्ग के लिए विभिन्न प्रकार के कौशल-क्षमता की जरूरत है। इसके अलावा चार वर्ग और भी हैं (अ) शिक्षक प्रशिक्षक, (ब) पाठ्यक्रम योजनाकार, (स) शिक्षा नीति विश्लेषक/निर्माता, और (द) शिक्षाविद-विचारक, जो शिक्षक-शिक्षा से जुड़े हैं। इस लेख में यह प्रतिपादित किया गया है कि इन सब 9+4=13 तरह के कार्यों/ भूमिकाओं के लिए कार्य-सम्बन्धित शिक्षा कैसी हो।

हमने कौशलों/क्षमताओं के ऐसे 14 समूहों को चुना है जो अधिकांश शिक्षक-शिक्षा एवं विकास कार्यक्रमों में आमतौर पर होते ही हैं। अपने विश्लेषण एवं अनुभव के आधार पर हमने उपरोक्त 13 कार्यों/भूमिकाओं की सफलता के लिए जरूरी स्तर और वर्तमान में प्राप्त स्तर को अन्त में दी गई तालिका में दर्शाया है। इस तालिका में शिक्षकों की 13 भूमिकाओं की श्रेणियों में से प्रत्येक के लिए 13 कॉलम हैं। तालिका में चौदह पंक्तियाँ उन दक्षताओं-कौशलों से सम्बन्धित हैं जिन्हें शिक्षकों की भूमिका के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। 14*13 के खानों में से प्रत्येक में हमने अपने अनुभवजन्य निर्णय से यह बताया है कि प्रभावी निष्पादन के लिए किस स्तर के कौशल/दक्षता की आवश्यकता है और मौजूदा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों के तहत शिक्षक कितना स्तर प्राप्त कर पाते हैं। कोष्ठकों के बाहर और अन्दर, 1 से 5 श्रेणी की दो संख्याएँ इन स्तरों को दर्शाती हैं, संख्या 5 उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व करती है। वांछित और आमतौर पर प्राप्त किए गए स्तरों के बीच का अन्तर शिक्षकों के प्रभावी कार्य-सम्बन्धित विकास को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सुधारात्मक कार्यों की प्रकृति और सीमा को दर्शाता है।

(आगे और अधिक विश्लेषण करने के लिए शिक्षकों के वर्गों और आवश्यक कौशलों के सेटों को एकीकृत या विस्तारित करके उनकी संख्या कम या अधिक की जा सकती है, लेकिन हम अपनी बात को सामने रखने के लिए इस वर्गीकरण को पर्याप्त समझते हैं।)

विद्यालय एवं विश्वविद्यालय के शिक्षकों के कार्य में मूलभूत अन्तर विश्वविद्यालय स्तर के प्रोफेसर के लिए तो यह बात असामान्य नहीं है कि वे अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र में स्नातकोत्तर कक्षा के शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका के साथ (अ) अकादमी सदस्य/विचारक-शोधकर्ता, (ब) नीति विश्लेषक, (स) पाठ्यक्रम योजनाकार/ निर्माता, और (द) शिक्षक प्रशिक्षक-गाइड जैसी विभिन्न सामान्य भूमिकाओं को भी निभाएँ। हमारा मानना यह है कि केवल सीमित विषय प्रकरण की विशेषज्ञता के लिए इन सभी भूमिकाओं को सम्मिलित करना सम्भव है, चाहे वह अकार्बनिक रसायनशास्त्र या मध्यकालीन भारतीय इतिहास हो। परन्तु विद्यालय के शिक्षकों के लिए यह अव्यावहारिक है, जिन्हें प्रारम्भिक चरण के कई स्तरों/ ग्रेडों में अनेक विषय या गणित, विज्ञान या सामाजिक विज्ञान जैसे कई विषय पढ़ाने पड़ते हैं। किसी एक व्यक्ति के लिए कई विषयों में एक साथ अलग विषयों में विश्वविद्यालय स्तर के प्रोफेसर की क्षमता हासिल करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त, विद्यालय शिक्षकों को एक दिन में पाँच घण्टे तक 20-40 ऊर्जावान बच्चों के साथ अन्तःक्रिया करनी पड़ती है उसके चलते विद्यालय के शिक्षक में 'स्वीकृत पाठ्य सामग्री को पढ़ाने' या 'परीक्षा के लिए तैयार करने' से ज्यादा कुछ और करने का सामर्थ्य नहीं रहता। अभिजात्य वर्ग के कुछ विद्यालय विश्वविद्यालय के समान वातावरण और कामकाज की स्थिति बनाने की कोशिश करते हैं और शिक्षकों को यह अवसर देते हैं कि वे विषय-शिक्षक के साथ में पाठ्यक्रम नियोजन भी कर सकें। लेकिन अधिकांश सरकारी या निम्न लागत वाले निजी विद्यालयों में, फिर चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र में हों या शहरी क्षेत्र में, और जिनमें एकल या बहु-श्रेणी वाली कक्षाएँ भी होती हैं, शिक्षकों के पास सारे विषयों को पढ़ाने के लिए दैनिक पाठ योजना बनाने की ऊर्जा-समय-क्षमता ही नहीं होती, पाठ्यक्रम योजना बनाना तो दूर की बात है। (ध्यान दें- अभिजात्य वर्ग के विद्यालयों में न केवल अम्बानी अन्तर-राष्ट्रीय विद्यालय जैसे विद्यालय, बल्कि आकांक्षा या दिगन्तर जैसे निर्धनों के विद्यालय अथवा

सामाजिक-सांस्कृतिक अभिजात्य वर्ग के ऋषिवैली या उच्च प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों के सरकारी नवोदय विद्यालय भी शामिल हैं।)

प्रस्ताव 1 :

अभिजात्य वर्ग को छोड़कर, ज्यादातर विद्यालयों के शिक्षकों का कार्य-सम्बन्धित विकास ऐसा होना चाहिए जो स्वीकृत पाठ्यसामग्री की सहायता से प्रभावी रूप से शिक्षण करने को ही व्यावहारिक/यथार्थवाद लक्ष्य माने और उन्हें इस बात के लिए तैयार करे।

प्रारम्भिक पाठ्यक्रम में तीन विषय धाराओं की केन्द्रीयता

पूरे विश्व में प्रारम्भिक स्तर पर विद्यालय के पाठ्यक्रम में भाषा, गणित और प्रकृति विज्ञान को सिखाने की बात की जाती है। अधिकांश जानकार लोग यह भी मानते हैं कि प्राथमिक कक्षाओं (1-3) के शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि वे कम से कम हाईस्कूल स्तर के गणित और विज्ञान की उच्च स्तरीय योग्यता रखते हों, जबकि उच्च-प्राथमिक (4-8) कक्षाओं के शिक्षकों में इन विषयों की कम से कम माध्यमिक स्तर की उच्च स्तरीय विशेषज्ञता होनी चाहिए। इसके अलावा भाषा के सभी शिक्षकों को यह भी समझना चाहिए कि प्रथम, द्वितीय और बहुभाषाओं को सीखने की प्रक्रिया के बारे में 'भाषाविज्ञान' क्या कहता है, जो सर्व मान्य भाषा पढ़ाने की परिपाटी से भिन्न या विरोधी है। चूँकि वास्तविक जीवन की अधिकांश स्कूली परिस्थितियों में ऐसा हो सकता है कि जब कोई शिक्षक अनुपस्थित हो तो दूसरे शिक्षकों को सारी प्रारम्भिक कक्षाएँ पढ़ानी पड़ें। तो यह बात निर्विवाद होनी चाहिए कि,

प्रस्ताव 2 :

प्रारम्भिक विद्यालय के शिक्षकों के कार्य-सम्बन्धित विकास में यह बात सुनिश्चित की जानी चाहिए कि माध्यमिक स्तर के गणित और विज्ञान में उनकी क्षमता उच्च-स्तरीय / सन्तोषजनक हो और यह समझ भी विकसित हो कि भाषाएँ कैसे सीखी जाती हैं। आवश्यक कौशल/क्षमताओं को बढ़ावा देने के लिए जो कार्य- सम्बन्धित विकास कार्यक्रम तैयार किया जाए, उसके लिए यह बुनियादी जरूरत है।

II. शिक्षकों के कार्य-सम्बन्धित विकास कार्यक्रमों के लिए प्रवेशकों का कौशल / क्षमता स्तर

हम यह मानते हैं कि कि बोर्ड/विश्वविद्यालय की परीक्षा में औसत 65-70 प्रतिशत अंक प्राप्त कर लेना इस बात का उचित संकेतक है कि विद्यार्थी ने उस स्तर पर सन्तोषजनक विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है। भारतीय विद्यालयी और विश्वविद्यालयी शिक्षा प्रणाली के अनुसार अगर कोई व्यक्ति स्नातक या स्नातकोत्तर (गैर-विज्ञान विषय में) डिग्री पा लेता है तो वह शिक्षक-शिक्षा का कोर्स कर सकता है, भले ही माध्यमिक स्तर पर उसके गणित और विज्ञान का स्तर सन्तोषजनक न भी हो। इस प्रकार गणित और विज्ञान विषय में, जो विद्यालयी शिक्षा के प्रमुख विषय हैं, उन विद्यार्थियों की विशेषज्ञता न्यूनतम वांछित स्तर से भी काफी कम होती है जो शिक्षक-शिक्षा के कोर्स में प्रवेश लेते हैं। साथ ही, अधिकांश शिक्षक-शिक्षा के विद्यार्थी इस बात से भी या तो अनजान होते हैं या सही समझ नहीं रखते कि भाषा कैसे सीखी/अर्जित की जाती है - इस बारे में भाषाविदों ने क्या बताया है,

प्रस्ताव 3 :

इसलिए भारतीय शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों को चाहिए कि वे शिक्षक-शिक्षा कोर्स में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए आवश्यक माध्यमिक स्तर के गणित व विज्ञान विषयक ज्ञान की कमी को, पहली प्राथमिकता के रूप में, पूरा करें। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए, आज के शिक्षक-शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम में से कुछ विषयों को कम करना जरूरी होगा, जिससे बचा हुआ समय, इस प्राथमिक आवश्यकता पर लगाया जा सके।

प्रस्ताव 4 :

हम जानते हैं कि विद्यालय के ज्यादातर शिक्षकों के पास स्वतंत्र रूप से अगले दिन की पाठ योजना बनाने का समय/स्थान/ऊर्जा/क्षमता नहीं होती, ऐसे में उनसे इस बात की उम्मीद करना अव्यवहारिक होगा कि वे कक्षा में उपयोग के लिए स्वीकृत शिक्षण सामग्री में सन्निहित पाठ्यक्रम की पुनर्व्याख्या कर पाएँगे- उसे फिर से डिजाइन करना तो दूर की बात है। इसलिए 'शिक्षा का दर्शन', 'अधिगम के सिद्धान्त', 'शिक्षा नीतियों का समीक्षात्मक विश्लेषण' जैसे कोर्स विद्यालय के शिक्षकों (अभिजात्य वर्ग के विद्यालयों को छोड़कर) के लिए जरूरी नहीं हैं क्योंकि इनका उपयोग मुख्यतया पाठ्यक्रम के डिजाइन और व्याख्या के लिए ही होता है।

III. शिक्षकों के विकास कार्यक्रमों में पिछली सफलताओं से सीखे हुए पाठ शामिल करना

1. अधिगम की पूछताछ वाली विधि

अधिकांश शिक्षाविद पूछताछ पर आधारित शिक्षा की प्रभाविता का समर्थन करते हैं, उदाहरण के लिए भाषाविज्ञान के सन्दर्भ में एम.आई.टी. के प्रोफेसर हेल ने यह विचार शुरू किया और अन्य कई सन्दर्भों में अग्र लिखित शीर्षकों के तहत इसे अपनाया गया जैसे 'परियोजना उन्मुख', 'प्रयोग उन्मुख', 'परिकल्पना परीक्षण', 'डिजाइन आधारित' अधिगम आदि।

प्रस्ताव 5 :

शिक्षकों की कार्य-सम्बन्धित शिक्षा में अधिगम की 'पूछताछ विधि' का महत्वपूर्ण घटक अवश्य होना चाहिए। ताकि न केवल उनकी अपनी शिक्षा प्रभावी ढंग से हो और उसकी जड़ें मजबूत हों वरन उन्हें इस विधि का पर्याप्त अभ्यास भी हो जाए, जिससे कि वे आगे चलकर अपनी कक्षाओं में इस तरीके का उपयोग अच्छी तरह से कर सकें। इसलिए हम इस बात की सिफारिश करते हैं कि कई सारी 'कार्यशालाएँ' आयोजित की जाएँ, जैसा कि संलग्न मैट्रिक्स में दिखाया गया है, क्योंकि ये सामान्य 'दिए गए प्रकरणों पर कोर्स वर्क या पाठ्यक्रम कार्य' की तुलना में बेहतर तरीका है।

2. व्यावहारिक प्रशिक्षण और परामर्शी अभ्यास के माध्यम से सीखने के साथ चिन्तनशील अभ्यास को एकीकृत करना

चूँकि यह बात मान ली गई है कि शिक्षण-अधिगम की विधियों में 'प्रतिपादित करने की विधि' की तुलना में 'पूछताछ विधि' अधिक प्रभावकारी है, इसलिए औपचारिक अधिगम के साथ चिन्तनशील अभ्यास को एकीकृत करने की उपयोगिता को भी व्यापक स्वीकृति मिल गई है। यह बात भी व्यापक रूप से मान्य है कि समय बीतने के साथ अधिगम का ह्रास होता है।

प्रस्ताव 6 :

अगर इन दोनों कारकों का जवाब देने वाले शिक्षण-प्रशिक्षण को तैयार करना है तो हमारा सुझाव यह है कि औपचारिक शिक्षक-शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा, जो शिक्षक-पात्रता-प्रमाण पत्र की ओर ले जाए, व्यावहारिक प्रशिक्षण मॉड्यूल की शृंखला के रूप में होना चाहिए, जिसे पूरा करने के बाद शिक्षक-शिक्षा की डिग्री/प्रमाण पत्र मिले।

शिक्षक-शिक्षा के लिए बेहतर समाधान की चर्चा-खोज

उपर्युक्त विश्लेषण का सार नीचे दी गई तालिका में दिया गया है, जिसमें एन.सी.टी.ई. द्वारा अनुशंसित-अनुमोदित और भारत में अपनाए गए शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के ढाँचे से बहुत अलग सुझाव निहित हैं।

निष्कर्ष :

हमारा विश्लेषण निम्न और उच्च प्राथमिक स्तर के लिए शिक्षक-शिक्षा का ढाँचा सुझाता है। इसमें एक साल का कार्यक्रम होगा और उसमें एकलव्य/विद्या भवन/दिगन्तर प्रशिक्षकों द्वारा प्रचलित 2 से 3 सप्ताह की कार्यशालाएँ और तीन प्रमुख विषयों पर केन्द्रित 2 से 3 सत्र के कोर्स सम्बधी कार्य होंगे। इसके अलावा इसमें परामर्शी अभ्यास पर आधारित अल्पकालीन चिन्तनशील समीक्षाओं की शृंखला भी होगी जो शिक्षक के रूप में नियमित कार्य करने के साथ एक साल तक चलेगी। प्रारम्भिक शिक्षकों के लिए इस कोर्स में प्रवेश पाने के लिए स्नातक होना और माध्यमिक शिक्षकों के लिए स्नातकोत्तर अथवा उसके समकक्ष डिग्री प्राप्त होना आवश्यक होगा। दोनों ही स्थितियों में हर पाँच साल में पुनःप्रमाणीकरण अनिवार्य होगा जो सेवाकालीन शिक्षा और शिक्षण प्रदर्शन पर आधारित होगा।

'पाठ्यक्रम योजनाकारों और शिक्षक प्रशिक्षकों' के लिए हम सर्वथा अलग कार्यक्रम के ढाँचे का सुझाव देते हैं जो शिक्षाविद बनने में सहायक हो। इसे शिक्षक प्रशिक्षण के अगले या उच्च स्तर के रूप में नहीं बल्कि एक अलग रूप से संरचित कार्यक्रम के रूप में देखा जाना चाहिए जैसे आजकल के एम.एड. की शिक्षा है। इसी प्रकार हम नीति विश्लेषक/निर्माताओं के लिए एक अलग प्रकार से संरचित कार्यक्रम का सुझाव देते हैं जो 'अध्यापन कला' के मुद्दों पर 2-3 कार्यशालाओं के रूप में हो ताकि नीति विश्लेषक-निर्माताओं में इस बारे में पहले से ही जो गहन विशेषज्ञता है उसे पूरकता मिल सके।

शिक्षक कार्य-सम्बन्धित विकास कार्यक्रमों को डिजाइन करने में सहायता करने के लिए विश्लेषणात्मक रूपरेखा : एक कार्य-सम्बन्धित का चिन्तन (ज्ञान शाला)

कौशल क्रम संख्या	विद्यालयका प्रकार (नोट : प्रत्येक खाना प्रभाविता के लिए आवश्यक विशेषज्ञता का स्तर दर्शाता है (और कोष्ठक में वर्तमान में प्रचलित)	प्रशिक्षक शिक्षक	पाठ्यक्रम सामग्री योजनाकार	नीति निर्माता विश्लेषक	शिक्षाविद	शिक्षक								
						निम्न प्राथमिक			उच्च प्राथमिक			माध्यमिक		
						शासकीय	निम्न लागत निजी	मल्टी ग्रेड (ग्रामीण)	शासकीय	निम्न लागत निजी	मल्टी ग्रेड (शहरी)	निम्न लागत निजी	उच्च लागत निजी	अभिजात विद्यालय K 12
1	शिक्षा दर्शन	2(?)	3(?)	4(2)	5(3)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	2(?)
2	अधिगम के सिद्धान्त	02(?)	3(1)	4(?)	5(3)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	2 (?)
3	शिक्षा नीति की आलोचनात्मक/ ऐतिहासिक समीक्षा	2(?)	3(?)	4(1)	5(3)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	1(?)	2 (?)

4	शिक्षा दर्शन/ सिद्धान्तों से प्राप्त अध्यापन कला और कक्षा मानदण्ड	5(3)	5(3)	5(1)	5(4)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(2)
5	माध्यमिक स्तर का गणित और विज्ञान	NR	NR	NR	NR	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(2)	5(2)	5(2)
6	भाषा विज्ञान से निकली हुई भाषा अध्यापन कला	5(0)	5(0)	5(0)	5(1)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)
7	उच्च स्तरीय गणित - विज्ञान विशेषज्ञता	5(2)	5 (3)	NR	NR	NR	NR	NR	NR	NR	NR	4(1)	4(2)	5(3)
8	सामाजिक अध्ययन का ज्ञान/ अध्यापन कला	5(1)	5(1)	5(1)	5(2)	NR	NR	NR	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)
9	एकीकृत/ प्रॉजेक्ट विधि अधिगम	5(0)	5(0)	5(0)	5(1)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)
10	क्रमिक पाठ्यक्रम सामग्री का उपयोग कौशल	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	5(0)	5(0)	5(0)	NR	NR	5(0)	NR	NR	NR
11	मल्टी ग्रेड पाठ्यक्रम सामग्री+कौशल	5(1)	5(1)	5(1)	5(1)	NR	NR	5(1)	NR	NR	5(0)	NR	NR	NR
12	युक्ति संगतता की समझ	5(1)	5(1)	5(1)	5(2)	NR	NR	NR	NR	NR	NR	5(1)	5(1)	5(1)
13	अपने विषय विशेष में विशिष्टता	5	5	5	5	1(0)	1(0)	1(0)	2(0)	2(0)	2(0)	3(1)	3(1)	3(1)
14	अधिगम बनाम शिक्षण केन्द्रित विद्यालय	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(0)	5(2)	5(2)	5(2)
	नोट 1: 5 उच्च (स्नातकोत्तर स्तर) और 0 निम्न (उच्च विद्यालय स्तर) के कौशल विशेषज्ञता को दर्शाता है। नोट 2 :NR यानी Not relevant अर्थात प्रासंगिक नहीं है।													

आवश्यक क्षमता/कौशलों को बढ़ावा देने की वैकल्पिक विधियाँ

अ	कार्यशाला (गतिविधि आधारित, पूछताछ) विधि	4, 6, 8, 10, 11	तीन कार्यशालाएँ, 4 के लिए एक, 6 और 8 के लिए दूसरी तथा 10 और 11 के लिए तीसरी
ब	गहन पाठ्यक्रम कार्य विधि	5, 7, 8, 10, 11, 12	दो से तीन सत्र जिसमें से एक सत्र परामर्शी अभ्यास का हो।
स	सतत/समवर्ती प्रशिक्षण	5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12	क्रमिक और चरणबद्ध रूप से दोहराया जाने वाला
द	परामर्शी अभ्यास	सभी, 4-12	

शिक्षकों के लिए अनुशंसित कार्य-सम्बन्धित विकास कार्यक्रम

I	निम्न प्राथमिक शिक्षक	स्नातक+अ+ ब एक वर्ष के लिए, और (स+द) एक वर्ष के लिए
II	उच्च प्राथमिक शिक्षक	स्नातकोत्तर+अ+ब एक वर्ष के लिए, और (स+द) एक वर्ष के लिए
III	माध्यमिक शिक्षक	स्नातकोत्तर+अ+ब (5 में स्नातक स्तरीय गणित व विज्ञान)
IV	शिक्षक शिक्षक/पाठ्यक्रम योजनाकार	स्नातकोत्तर+दो वर्ष का पाठ्यक्रम कार्य 1-14, और साथ में एक सत्र का परामर्शी अभ्यास
V	नीति विश्लेषक/योजनाकार	अपने क्षेत्र की विशिष्ट विशेषज्ञता के पूरक के रूप में 4 और 6 में दो सप्ताह की कार्यशाला

पंकज जैन ने IIT (R) एवं IIMA में अध्ययन करने के बाद एक दशक से भी अधिक समय तक IRMA में संकाय के रूप में और कुछ पश्चिमी विद्यालयों में अतिथि विद्वान के रूप में कार्य किया था। सन 2000 में शिक्षा प्रोजेक्ट ज्ञान शाला शुरू करने से पहले उन्होंने विभिन्न एशियाई देशों में वरिष्ठ कार्यकारी और विकास प्रबन्धन सलाहकार के रूप में भी कार्य किया है। उनसे pjain2002@yahoo.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल **अनुवाद सम्पादन :** पंकज जैन

आचार्य से सेवा प्रदाता की भूमिका : एक अन्तहीन यात्रा

राजेश कुमार

हर युग में शिक्षकों और शिक्षा में उनकी केन्द्रीय भूमिका को मान्यता मिली है। लेकिन समय के साथ शिक्षकों की सामाजिक स्थिति और उनकी भूमिका में जो परिवर्तन आया है उस पर भी सहज ही ध्यान चला जाता है। पहले शिक्षकों को एक निर्विवाद गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था, जो यह जानते थे कि क्या पढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है; लेकिन यह स्थिति बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी है।[i] आज राज्य का आग्रह यह है कि शिक्षक की जवाबदेही के नाम पर शिक्षा में सार्वजनिक निवेश पर अधिकतम लाभ प्राप्त किया जाए जिसका इस्तेमाल शिक्षक की स्वायत्तता को धीरे-धीरे नष्ट करने के लिए किया गया है। राज्य ने शिक्षा की लागत का कुछ हिस्सा माता-पिता को सौंप दिया है और वे इस हद तक सशक्त हो गए हैं कि *'ग्राहक सन्तुष्टि'* जैसे वाक्यांश उपयोग में लाए जाने लगे हैं। नियमित शिक्षक के लिए लागू नियमों और शर्तों पर पैरा-शिक्षकों की नियुक्ति करके, राज्यों ने शिक्षकों के बीच सहानुभूति को नष्ट करने और असुरक्षा की भावना पैदा करने में सफलता पाई है, जिसके कारण उन्हें हतोत्साहित होकर आत्मसमर्पण करना पड़ता है और बिना किसी शर्त के हर आज्ञा माननी पड़ती है। इस वजह से हमारी शिक्षा प्रणाली, विद्यार्थियों और माता-पिता के मन में शिक्षण और शिक्षक की भूमिका के बारे में भी परिवर्तन आया है। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि हम शिक्षकों के बारे में अपनी समझ पर पुनर्विचार करें।

आज हम एक ऐसे समय में रह रहे हैं जब हमारे नागरिक और सांस्कृतिक संस्थान घेराबन्दी में हैं और अमीर-गरीब के बीच का अन्तर बढ़ रहा है तथा इसके लिए शिक्षकों को दोषी ठहराया जा रहा है। अधिकांश विधायिकाएँ, जो लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में नाकाम रही हैं, शिक्षण और शिक्षकों पर ध्यान केन्द्रित कर रही हैं। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण विधियों, मूल्यांकन योजना, शिक्षक-शिक्षा आदि के नाम पर विभिन्न तरीकों और साधनों को *'अधिक जिम्मेदार और जवाबदेह'* बनाने की कोशिश की जा रही है।

इस सन्दर्भ में यह जानना उचित होगा कि ये शिक्षक कौन हैं, समाज में इनकी हैसियत क्या है, उनकी भूमिका क्या है या उनसे किस प्रकार की भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है। इन सवालों के विभिन्न जवाब मिलते हैं और कई नए सवाल भी सामने आते हैं जो इस बात का संकेत हैं कि शिक्षकों के बारे में हमारी बहुमुखी प्रणाली और सर्व साधारण की अवधारणा क्या है और समाज में उनकी भूमिका को किस तरह से देखा जाता है। व्यक्ति या समूह, विशेष सन्दर्भों में अपनी पसन्दीदा धारणा का उपयोग करते हैं। किसी शिक्षक के प्रयासों की कारणात्मक समझ ही शायद वह प्रेरक शक्ति है जो इस सारी समझ की जड़ में है। जिसके तहत यह मान लिया जाता है कि विद्यालय के स्नातक जो कुछ करते हैं या नहीं करते हैं उसका कारण यह है कि शिक्षक वैसा करते हैं या नहीं करते हैं।

शिक्षकों और उनकी भूमिकाओं की बहुमुखी प्रणालीगत और सार्वजनिक छवि को उन रूपकों के लेंस के माध्यम से भी देखा जा सकता है जो शिक्षण और शिक्षकों के लिए इस्तेमाल किए गए हैं। इस प्रकार के वाक्यांश कि - माली के रूप में शिक्षक[ii]; मुक्तिदाता के रूप में शिक्षक[iii]; माता-पिता के रूप में शिक्षक[iv]; अनुप्रयुक्त वैज्ञानिक के रूप में शिक्षक[v]; चिकित्सक के रूप में शिक्षक[vi] आदि दूरस्थ शिक्षण के द्योतक हैं और शिक्षक सार्वजनिक धारणा के मामले में आगे बढ़े हैं। हाल ही में इनके साथ कुछ और वाक्यांश भी जुड़ गए हैं जैसे चिन्तनशील अभ्यासी रूप में शिक्षक और एक पेशेवर रूप में शिक्षक आदि जिनका सामना भी करना पड़ता है। इन सबकी वजह से यह सवाल पूछना ही पड़ता है कि : ये शिक्षक कौन हैं? ये क्या करते हैं? जिन *'रूपकों से हम सहमत हैं और जिनका हम अनुसरण करते हैं'* वे बड़े व्यवस्थित और अनजाने तरीके से अपने और अन्य लोगों के सम्बन्ध में हमारी सोच, समझ-बूझ और आचरण का निर्माण करते हैं।[vii] आधुनिक समाज की बदली हुई वास्तविकताओं और उसके फलस्वरूप उत्पन्न सरोकारों के साथ ही शिक्षा से की जाने वाली अपेक्षाएँ भी बदल गई हैं जैसा कि उपर्युक्त रूपकों की शृंखला से स्पष्ट होता है। इस परिवर्तन को समझने के लिए हमें आँकड़ों/आधार के रूपक का प्रयोग करना होगा; क्योंकि किसी ऐसे ठोस आधार के बिना परिवर्तन की अवधारणा खोखली हो जाती है जिसके लिए हमें परिवर्तन को समझना है।[viii]

शिक्षकों की भूमिकाओं और स्थिति और उसमें हुए परिवर्तनों को समझना मुश्किल हो सकता है क्योंकि ऐसा करने के कई दृष्टिकोण हैं जैसे शिक्षकों के बारे में सामान्य धारणाएँ, या शिक्षा प्रणाली की धारणाएँ कि शिक्षक कौन हैं और उन्हें क्या करना चाहिए, या शिक्षाविदों - दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों आदि - के शिक्षण और शिक्षकों के बारे में विचार। इसके अलावा शिक्षकों

की अपनी खुद की बदलती हुई छवि और स्थान भी है। ऐसे में अगर इन सभी आयामों को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों की भूमिका तथा स्थान सम्बन्धी धारणा में हुए परिवर्तनों को समझने का कोई भी प्रयास किया जाए तो वह सफल नहीं हो पाएगा और अगर सुविधा और व्यवहार्यता के लिए केवल एक ही आयाम पर ध्यान देकर अन्य को अनदेखा कर दिया जाए तो इस स्थिति के लिए मेरे मन में सात दृष्टिहीन व्यक्ति और हाथी की कहानी आती है। यहाँ जो प्रयास किया गया है उसे इन दोनों तरीकों के बीच समझौते के रूप में देखा जा सकता है - सब पर विचार करना बनाम सबकी उपेक्षा करना सिवाय एक के - जहाँ शिक्षक की स्थिति पर फोकस है और एक या अधिक आयामों से होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है। आज 'शिक्षक' शब्द का जो भी मतलब है और वह जो भी संकेतित करता है, उसे उन परिवर्तनों के संचयी परिणाम के रूप में समझा जाना चाहिए जिन्हें हम ऊपर उल्लिखित विभिन्न लेंसों के माध्यम से देख सकते हैं। इस लेख में बदलती हुई प्रणालीगत और सार्वजनिक छवि और उसके परिणामस्वरूप शिक्षण और शिक्षकों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए गुरु (आचार्य), कार्यनिर्वाहक, पेशेवर और विक्रेता (सेवा प्रदाता)[xi] के चतुर्भुजी ढाँचे का प्रयोग किया गया है जिसमें पहला *'आधार रूपक'* का कार्य करता है।

आज भारत में शिक्षकों को सदियों पुराने गुरुओं (आचार्य) का वंशज नहीं कहा जा सकता, लेकिन शिक्षकों की चर्चा, सार्वजनिक वार्ता और सामाजिक अपेक्षाओं में इस पुरानी भावुक याद को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस सबका प्रभाव तब देखने में आता है जब अधिकारीगण शिक्षकों की भूमिका और स्थान की तो सराहना करते हैं पर मौजूदा शिक्षक समूह को कमतर बताते हैं। आजकल के शिक्षक और उनका शिक्षण कभी भी गुरुओं का स्थान नहीं पा सकता। क्योंकि उनमें न तो गुरुओं जैसा ज्ञान और आध्यात्मिक/प्रेरक गुण हैं, और न ही समाज और शिक्षा प्रणाली बच्चों और उनकी शिक्षा को पूरी तरह से शिक्षकों पर छोड़ने के लिए तैयार है जैसा कि प्राचीन काल में होता था कि जब शिष्य समाज से दूर रहकर अपनी शिक्षा की पूरी अवधि गुरु के साथ ही बिताते थे (ब्रह्मचर्य)। पर आज शिक्षक की ऐसी स्थिति न तो अस्तित्व में है और न ही ऐसा करना सम्भव है। इससे सिर्फ यह होता है कि शिक्षक अपने आप को दोषी महसूस करने लगते हैं कि वे अपने पेशे को नीचा दिखा रहे हैं जो कुछ हद तक पश्चिमी परम्परा के दृष्टिकोण की तरह है जो शिक्षण को एक पेशे के रूप में, एक आह्वान के रूप में देखता है। शिक्षकों द्वारा इस आह्वान के जवाब को ईश्वर का आह्वान, समाज का आह्वान और उनकी अपनी अन्तर-आत्मा का आह्वान समझा जा सकता है। *"पेशे की भावना का मतलब है दृढ़ संकल्प, साहस और लचीलापन, ये ऐसे गुण हैं जो शिक्षण को मात्र पेशे से कुछ अधिक मानते हैं और जिसमें हम कोई महत्वपूर्ण वस्तु अर्पित कर रहे होते हैं।"*[x]

ब्रिटिशकालीन भारत में शिक्षा राज्य का कार्य बन गई। यहाँ तक कि निजी स्कूलों को भी राज्य से मान्यता प्राप्त करनी पड़ी। स्कूल की व्यवस्था और पाठ्यपुस्तकें निर्धारित कर दी गईं जिनका पालन स्कूलों और शिक्षकों को बड़ी कड़ाई के साथ करना पड़ा। स्कूलों में जो काम होने चाहिए उन्हें सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षकगण अक्सर स्कूलों का दौरा करते और उन्हें इस बात के लिए सन्तुष्ट करना जरूरी था कि सारे काम योजनानुसार चल रहे हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि गुरु के रूप में शिक्षकों को जो स्वायत्तता प्राप्त थी, वह धीरे-धीरे कम होने लगी और उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण में बदलाव आया क्योंकि अब वे आदरणीय, आत्म-संचालित ज्ञान-पिपासु और ज्ञान प्रदाता नहीं रहे। जो लोग शिक्षक की नौकरी कर रहे थे वे शायद ऐसा सिर्फ इसलिए कर रहे थे क्योंकि उन्हें इससे बेहतर कुछ और नहीं मिला। शिक्षकों को इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं निरीक्षक से बुरी रिपोर्ट न मिल जाए और कहीं उनकी नौकरी न चली जाए। इसलिए वे निर्देशों के सच्चे पालनकर्ता बन गए क्योंकि निरीक्षक इस बात पर जोर देते थे कि इन निर्देशों का अक्षरशः और अंतरात्मा से पालन किया जाए।

आजादी के बाद शिक्षकों की कार्यनिर्वाहक वाली स्थिति और अधिक दृढ़ हो गई क्योंकि राज्य अपनी खुद की कार्यसूची या एजेंडा को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षकों पर निर्भर करता है और उन्हें नियमित रूप से जिम्मेदारियाँ सौंपता रहता है। क्षेत्रों, भाषाओं आदि के नाम पर राष्ट्र निर्माण के कार्य को शिक्षकों का स्वाभाविक उत्तरदायित्व मानकर उन्हें ही सौंप दिया गया। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण कार्य में शिक्षण समुदाय की प्रामाणिक और सार्थक भागीदारी की कमी है जिससे इस बात की पुष्टि हुई कि शिक्षक ऐसे कार्यनिर्वाहक बनकर रह गए हैं जिन्हें शिक्षा तन्त्र की इच्छाओं और आदेशों को पूरा करना है। इस तरह की प्रथाओं पर आर.टी.ई. 2009 द्वारा लगाए गए स्पष्ट प्रतिबन्धों के बावजूद आज भी इस तरह की बातें परोक्ष और अपरोक्ष रूप से चल रही हैं।

शिक्षा सम्बन्धी मुद्दों की जटिलता ने सुकरात और प्लेटो जैसे दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया और 20वीं सदी में विश्लेषणात्मक दार्शनिकों ने अस्पष्टता से बचने के लिए[xi] इन तरीकों का इस्तेमाल किया जैसे विचारों का संकल्पनात्मक रूप से विश्लेषण करने की दार्शनिक प्रथाओं को अपनाना, तर्कों का ध्यानपूर्वक मूल्यांकन करना और सूक्ष्म विशिष्टताओं को सामने लाना ताकि शिक्षण और शिक्षकों की पेशेवर स्थिति प्रतिपादित हो सके।[xii]

स्वतंत्रता के बाद से लगातार हमारी नीति और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम दस्तावेजों में शिक्षण और शिक्षकों के महत्व को समझने की बात कही गई है। 1948 से ही नीति निर्माता इस तथ्य को लेकर सचेत थे कि 'इस देश के लोगों को यह बात जरा देर में समझ आई है कि शिक्षा एक पेशा है जिसके लिए किसी भी अन्य पेशे की तरह गहन तैयारी आवश्यक है,'[xiii] और जैसा कि हाल ही में यानी 2010 में साफ शब्दों में कहा गया कि -'शिक्षण एक पेशा है और शिक्षक-शिक्षा शिक्षकों की पेशेवर तैयारी की प्रक्रिया है।'[xiv] इन दोनों कथनों के बीच पचास वर्षों से भी अधिक का समय अन्तराल है और ये हमें बताते हैं कि नीतिगत इरादों का क्या हुआ। एक तरफ तो शिक्षकों से राज्य के सभी प्रकार कार्य करवाकर उनकी कार्यनिर्वाहक वाली भूमिका को बरकरार रखा गया है और दूसरी तरफ निर्णय लेने में उनकी भागीदारी वाले कार्यों को - फिर चाहे वह नीति निर्माण हो, पाठ्यक्रम विकास हो और या स्कूल से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण मामले हों - जितना हो सके उतना न्यूनतम महत्व दिया गया है। ये दोनों बातें शिक्षकों को पेशेवर दर्जा दिलाने के प्रतिकूल हैं जबकि नीति के दस्तावेजों में उन्हें पेशेवर दर्जा दिलाने इच्छा प्रकट की गई है।

जब शिक्षकों के लिए 'पेशेवर' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसमें शिक्षण और शिक्षक सम्बन्धी कई आवश्यक शर्तें और विशेषताएँ आ जाती हैं जैसे ज्ञान का सुव्यवस्थित भण्डार, शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों का समुदाय, सुनियोजित तैयारी आदि। इसका यह मतलब भी है कि शिक्षक एक महत्वपूर्ण सामाजिक सेवा प्रदान करते हैं और जिन युवाओं को वे पढ़ाते हैं उनके जीवन पर अधिकार भी रखते हैं। किन्तु *"वही व्यवस्थितता जो हमें किसी एक अवधारणा के सन्दर्भ में किसी अन्य अवधारणा के एक पहलू को समझने में सहायता देती है, अवधारणा के अन्य पहलुओं को अवश्य छिपाएगी।"*[iv] शिक्षकों के लिए 'पेशेवर' शब्द का प्रयोग करने से शिक्षण कार्य की जो अप्रत्याशित प्रकृति है वह छिप जाती है क्योंकि शिक्षण में जाहिरा तौर पर समान तरह के मुद्दों से निपटने के लिए भिन्न तरीकों का प्रयोग करना पड़ता है। शिक्षण की इस अप्रत्याशित प्रकृति के प्रमुख कारणों में से एक है इससे सम्बद्ध ज्ञान - इसमें उस विषय का ज्ञान तो शामिल है ही जिसे पढ़ाया/सीखा जा रहा है, पर उसके साथ में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि का ज्ञान भी आवश्यक है। ज्ञान के ये क्षेत्र विशेष ज्ञान के अत्यन्त चुनौतीपूर्ण क्षेत्र हैं जिनमें शिक्षक ज्ञान का निर्माता बनने का दावा नहीं कर सकते; वे तो केवल उस क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा बताए और प्रतिपादित ज्ञान को प्रयोग में ला सकते हैं। इस प्रकार एक पेशेवर के रूप में शिक्षक का संकल्पनात्मक रूपक *" इन बातों को छिपा देता है कि शिक्षण में एक निरन्तर सम्बन्ध का भाव होता है जिसके केन्द्र में एक युवा का व्यक्तिगत विकास है, शिक्षण में बहुमुखी जवाबदेही सम्बन्ध निहित है और शिक्षण के ज्ञानाधार की प्रकृति सार्वजनिक होती है।"*[xvi] इस रूपक की अपनी सीमाएँ हैं लेकिन फिर भी अनेक शिक्षाविदों और इस क्षेत्र में कार्यरत लोगों ने इसके प्रयोग पर जोर दिया है। सम्भवतः इसलिए कि यह आलंकारिक भाषा साधन है और जिसके बारे में यह माना जाता है कि इसके प्रयोग से शिक्षक सक्षम और सशक्त बनेंगे।

शिक्षकों के बारे में एक धारणा और भी है और वह है एक विक्रेता की और उसे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखा जाता है जो वेतन के बदले अपनी सेवाएँ प्रदान करता है। हालाँकि शिक्षकों का कार्य अन्य सेवा प्रदाताओं के कार्य से बहुत अलग है। सेवा प्रदाताओं को पता होता है कि उनके ग्राहक कौन हैं लेकिन शिक्षण कार्य में ऐसा नहीं है; उनके ग्राहक कौन हैं - बच्चे, माता-पिता, राज्य, उन्हें नौकरी देने वाले, या पूरा समाज - क्योंकि ये सभी किसी न किसी मायने में हितधारक हैं। इस प्रकार के परस्पर विरोधी हितों वाले अनेक ग्राहकों के कारण अक्सर शिक्षक के लिए यह तय कर पाना कठिन हो जाता है कि शिक्षण के कार्य में कैसे आगे बढ़ना है। बच्चों में अपनी अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर पाने की न तो समझ है और न ही स्वतंत्रता; हालाँकि बच्चों के हित एक सूचक का काम कर सकते हैं। इसके अलावा ग्राहक और सेवा प्रदाता के बीच सहमति का जो मौलिक सिद्धान्त है उसे ध्यान में रखते हुए बच्चे को ग्राहक के रूप में देखना ठीक नहीं है क्योंकि बच्चे अपनी सहमति नहीं दे सकते। बच्चे और माता-पिता के बीच शक्ति सम्बन्ध हमेशा माता-पिता के पक्ष में ही होता है। यद्यपि राज्य ने शिक्षा की लागत आंशिक रूप से माता-पिता को सौंप दी है, फिर भी वित्तीय प्रबन्धन उसके हाथ में ही होने के कारण शिक्षा और शिक्षकों पर उसी का दबदबा बना हुआ है। लेकिन चूँकि माता-पिता भी अपने बच्चे की शिक्षा के खर्चे को साझा कर रहे हैं, इसलिए इस बारे में उनकी माँग बढ़ती जा रही है कि शिक्षक को क्या करना चाहिए और क्या नहीं। नियोक्ता शिक्षण पर बहुत सूक्ष्म लेकिन तीक्ष्ण प्रभाव डाल रहे हैं क्योंकि वे ही तो अपने शिक्षार्थियों को नौकरी दे रहे हैं- *'शिक्षा के कौशलीकरण'* पर जो जोर दिया जा रहा है उसे इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। हम शिक्षकों की दुर्दशा को आसानी से समझ सकते हैं - अलग-अलग दिशाओं से होने वाली खींचातानी और दबाव के द्वारा उनकी धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं और साथ में शिक्षा और शिक्षण सम्बन्धी उनकी अपनी समझ से दुविधाएँ और बढ़ जाती हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज शिक्षक को कोई नाम देना मुश्किल है। सबसे पहले तो उनके पास समाज का वह विश्वास नहीं है जो गुरु के लिए आवश्यक है। दूसरे, माता-पिता इतनी ज्यादा माँगें कर रहे हैं कि वे कार्यनिर्वाहक नहीं हो सकते। तीसरे, पेशेवर होने के लिए जितना समय, संसाधन और स्वायत्तता आवश्यक है, वह शिक्षकों को नहीं मिलती। चौथे, हितधारकों की बहुलता और उनके हितों की असंगति के कारण वे सेवा प्रदाता भी

नहीं हो सकते। अगर शिक्षकों को कार्यकुशल और प्रभावी होना है तो इस अस्पष्टता को स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि शिक्षक कौन हैं और उनका काम क्या है।

References

i Lortie, D. (1975). Schoolteacher. Chicago: University of Chicago Press.

ii Rabelais, F. (1553–1564/1991). Gargantua and Pantagruel. Raffel, B. (translated). New York: Norton & Company.

iii Rousseau, J. (1762/1979). Emile: Or On Education. Bloom, A. (translated). New York: Basic Books.

iv Neill, A. S. (1960). Summerhill: A Radical Approach to Childrearing. New York: Hart.

v Piaget, J. (1969). Psychology and Pedagogy. Paris: Gontheir.

vi Rogers, C. (1969). Freedom to Learn: A View of What Education Might Become. Ohio: Charles Merill.

vii Lakoff, G. and Johnson, M. (2003). Metaphors We Live By. Chicago: University of Chicago Press.

viii Donnelly, J. F. (2006). Continuity, Stability and Community in Teaching. In Educational Philosophy and Theory. Vol. 38:3.

ix Kale, Pratima (1970). The Guru and the Professional: The Dilemma of the Secondary School Teacher in Poona, India. In *Comparative Education Review. Vol. 40: 3.* 1970.

x Hansen, David T. (1994). Teaching and the Sense of Vocation. *In Educational Theory. Vol. 44: 3.*

xi Phillips, D.C. and Siegel, Harvey (2015). Philosophy of Education. In *The Stanford Encyclopedia of Philosophy*. Edward N. Zalta (ed.). http://plato.stanford.edu/archives/win2015/entries/education-philosophy/.

xii Calderhead, James (1994). Teaching as a Professional Activity. In Bourne, Jill & Pollard, Andrew (eds.). *Teaching and Learning in the Primary School.* London: Routledge.

xiii The Report of the University Education Commission, 1948-49. Chapter VII: C. Ministry of Education. Government of India, 1962. p. 183.

xiv National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE) (2010). New Delhi: NCTE. p. 15

xv Lakoff, G. and Johnson M. (2003). op. cit. p. 10.

xvi Maxwell, Bruce (2015). 'Teacher as Professional' as Metaphor: What it Highlights and What it Hides. *In Journal of Philosophy of Education. Vol. 49:1. p. 101.*

राजेश कुमार जयपुर में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की राजस्थान स्टेट इंस्टीट्यूट टीम के सदस्य हैं। उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में 25 वर्ष से अधिक का अनुभव है। फाउण्डेशन में आने से पहले वे जयपुर के दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति के द एकेडेमिक रिसोर्स यूनिट (TARU) में कार्यकारी निदेशक के रूप में कार्यरत थे। उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न सरकारी कॉलेजों में लगभग 20 वर्ष और यमन गणराज्य के साना विश्वविद्यालय में अँग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्यापन किया। उन्होंने स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों कोर्स पढ़ाए तथा स्नातकोत्तर व डॉक्टरेट शोध प्रबन्धों का पर्यवेक्षण किया। उनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, बिहार से अँग्रेजी में स्नातकोत्तर (भाषा विज्ञान में विशेषज्ञता के साथ) डिग्री और अँग्रेजी भाषा शिक्षण में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। उनसे rajesh.kumar1@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

खण्ड ख

कार्यक्षेत्र से

मैं बहुत कुछ करना चाहता हूँ !

कालू राम शर्मा

अक्सर शिक्षकों के बारे में जब बातचीत होती है तो उनके बारे में निराशाजनक व नकारात्मक तस्वीर पेश की जाती है। शिक्षक स्कूलों में पढ़ाते नहीं, शिक्षक मक्कार होते हैं। कुल मिलाकर शिक्षकों को हमारा शैक्षिक तंत्र शक की नजर से देखता है। मगर इस मामले में मेरे अनुभव कुछ और ही कहानी बयां करते हैं। पिछले तकरीबन दो सालों से मैं खरगोन जिले के कुछ स्कूलों में जाता रहा हूँ। स्कूलों में जाने की वजह मात्र यह रही कि मैं यहाँ के हालातों को समझ सकूँ कि कक्षाओं में किस प्रकार का शिक्षण कार्य होता है। साथ ही यह भी समझ सकूँ कि जो नकारात्मक छवि शिक्षकों की बनी है उसमें क्या सच्चाई है।

आगे कुछ कहूँ इसके पहले यह बता देना लाजमी होगा कि मैं जिन-जिन स्कूलों में गया वहाँ के शिक्षकों को मैं जानता भी नहीं था, न ही उन स्कूलों के प्रधानध्यापकों या शिक्षकों को मेरे पहुँचने की पूर्व जानकारी थी।

उल्लेखनीय है कि आजादी के बाद से अब तक जितने भी आयोग और नीतियाँ बनी उनमें शिक्षकों की शैक्षिक उत्थान की अनुशसाएँ की जाती रहीं। बावजूद इसके शिक्षकों की पेशेवर तैयारियों की अनुशंसाओं को हम ठीक से अमल में नहीं ला सके। इसके साथ ही शिक्षकों का सामाजिक रूतबा भी धीरे-धीरे कम होता गया। मगर फिर भी हमारे आसपास ऐसे शिक्षक मिल ही जाएँगे जो अपने शैक्षिक कार्य को बखूबी करते हैं। ये ऐसे शिक्षक कहे जा सकते हैं जो हमें भरोसा दिलाते हैं कि सरकारी स्कूलों में शैक्षिक परिवर्तन की लहर को वे ही ला सकते हैं। और वे इसके लिए प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं।

यहाँ कुछ स्कूलों और वहाँ शिक्षकों के कक्षा शिक्षण को लेकर किए गए कार्य का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत है :

खरगोन जिले के आदिवासी स्कूल में जब मैं पहुँचा तो शिक्षिका बच्चों से घिरी हुई थी। शिक्षिका के आसपास बैठे हुए बच्चे कहानियों की किताबों को पढ़ने के उपक्रम में लगे हुए थे। जी हाँ, ये बच्चे तीसरी-चौथी के बच्चे हैं। इस स्कूल मे जो बच्चे आ रहे हैं वे पास की पहाड़ी पर बसे फाल्या में निवास करते हैं। शिक्षिका में खासा उत्साह है। शिक्षिका ने हम अनजान लोगों को देख तो लिया पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। शिक्षिका बच्चों के साथ तल्लीनता के साथ जुटी हुई थी। बच्चे कहानियों को पढ़ रहे थे और जहाँ पर अटकते शिक्षिका से पूछ लेते। शिक्षिका बच्चों की मदद करती। शिक्षिका की नजरें चौकस थी कि अगर कोई बच्चा पूछने में झिझके और अगर उसे कोई समस्या आ रही हो तो वह उसको समझाती और उसकी समस्या को हल करने में मदद करती।

लगभग एक घण्टा उस कक्षा में बिताया। जब कक्षा की छुट्टी हुई तो शिक्षिका से हमने बातचीत की। शिक्षिका ने बताया कि वह बच्चों को पढ़ना सिखा रही है। वे बोलीं कि अगर बच्चों को पढ़ना सिखाना है तो उन्हें पढ़ने की प्रक्रिया से गुजरना होगा। इसलिए मैं उन्हें कहानी की किताबें पढ़ने को देती हूँ। मैं उनके इस अनूठे शिक्षण को देख अचरज करने लगा। मैंने प्रश्न किया कि शुरुआती कक्षाओं में हमारे अधिकांश स्कूलों में बच्चों को वर्णमाला और बारहखड़ी रटवाई जाती है। आप अगर बच्चों को वर्णमाला और बारहखड़ी नहीं पढ़ाएँगी तो वे पढ़ना कैसे सीख पाएँगे। शिक्षिका ने जवाब प्रश्न के रूप में दिया, "वर्णमाला और बारहखड़ी से बच्चे पढ़ना कैसे सीख पाएँगें?"

मैं शिक्षिका की यह बात सुनकर अचरज करने लगा और सोच में डूब गया। वास्तव में जब हम पढ़ते हैं तो अर्थ का निर्माण करते हैं इस दौरान। वैसे बच्चा जन्म के बाद जो कुछ बोलना प्रारम्भ करता है वह भी कुछ अर्थ लिए होता है। वर्णमाला और बारहखड़ी की जो प्रक्रिया प्राथमिक कक्षाओं में अपनाई जाती है वह तो अर्थहीन है। और भाषा के सन्दर्भ में यह भी जानते हैं कि हर बच्चे में भाषायी क्षमता कूट-कूट कर भरी होती है।

बहरहाल उस कक्षा में मैंने यह भी देखा कि शिक्षिका बीच-बीच में बच्चों से बातचीत करती और बच्चों को आपस में भी बातचीत करने के मौके देती। शिक्षिका बच्चों को अपने तयशुदा अन्दाज में बातचीत करने के मौके देती।

यह सही है कि पढ़ने और लिखने के साथ ही भाषा शिक्षण में बातचीत का काफी महत्व है। बातचीत विचारों को व्यक्त करने का सशक्त जरिया है। इस लिहाज से शुरुआती कक्षाओं में बच्चों को बातचीत करने के भरपूर मौके देने चाहिए।

मैं इसी स्कूल में दोबारा-तिबारा गया। मैं सुबह 10 बजे स्कूल पहुँच गया। स्कूल में शिक्षक-शिक्षिकाएँ तो पहुँच चुके थे मगर बच्चों की संख्या नगण्य है। एक शिक्षक ने दूसरे शिक्षक से बातचीत की ओर मोटर साईकिल उठाकर चल दिए। जब मैंने उनसे पूछा कि वे कहाँ जा रहे हैं, इस पर वे बोले कि आप भी मेरे साथ चलिए। बिना कोई

प्रश्न किए उनकी मोटर साईकिल के पीछे बैठकर चल दिया। दरअसल वे पास की उस पहाड़ी पर गए थे जहाँ के फाल्या से बच्चे स्कूल आते हैं। मोटर साइकिल टिकाकर घर-घर गए और बच्चों को स्कूल आने को प्रेरित करने लगे। कुछ पालकों से बातचीत की। उन्हें कहा कि बच्चों को स्कूल भेजो। शिक्षक को यह पता था कि कौन बच्चे लम्बे समय से स्कूल नहीं आ रहे हैं, उनके पालकों को प्यारी हिदायतें दी।

अब क्या था बच्चे अपने बस्ते लेकर स्कूल के लिए रवाना हो गए। बच्चे आगे-आगे और शिक्षक मोटर साईकिल के साथ पीछे-पीछे। शिक्षक ने बताया कि हफ्ते में एक-दो बार हम समुदाय के बीच बच्चों को लेने पहुँच जाते हैं।

बच्चों को स्कूल में लाने की यह प्रक्रिया जमी। वास्तव में जिन स्कूलों में बच्चे नियमित नहीं आ पाते उनके लिए यह प्रयास एक सबक हो सकता है। इस पूरे मामले मे यह बताना लाजमी होगा कि इस प्रकार का कोई आदेश शिक्षा विभाग की ओर से प्रसारित नहीं हुआ है कि शिक्षक बस्तियों-मोहल्लो में बच्चों को स्कूल में लाने के लिए जाएँ।

एक अन्य स्कूल में मुझे जाने का मौका मिला। एक स्कूल के केन्द्र में बच्चा होता है, मगर उस स्कूल की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने की भूमिका के केन्द्र में शिक्षक होता है। एक शिक्षक से मुझे मिलने का अवसर मिला। इस शिक्षक ने अपनी स्कूल की काया-पलट ही कर डाली। शिक्षक ने अपने स्कूल का कैम्पस इतना सुन्दर और खुशनुमा बना डाला कि यकीन नहीं होता कि यह सरकारी स्कूल होगा। कैम्पस पर नजर दौड़ाएँ तो तरह-तरह के पेड़-पौधे उनकी सिंचाई की व्यवस्था, मखमली दूब और बच्चों के खेलने की जगह। बच्चों के लिए खासकर बच्चियों के लिए शौचालय और पीने के पानी की व्यवस्था।

शिक्षक बताते हैं कि इस स्कूल कैम्पस में झाड़-झंकाड़ थे, जिनकी सफाई पहाड़ जैसा काम था। इन शिक्षक ने दिन-रात मेहनत करके कैम्पस को सुधारा और इसे हरा-भरा बना दिया। इतना ही नहीं शिक्षक ने अपनी स्कूल में एक प्रयोगशाला की स्थापना की जहाँ माध्यमिक एवं हाई स्कूल स्तर के विज्ञान विषय की तमाम थीम्स पर प्रयोग किए जा सकते हैं।

शिक्षक ने अपने स्तर पर वैकल्पिक शिक्षण सामग्री एवं पत्रिकाओं का संकलन किया जो नियमित रूप से छात्राओं को पढ़ने को दी जाती है। शिक्षक निरन्तर रूप से स्कूल को बेहतर बनाने की दिशा में प्रयासरत हैं। वे इस धारणा के विपरीत काम करते हैं कि सरकारी स्कूलों का माहौल बदल नहीं सकता। वे मानते हैं कि शिक्षक अगर चाहे तो शिक्षा का कोई भी कार्य असम्भव नहीं।

कालू राम शर्मा, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत हैं। इससे पहले उन्होंने लगभग 20 साल तक मध्य प्रदेश में एकलव्य संस्था के साथ काम किया है। वे उदयपुर, राजस्थान में विद्याभवन सोसायटी में भी कार्यरत रहे हैं। वे शैक्षिक विषयों पर नियमित रूप से लिखते रहते हैं। उन्होंने एन.सी.ई.आर.टी. तथा नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए भी किताबें लिखी हैं। उनसे kr.sharma@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

यदि हमारी मंजिल शिक्षकों की मुक्ति है तो वहाँ तक पहुँचने का एक प्रमुख मार्ग मननशील अभ्यास है

एक शिक्षा कार्यकर्ता के व्यक्तिगत अनुभवों की अन्तर्दृष्टि

कुलदीप गर्ग

समस्या

शिक्षकों के किसी भी प्रकार के व्यावसायिक विकास के लिए उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के विभिन्न चरणों में निरन्तर सहायता[1] की आवश्यकता होती है, लेकिन भारत में आज हम यह देखते हैं कि इस प्रकार की सहायता की उपलब्धता और गुणवत्ता दोनों ही निराशाजनक हैं। एक और दिलचस्प पहलू यह है कि जहाँ कहीं इस तरह की अच्छी और नियत समय की सहायता मिलती भी है तो दो बातें देखने को मिलती हैं। पहली तो यह कि लगभग पाँच साल बाद इसकी प्रभावशीलता गतिहीन हो जाती है और दूसरी यह कि जब वह परियोजना समाप्त हो जाती है तो नई पहलों और अभ्यासों में काफी गिरावट आ जाती है और फिर धीरे-धीरे वे लुप्त हो जाती हैं। इसलिए बाहरी सहायता न तो लम्बी अवधि तक काम करती है और न ही अपनी पहल और नए बदलावों को बनाए रख पाती है। कम से कम मेरे पिछले एक दशक (2005 से 2012 तक) का अनुभव तो यही बताता है जिसके दौरान (दिगन्तर[2] में विभिन्न टीमों के साथ कार्य करते हुए) मैंने विभिन्न परियोजनाओं, जैसे शिक्षा समर्थन परियोजना, फागी और गुणवत्ता शिक्षा कार्यक्रम, बारां में कार्य किया।

इन अवलोकनों से यही सवाल उभरकर सामने आता है कि क्या बाहरी सहायता स्थायी शैक्षिक परिवर्तन को बढ़ावा दे सकती है?

हमारे पास इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं है। लेकिन लगता तो यही है कि बाहरी सहायता के बन्द होने के बाद धीरे-धीरे वे सब प्रभाव और बदलाव भी समाप्त हो जाते हैं जो इस प्रकार की सहायता के चलते हासिल किए जाते हैं।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हमें इनके बारे में सोचना या इनका कार्यान्वयन बन्द कर देना चाहिए-ऐसा करना आत्मघाती होगा। लोकतांत्रिक देश में एक जीवन्त और स्वस्थ शिक्षा प्रणाली के लिए स्वयंसेवी संगठनों, माता-पिता के संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, शिक्षक संघों, शोध समूहों और सांस्कृतिक समूहों की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है। लोकतांत्रिक देश में बाहरी सहायता और हस्तक्षेप एक महत्वपूर्ण और तर्कसंगत आवश्यकता है ताकि शैक्षिक नीतियों और अभ्यासों के विकास पर पैनी नजर रखी जा सके और जब कभी भी वे अपने बुनियादी मूल्यों - यानी लोकतंत्र के पुनरुत्पादन और उसे बनाए रखने के मूल्यों - से हटें तो आवाज उठाई जा सके।

इसलिए बाहरी सहायता के बारे में सोचना उचित ही है लेकिन उसका अन्दाज अलग होना चाहिए, उसके उद्देश्य अलग होने चाहिए जो ऐसी स्थितियों के निर्माण पर ध्यान दें जिनमें शिक्षक और हितधारक स्वयं आगे बढ़कर अपने सीखने या अपनी व्यावसायिक जरूरतों और अपने विकास की जिम्मेदारी खुद उठाएँ। वे स्वयं पता लगाएँ कि उनकी समस्या क्या है, उन्हें किस क्षेत्र में विकास करना है; उसका समाधान क्या हो सकता है और फिर उसे लागू भी करें। बाहरी सहायता पर पूरी तरह से निर्भर होने और अन्त में परिणामों के प्रति जवाबदेह न होने की तुलना में यह प्रक्रिया स्वयं-चालित होगी और इसलिए स्वपोषी भी होगी। इसका विकास और पोषण उन हितधारकों द्वारा ही हो सकता है जो खुद ही सीखने वाले हों, खुद सुधार करने वाले हों, खुद निर्धारण करने वाले हों, सहायता तलाशने वाले और जवाबदेह लोग हों।

अगर हम इस सूत्र से सहमत हैं तो सवाल उठता है कि यह कैसे सम्भव है? ऐसे लोग या हितधारक कैसे मिलेंगे? उनके विकास की प्रक्रिया क्या होगी? बाहरी सहायता की तब भूमिका क्या होगी?

---

[1] *यह सहायता तीन अलग-अलग रूपों में मिलती है : i) सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम जो शिक्षा की बुनियादी समझ का निर्माण करती है और अच्छे शिक्षण और स्कूली जीवन के प्रबन्धन के लिए आवश्यक क्षमताओं और मनोवृत्ति का विकास करती है, ii) नियमित सेवाकालीन कार्यक्रम जो एक ऐसा मंच ढूँढ़ने में शिक्षकों की सहायता करते हैं जिसमें वे अपने व्यावसायिक अभ्यास में आने वाली विभिन्न समस्याओं और चुनौतियों के बारे में चर्चा कर सकते हैं और उनके हल खोज सकते हैं; और iii) विभिन्न सरकारी या गैर सरकारी या स्वयंसेवी परियोजनाओं से मिलने वाली सहायता, जिसका लक्ष्य शिक्षकों के शैक्षिक, प्रणालीगत और बुनियादी संरचनात्मक समस्याओं या चुनौतियों के सम्बन्ध में शिक्षकों और विद्यालयों की सहायता करना हो।*

[2] *दिगन्तर एक गैर सरकारी संगठन है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करता है। यह कुछ वैकल्पिक स्कूल भी चलाता है। यह जयपुर में है। इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए www.digantar.org देखें।*

[3] *पोर्टफोलियो लेखन से यहाँ आशय है शिक्षक की किसी शैक्षिक समस्या (जो कि उसने खुद चिन्हित की है) का वर्णन, उसे हल करने के लिए सोचे गए उपाय, उपायों को क्रियान्वित करने के अनुभव, उनके नतीजे और साक्ष्य आदि के वर्णन का एक विस्तृत और सुव्यवस्थित संग्रह। यह संग्रह शिक्षक के किसी शैक्षिक समस्या के प्रति उसके सैद्धान्तिक नजरिए और उसके द्वारा उसके हल ढूँढ़ने की पूरी यात्रा का प्रस्तुतिकरण है। टीचिंग पोर्टफोलियो शिक्षक की सीख को साक्ष्य के साथ दूसरों के साथ साझा करने का एक टूल भी है।*

एक सहभागी क्रियात्मक शोध परियोजना से प्राप्त अनुभव और अन्तर्दृष्टि

1. परियोजना की पृष्ठभूमि

ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए मैं अपने कुछ अनुभव और अन्तर्दृष्टि साझा करना चाहूँगा, जो बहुत स्थानीय हो सकते हैं और शायद इन प्रश्नों के सामान्य उत्तर न दे पाएँ। लेकिन साथ ही इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थानीय अनुभव हमें महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं जो आगामी वर्षों में शिक्षा सम्बन्धी परिघटनाओं के लिए समीचीन सिद्धान्त के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

दिगन्तर ने राजस्थान के जयपुर जिले के फागी ब्लॉक में 'शिक्षक सशक्तीकरण कार्यक्रम' नामक एक सहभागी क्रियात्मक शोध (Participatory Action Research - PAR) परियोजना शुरू की जो 2013 से 2016 के बीच चली। इसमें 30 सरकारी शिक्षक और दिगन्तर के तीन शोधकर्ता शामिल थे। मैं भी इसका हिस्सा था। यह राजस्थान सरकार, WATIS (Wipro Applying Thoughts in Schools) और दिगन्तर का साझा प्रयास था। इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि अगर मननशील शिक्षक बनने में प्रतिभागी शिक्षकों की मदद करनी है तो पोर्टफोलियो लेखन और उस पर नियमित रूप से सहकर्मी-समूह में आपसी चर्चाएँ किस प्रकार से सहायक हो सकती है? ध्यान देने वाली बात यह है कि इस परियोजना में आधारभूत रूप से यह बात मान ली गई थी कि पोर्टफोलियो लेखन और नियमित रूप से सहकर्मी समूह में आपसी चर्चाएँ करने से चिन्तन-मनन की वह प्रक्रिया शुरू हो सकती है जिसके चलते शिक्षकगण खुद ही सीखने वाले, खुद सुधार करने वाले, खुद निर्धारण करने वाले, सहायता तलाशने वाले और जवाबदेह पेशेवर बन सकते हैं - यानी ऐसे हितधारक जिनकी जरूरत शिक्षा के स्व-संचालन और स्व-पोषण के विकास के लिए आवश्यक है।

इस परियोजना के निष्कर्षों और अपने अनुभवों को बताने से पहले हमें इस परियोजना के सैद्धान्तिक ढाँचे को समझना होगा ताकि हम इसे अपने सन्दर्भ के साथ जोड़ सकें और इसके समग्र उद्देश्यों व उन्हें प्राप्त करने के साधनों को समझ सकें। इसे आसान बनाने के लिए मैंने इसे नीचे दिए गए चित्र की सहायता से समझाने की कोशिश की है –

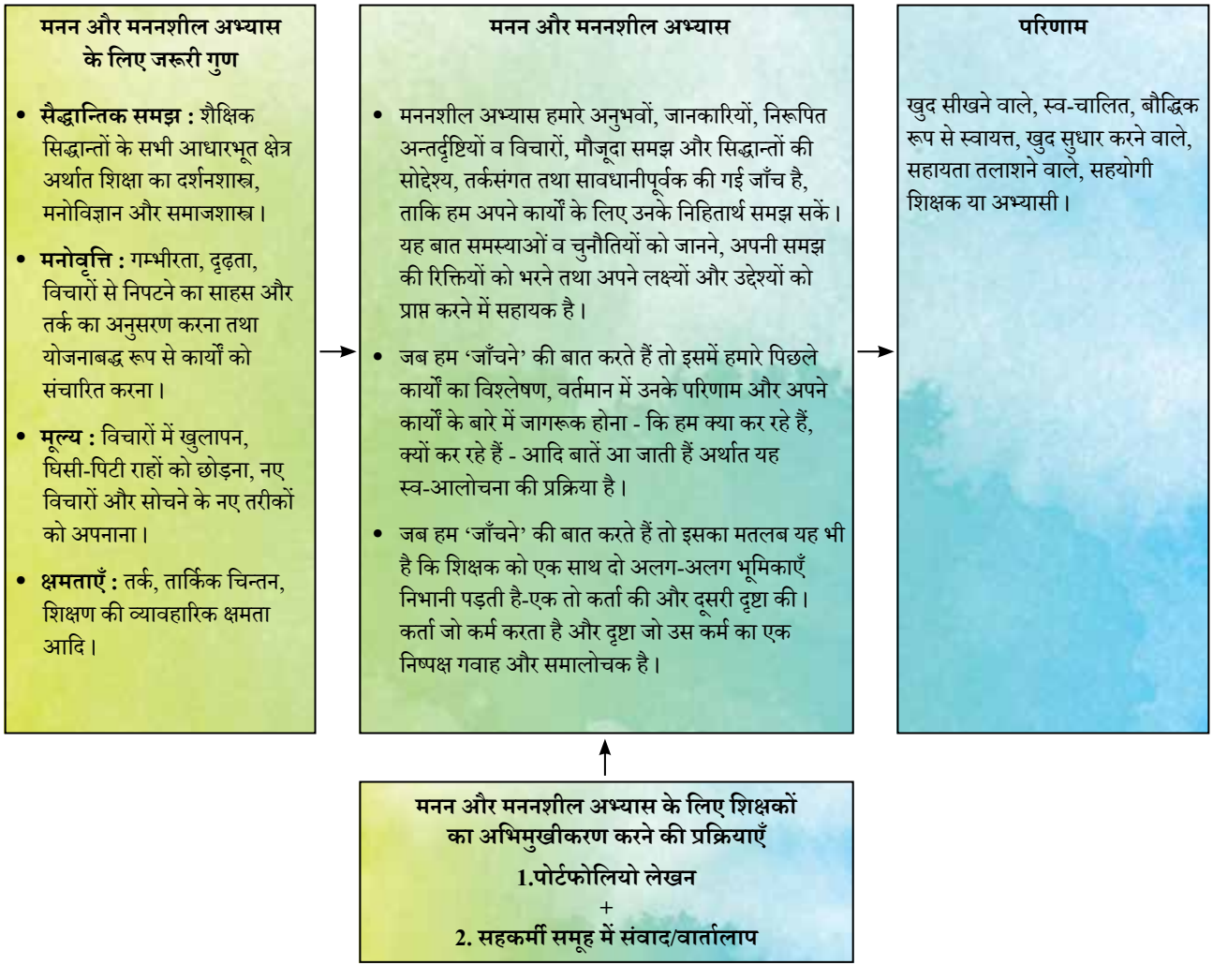

इस चित्र से पता चलता है कि इस परियोजना ने किस प्रकार से एक ऐसे सैद्धान्तिक फ्रेमवर्क की कल्पना की जो शिक्षक को बदल सकती है। इस परियोजना में इस कल्पित फ्रेमवर्क में निम्नलिखित परस्पर सम्बद्ध तत्व देखने को मिलते हैं-

i) सहकर्मियों के साथ लिखना और संवाद करना सरल-सी बात लग सकती है लेकिन वास्तव में यह काफी मेहनत वाला कार्य है और इसे गम्भीरता के साथ किया जाए तो व्यक्ति में बदलाव भी आ सकता है। हम या हमारे मित्र कक्षा में पढ़ाते समय किस प्रकार की विधियाँ अपनाते हैं - इस बात पर समीक्षात्मक रूप से वार्तालाप करने और फिर उसे लिखने के लिए बहुत सोचना पड़ता है- मैंने विभिन्न मुद्दों का सामना करने के पहले, उसके दौरान और बाद में क्या किया? मैंने आज कक्षा में क्या किया? मैंने ऐसा कैसे और क्यों किया? ऐसा करने से मेरे विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या के उद्देश्य प्राप्त करने में कैसे मदद मिलेगी? मुझे कैसे पता चलेगा कि उन्होंने ये उद्देश्य हासिल कर लिए हैं? कुछ विद्यार्थी कक्षा की गतिविधियों में भाग क्यों नहीं ले रहे थे? आदि। वास्तव में ये सारी बातें शिक्षक को सैद्धान्तिक वास्तविकता के विशाल सन्दर्भ में अपने सारे कार्य के बारे में यह सोचने को मजबूर करती हैं कि मैं एक शिक्षक के रूप में क्या हूँ? मेरी भूमिकाएँ क्या हैं? मैं यहाँ क्यों हूँ? हम अपनी पीढ़ी को क्यों शिक्षित कर रहे हैं? धीरे-धीरे यह दो-तरफा प्रक्रिया बन जाती है : आप एक कर्ता के साथ-साथ एक दृष्टा बनकर अपने ही कार्य के आलोचक भी बन जाते हैं। और अब आप मात्र यांत्रिक कर्ता बनकर नहीं रह जाते; अब आप एक ऐसी मानसिक स्थिति की ओर बढ़ते हैं जहाँ आप अपने कार्य, अपने उद्देश्यों और उन उद्देश्यों को पाने के अपने तरीकों बारे में तो जागरूक होते ही हैं साथ ही आपको उन सभी चीजों का भान भी होने लगता है जो अभी भी आपको परेशान कर रही हैं और/या आपकी मदद कर रही हैं -और इस तरह से आप एक पेशेवर मननशील शिक्षक बन जाते हैं।

ii) लेखन और संवाद एक शिल्प की तरह होते हैं जिसे शिक्षा की कुछ सैद्धान्तिक समझ के द्वारा ही सीखा जा सकता है (जैसे मानव प्रकृति, समाज की प्रकृति, मानव के ज्ञान और अधिगम की प्रकृति आदि की समझ); रुझान (जैसे गम्भीरता, दृढ़ता); मूल्य (जैसे घिसी-पिटी राहों पर न चलना, दिमाग का खुलापन); और क्षमताएँ (जैसे तार्किक सोच, पढ़ाने की क्षमता)। इसलिए, अगर कोई अपने खुद के शैक्षिक अभ्यासों पर लिखना और वार्ता करना चाहता है तो उसे खुद को बुनियादी सैद्धान्तिक विमर्श की ओर उन्मुख करना होगा क्योंकि सिद्धान्त एक मशाल की तरह होते हैं जो अँधेरे में रोशनी फैला कर चीजों को देखने में आपकी मदद करते हैं। साथ ही ये एक टूल बॉक्स की तरह हैं जिसमें कई उपकरण होते हैं और ये उपकरण आपकी सभी पेशेवर जरूरतों से निपटने में आपकी मदद करते हैं। कोई भी गम्भीर पेशेवर अभ्यास विभिन्न सैद्धान्तिक विमर्श के समेकित भण्डार पर ही आधारित होता है।

इसलिए इस परियोजना में एक रणनीति अपनाई गई। सबसे पहले तो इस बात पर जोर दिया गया कि रोजमर्रा के अनुभवों और सिद्धान्तों के बीच की खाई पाटी जाए। पोर्टफोलियो और संवादों में इन दोनों को एक-दूसरे में समाविष्ट करना चाहिए। अनुभवों को सिद्धान्त के लेंस से देखना चाहिए और सिद्धान्त को कर्म में उतारना चाहिए ताकि उसके प्रभाव और उसकी व्यवहारिकता को देखा जा सके। इस परियोजना के सभी प्रतिभागियों से कहा गया कि वे अनुभवों और अभ्यासों को सिद्धान्तीकृत करें और उन सभी अन्तर्निहित सिद्धान्तों को लिखित रूप दें जो उनके अभ्यासों को निर्देशित करते हैं। दूसरी बात, जब भी कोई समस्या सामने आई तो कुछ उपयुक्त सिद्धान्तों की मदद ली गई और उसके बारे में कुछ अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने का प्रयास किया गया। इसी तरह तर्कों की तार्किक स्थिरता, वैध आलोचना के लिए खुलापन, नवाचार और समस्या से जूझने के प्रयास के लिए प्रतिबद्धता को हमेशा महत्व दिया गया। संक्षेप में, इस परियोजना का यह मानना था कि अगर शिक्षण पोर्टफोलियो लेखन और उस पर आपसी चर्चा करने का कार्य सही तरीके से किया जाए तो शिक्षकों में कुछ स्थायी बौद्धिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। और ये परिवर्तन और कुछ नहीं अपितु सैद्धान्तिक समझ, मूल्य, मनोवृत्ति और क्षमताएँ हैं जो मनन और मननशील अभ्यास के लिए जरूरी हैं। इस तरह के परिवर्तनों को स्थायी रूप में इसलिए देखा जा रहा था क्योंकि अगर आपने एक बार इसमें महारत हासिल कर ली तो आप उसे भूल नहीं सकते; भले ही आपको बाहर से कोई मदद मिले या न मिले।

2. ये सब कैसे हुआ?

यहाँ सभी प्रक्रियाओं का विस्तार के साथ वर्णन नहीं किया जा सकता। लेकिन यह जानना उपयोगी होगा कि हमने 30 शिक्षकों के समूह के साथ शुरुआत की पर अन्ततः हम उनमें से केवल 20 शिक्षकों का ही एक सक्रिय समूह गठित कर पाए। इन सबने साथ मिलकर पर्यावरण विज्ञान, भाषा और गणित शिक्षण सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों पर 70 शिक्षण पोर्टफोलियो प्रविष्टियाँ लिखीं। तीन साल (अप्रैल 2013 से मार्च 2016 तक) की अवधि के दौरान इस समूह ने पोर्टफोलियो प्रविष्टियों और उभरते मुद्दों पर चर्चा करने के लिए सहकर्मी समूह की आठ बैठकें आयोजित कीं। दिगन्तर ने जानबूझकर इन सबमें अपनी भूमिका न्यूनतम रखी ताकि शिक्षकों में इस कार्यक्रम के प्रति स्वामित्व और स्वनिर्भरता का भाव विकसित हो सके। हालाँकि इसे क्रमिक रूप में किया गया। शुरुआत में टीम के कुछ सदस्यों (विशेष रूप से जो दिगन्तर के थे) द्वारा जरूरी सहायता की गई ताकि समूह को पोर्टफोलियो प्रविष्टियों की रूपरेखा के निर्माण में और बाद में उसके अनुसार उन्हें लिखने में सहायता मिल सके। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक था फागी में सहकर्मी समूह की बैठक (भले ही यह मासिक हो) के आयोजन के लिए केवल एक दिन की दरकार थी। यह शिक्षा तंत्र से एक न्यूनतम अपेक्षा थी।

3. अन्ततः इसके परिणाम क्या निकले?

मेरे निजी अनुभव और परियोजना की टीम के विश्लेषण बताते हैं कि इससे कई सकारात्मक परिणाम सामने आए। इनमें से कुछ प्रमुख और महत्वपूर्ण निष्कर्षों को इस प्रकार से समझा जा सकता है :

(क) पोर्टफोलियो प्रविष्टियों के लेखन की पूरी यात्रा के दौरान और उन पर होने वाली बैठकों में मैंने व्यक्तिगत रूप से समूह के प्रत्येक सदस्य की गतिविधियों पर ध्यान दिया। इसमें कई बदलाव देखने को मिले । यदि आप किसी सदस्य द्वारा लिखी गई पहली पोर्टफोलियो प्रविष्टि की तुलना उनके द्वारा लिखी गई अन्तिम प्रविष्टि से करते हैं तो साफ नजर आता है कि शैक्षिक वास्तविकता को समझने की उनकी क्षमता बढ़ गई है। शुरू में वे अपने कक्षा के अनुभवों को सतही तौर पर ग्रहण कर पाते थे - उन्होंने क्या योजना बनाई? उन्होंने क्या किया? आज क्या हुआ? आदि। उसमें 'क्यों' प्रश्न का विवरण लगभग नहीं के बराबर था। किन्तु इस परियोजना के अन्त तक उन्होंने 'क्यों' के बारे में सोचना शुरू कर दिया - आखिर मैं यह सब क्यों पढ़ाऊँ? मैं ऐसा क्यों कर रहा/रही हूँ? शिक्षा क्यों? मैं शिक्षक क्यों हूँ? इससे यह इंगित होता है कि उनमें सिद्धान्तीकरण और अपने अभ्यासों की समीक्षा करने की मनोवृत्ति विकसित हुई है।

(ख) विश्लेषण से पता चलता है कि शुरू में सदस्य 'इन एक्शन' (यानी शिक्षण क्रिया के दौरान) वाली सोच और अभ्यास पर ध्यान केन्द्रित करते थे। लेकिन धीरे-धीरे वे 'क्रिया के पहले' और 'क्रिया के बाद' के बारे में भी सोचने लगे। यह पोर्टफोलियो के हमारे ढाँचे की वजह से था जिसमें शिक्षकों को अपनी योजनाओं, उनके संचालन और उनके मूल्यांकन के बारे में लिखना था। इसलिए शिक्षण के बारे में चिन्तन का एक चक्रीय तरीका उभरता सा प्रतीत हो रहा है जिसमें प्रतिभागियों के बीच 'कर्ता' और 'दृष्टा 'की मनोवृत्ति विकसित होती हुई प्रतीत होती है।

(ग) सहकर्मी शिक्षक-समूह की बैठकें बहुत उपयोगी साबित हुईं। इस तरह की बैठक जहाँ महीने या दो महीने में एक बार बैठकर शिक्षक अपने अनुभवों पर चर्चा कर सकें बहुत महत्वपूर्ण साबित हो सकती है। मैंने खुद महसूस किया इस तरह की बैठकें कई प्रकार के कार्य करती हैं। धीरे-धीरे लोग अपने अनूठे व्यक्तित्व के साथ सामने आते हैं जिसमें उनके पेशेवर जीवन सम्बन्धी विशेष अनुभव और समस्याएँ निहित होती हैं। समय के साथ-साथ हम सभी ने देखा कि समूह में सभी की समस्याओं, मान्यताओं, धारणाओं और अनुभवों में एक प्रकार की समानता है जो स्पष्ट रूप से सबके सामने आ रही हैं - सारी बैठकों में हमने महसूस किया मानो शैक्षिक अभ्यासों और समस्याओं की एक सामूहिक चेतना उभर रही है। मेरा मानना है कि यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। यह शायद एक ऐसी बुनियादी अवस्था है जिसे हासिल किया जाना चाहिए, क्योंकि यह उन लोकाचारों और सरोकारों के विकास में सहायक है जो किसी समूह को एक खुद-मुख्तियार समूह बनाता है । ऐसी सामूहिक जागरूकता सम्भवतः स्व- संचालन की ओर पहला कदम है।

निष्कर्ष

अगर यह परियोजना कुछ साल और जारी रहती तो शायद और अधिक महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि और समझ हासिल होती। हालाँकि इसके माध्यम से जो भी अन्तर्दृष्टि हमें मिली वह काफी उत्साहजनक और सकारात्मक है। शायद मासिक बैठकों के रूप में एक स्थान (शिक्षा-व्यवस्था से की जाने वाली न्यूनतम अपेक्षा जिसमें शिक्षक और अन्य हितधारक इकट्ठे हो सकें और एक ऐसे समूह का गठन कर सकें जो अपने ही अभ्यासों का अध्ययन, उन पर चर्चा, बहस और सवाल कर सकें) और शिक्षक पोर्टफोलियो लेखन से शिक्षकों को वे सारी आवश्यक स्थायी बौद्धिक क्षमताएँ और मनोवृत्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं जो उन्हें किसी भी प्रकार की निर्भरता से मुक्त कर दे और एक बेहतर पेशेवर शिक्षक बनने में मदद कर सकती हैं।

कुलदीप गर्ग अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, जयपुर में कार्यरत हैं। उन्होंने 2007 से 2016 के दौरान एक दशक तक दिगन्तर के साथ कार्य किया। उनसे kuldeep.garg@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल **अनुवाद सम्पादन :** कुलदीप गर्ग

जिम्मेदार व्यक्ति : एक जुनूनी मुख्य अध्यापक की कहानी

मोहम्मद ज़फर

शिक्षकों की भूमिका के बारे में एन.सी.एफ. 2005 का कहना है कि शिक्षक को विद्यार्थियों के अधिगम और साझेदारी के लिए एक स्वस्थ स्थान प्रदान करना चाहिए, उनकी समस्याओं को समझना चाहिए, उन्हें विभिन्न तरीकों से समर्थन देना चाहिए और उन्हें अभिव्यक्त करने, आनन्द लेने और सीखने के लिए मुक्त स्थान मुहैया कराना चाहिए। विभिन्न विचारकों और शिक्षाविदों का मानना है कि संसाधनों और शिक्षण अधिगम सामग्री के स्वस्थ वातावरण के साथ-साथ अगर विद्यालय का वातावरण स्वतंत्र और निडर हो तो सीखने का माहौल मजबूत बनता है। विद्यालय में ऐसी सभी महत्वपूर्ण स्थितियों का निर्माण करना उस विद्यालय के सभी शिक्षकों का उत्तरदायित्व है और इस सम्बन्ध में मुख्य अध्यापक की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि वह पूरे विद्यालय के लिए एक सकारात्मक रास्ता बना सकता/ती है। मैं जिस ब्लॉक में काम करता हूँ वहाँ के एक विद्यालय से हाल ही में एक कर्मठ व ऊर्जस्वी मुख्य अध्यापक सेवानिवृत्त हुए और अब सिर्फ मैं ही नहीं वरन वे सारे लोग जो उन्हें जानते हैं, उनकी कमी महसूस कर रहे हैं। यह कमी न केवल उस विद्यालय में बल्कि उन सभी बैठकों व मंचों महसूस की जा रही है जहाँ वे बहुत सक्रिय और मुखर थे। श्री सत्यपाल जी उच्च प्राथमिक विद्यालय, पुरोला ब्लॉक उत्तरकाशी के सुनाली में मुख्य अध्यापक के रूप में कार्य करते थे। इस विद्यालय से पहले भी जहाँ कहीं भी उन्होंने कार्य किया वहाँ उन्होंने समुदाय के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाए और उनके विदाई समारोह ने सुनाली गाँव के साथ उनके सम्बन्धों को भी साबित कर दिया।

मैं उनसे पहली बार सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण के एक सत्र में मिला। वे उस उम्र में भी (उनके सेवानिवृत्त होने में दो साल बाकी थे) बड़ी सक्रियता के साथ कार्यक्रम में भाग ले रहे थे। उस सत्र की आवश्यकता पर आधारित एक लघु नाटक में उन्होंने अभिनय भी किया। चर्चाओं में भी वे सभी महत्वपूर्ण इनपुटों के बारे में बहुत मुखर थे। दोपहर के भोजन के समय मैंने उनसे बातचीत की तो पाया कि वे बेहद दिलचस्प व्यक्ति थे। वे विद्यालय में शिक्षण अधिगम सम्बन्धी समस्याओं और सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता के बारे में चर्चा कर रहे थे। जब किशोरावस्था की समस्या पर चर्चा हुई तो उन्होंने कहा कि हमें विद्यार्थियों के साथ किशोरावस्था के मुद्दों पर चर्चा करनी चाहिए क्योंकि इस अवस्था में उनकी देखभाल महत्वपूर्ण तरीके से की जानी चाहिए। हमें उनके साथ शारीरिक परिवर्तनों की बात करनी चाहिए, हमें लड़के-लड़कियों को मिलने देना चाहिए ताकि वे अच्छे साथी बन सकें, नहीं तो यह उम्र किशोर विद्यार्थियों के लिए अनेक मानसिक समस्याएँ पैदा कर देती है।

कुछ महीनों बाद मुझे उनके विद्यालय में जाने का मौका मिला। वैसे तो वह विद्यालय भी किसी अन्य विद्यालय की तरह सामान्य ही दिख रहा था, लेकिन वहाँ के विद्यार्थियों से बातचीत करने पर लगा कि वे काफी आदरपूर्ण और शिक्षा सम्बन्धी बातों में रुचि लेने वाले हैं तथा परस्पर बातचीत करने में भी अच्छे हैं। उनका मुक्त व्यवहार दिखा रहा था कि उनके शिक्षकों ने उन्हें कठोर अनुशासन के जाल में फँसा कर नहीं रखा है। उस दिन मैं विद्यार्थियों के साथ अम्लीय और क्षारकीय पदार्थों के लिटमस पेपर परीक्षण के बारे में चर्चा कर रहा था। मुख्य अध्यापक होने के नाते उन्होंने हर कदम पर मेरी मदद की, अल्मारी से लिटमस पेपर निकालकर लाए, बच्चों के साथ खड़े रहे और जब बच्चे लिटमस पेपर परीक्षण कर रहे थे तो वे उनकी प्रशंसा करते रहे, उन्हें प्रेरित करते रहे। उन्होंने मुझे बहुत सारा लिटमस पेपर दिया और कहा, "सर, विद्यार्थियों को परीक्षण के लिए अधिक से अधिक चीजें दीजिए। हमारे पास बहुत सारा लिटमस पेपर है जो केवल विद्यार्थियों के लिए है और यह अच्छी बात है कि वे इसका उपयोग कर रहे हैं।"

अपने विदाई समारोह वाले दिन श्री सत्यपाल जी अपनी जीवन-संगिनी श्रीमती शिमला देवी के साथ

वे हमेशा विद्यालय की सभी गतिविधियों में स्वेच्छा से भाग लेते थे। जैसे विषय से सम्बन्धित कोई क्रियाकलाप या फिर कोई अन्य कार्यक्रम जैसे गणित मेला, आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों का विदाई

समारोह आदि। जब उनकी सेवानिवृत्ति में एक साल रह गया तो उन्होंने कहा, "मैं इसे एक साल की तरह नहीं बल्कि 365 दिनों के रूप में देखता हूँ" - उनके इस वाक्य से कार्य के प्रति उनका जुनून दिखाई देता है। एक दिन मैंने देखा कि वे पी.पी.टी. बना रहे थे और उसके लिए पार्श्व स्वर तैयार कर रहे थे। यह पी.पी.टी. उन्होंने पाठ्यपुस्तक की गतिविधियों के आधार पर बनाई थी। उन्होंने सब्जियों, फलों, शरीर के अंगों आदि के चित्र इंटरनेट से लिए, एक पी.पी.टी. बनाई और फिर उसकी विषयवस्तु के मतलब को अँग्रेजी व हिन्दी में लिखा तथा पार्श्व स्वर के माध्यम से फलों के नाम अँग्रेजी व हिन्दी में समझाए। यह सिर्फ इस बात का उदाहरण है कि उन्होंने अँग्रेजी व हिन्दी की पाठ्यपुस्तक के अभ्यासों, कठिन शब्दों, काल, व्याकरण आदि पर अनेक पी.पी.टी. और वीडियो बनाए। उन्होंने बताया कि वे पाठों की सामग्री को दिलचस्प तरीके से पेश करने के लिए तकनीकी का उपयोग करते हैं। प्रत्येक कक्षा इस वीडियो सत्र के लिए उस टी.वी./कम्प्यूटर कक्ष में एक पीरियड के लिए आती है। एक बार जब उनके एक सहयोगी गणित मेले का आयोजन करने में व्यस्त थे जिसमें सभी विद्यालयों के अध्यापक आमन्त्रित थे, तो उस दिन वे चन्द्रभूषण जी (गणित के अध्यापक) के साथ गणित की पहेली और शिक्षण अधिगम सामग्री बनाने के लिए चार्ट-पेपर, गत्ते और थर्माकोल काटने में लगे हुए थे। वे हमेशा अपनी टीम की सहायता करते थे जो उन्हीं की तरह ऊर्जस्वी है।

यह विद्यालय सामूहिक और सहयोगात्मक कार्य का एक सुन्दर उदाहरण है जहाँ शिक्षक और मुख्य अध्यापक एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं ताकि विद्यार्थियों को उनकी ओर से सर्वश्रेष्ठ योगदान मिल सके। वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की टी.एल.सी. सम्बन्धी कार्यक्रमों में नियमित रूप से आते, उसमें भाग लेते और हमेशा अधिक से अधिक पढ़ने और सीखने के लिए तैयार रहते। इतना ही नहीं, संकुल और शिक्षण समुदाय में हर कोई उन्हें बहुत सम्मान देता। हाल ही में उन्हें जन-गणना के बढ़िया आयोजन के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार मिला। अपने अभिप्रेरण के बारे में बात करते हुए उन्होंने कहा कि उनका विचार है कि उन्हें विद्यार्थियों के लिए सबसे अच्छा कार्य करना चाहिए क्योंकि विद्यार्थियों के कारण ही उनके पास नौकरी है और यह उनका कर्तव्य है कि वे अपना काम ईमानदारी से करें और उन विद्यार्थियों के लिए कार्य करें जिनकी पृष्ठभूमि अच्छी नहीं है।[1] छुट्टियों में भी वे अपने गृह-नगर के विद्यालयों में जाकर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के बारे में शिक्षकों के साथ चर्चा करते हैं और उन्हें प्रेरित करते हैं।

जिस दिन उनके लिए विदाई समारोह आयोजित किया गया था उस दिन मैं किसी और कार्य में व्यस्त था और यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं उस समारोह में नहीं जा पाया। कुछ समय बाद जब मैं विद्यालय गया तो मैंने पूछा कि अब उनकी अनुपस्थिति से सबको कैसा लग रहा है। भजन सिंह जी (सुनाली उच्च प्राथमिक विद्यालय के एक शिक्षक) ने बताया कि श्री सत्यपाल जी के साथ आठ-दस साल की यह यात्रा बहुत सहज रही क्योंकि हम उनकी उपस्थिति से आश्वस्त रहते थे कि वे सब कुछ सम्भाल लेंगे लेकिन अब उनके बिना यह सब मुश्किल लग रहा है। हमें अभी भी विश्वास नहीं हो रहा कि वे विद्यालय में नहीं हैं। भजन सिंह जी ने बताया कि वे अभी भी फाइलों और दस्तावेजों के बारे में सत्यपाल जी से पूछते हैं जो फोन पर ही हर कार्य के बारे बताते हैं और दस्तावेज खोजने में भी मदद करते हैं। वहाँ पर बैठी हुई एक मैडम ने बताया कि जब हमें किसी हार्ड कॉपी को ढूँढ़ने में बहुत दिक्कत हो रही थी तब उन्होंने अपने पेन ड्राइव (जिसमें उन्होंने कम्प्यूटर के महत्वपूर्ण फोल्डर सेव कर रखे थे) से फाइलों के एकदम सही स्थान बता दिए। ऐसा लगता है कि वे दूर रहकर भी हमारे साथ हैं और हमारी मदद कर रहे हैं।

विद्यार्थियों से उनके बारे में बात हुई तो वे बहुत भावुक हो गए। विद्यार्थियों ने बताया कि वे कभी किसी के साथ कड़ाई से बात नहीं करते थे और हमेशा समय का पाबन्द होने को कहते थे। वे खुद समय के बहुत पाबन्द थे और बारिश के मौसम में भी समय पर विद्यालय आ जाते। वे मुख्य अध्यापक थे पर हर गतिविधि में सबका साथ देते थे। एक लड़की ने कहा कि *हम उन्हें हमेशा याद रखेंगे क्योंकि वे हमारे साथ अपने ही बच्चों जैसा व्यवहार करते थे।*

दिलचस्प बात यह हुई कि जब मैं उन्हें सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा प्याज के छिलकों की कोशिकाएँ दिखा रहा था तो वे कहने लगे कि हमने यह पहले भी देखा है। मैंने पूछा, "आपको यह किसने दिखाया?" उन्होंने कहा कि हेड सर (सत्यपाल जी ने)। यानी विज्ञान की कक्षा में विद्यार्थियों के साथ यह गतिविधि वे पहले ही कर चुके थे। वे हमेशा विद्यार्थियों को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता देते थे। उनके सहयोगी भजन जी के अनुसार, "वे एक अलग प्रकार के इन्सान थे और हर स्थिति में शान्ति के साथ प्रतिक्रिया करना मैंने उनसे ही सीखा। फिर भी मैं कभी-कभी अपने गुस्से पर काबू नहीं रख पाता लेकिन वे हर बात और हर चर्चा में शान्त रहते, मुझे लगता है कि वे अलग प्रकार के अद्वितीय व्यक्ति थे। उनकी अनुपस्थिति से मुझे बहुत खालीपन महसूस होता है और उनके जैसा सहयोगी मिलना मुश्किल है।'' जब मैंने कुछ और विद्यार्थियों से बात की और उनसे पूछा कि सत्यपाल जी की सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें कैसा लगता है तो वे बोले कि उनकी विदाई समारोह वाले दिन वे रो दिए थे और उन्हें उनकी बहुत याद आती है। एक लड़की बोली कि वे कभी कटुता से बात नहीं करते थे और हर

[1] *उत्तराखण्ड : उम्मीद जगाते शिक्षक, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन*

मामले में हमारा साथ देते। उसने एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का उदाहरण दिया जिसमें उन्होंने अपने खर्चे से विद्यार्थियों को बनावटी गहने दिलवाए और विद्यार्थियों के साथ मिलकर दूसरी सजावटी चीजें बनाई। उस ब्लॉक में लगभग सभी शिक्षक उनके बारे में और विद्यालयों के विकास में उनके योगदान के बारे में जानते हैं फिर चाहे वे उनके पिछले विद्यालय हों या सुनाली का उच्च प्राथमिक विद्यालय। उनकी पहलों ने न केवल विद्यालय को एक आकार दिया बल्कि वहाँ सहयोग, साझेदारी और खुलेपन की संस्कृति भी विकसित की।

एक आम कहावत है "जहाँ चाह, वहाँ राह" अर्थात जब हम किसी ध्येय के लिए कार्य करते हैं और ईमानदारी के साथ करते हैं तो राहें आसान हो जाती हैं और लोग भी हमारी मदद करने के लिए आगे आते हैं। इसी तरह जब सत्यपाल जी ने अपनी टीम के साथ विद्यालय का स्वस्थ वातावरण विकसित किया तो अन्य शैक्षिक अधिकारियों और टीम ने उनके कार्य का समर्थन और सराहना की। उनका कहना है, "सामुदायिक सहायता के बिना विद्यालय का विकास नहीं हो सकता और गाँव के समुदाय ने हमेशा मेरा साथ दिया है।'' उन्होंने एक उदाहरण दिया कि जब उन्होंने कम्प्यूटर के अनुप्रयोग और सीखने के कार्यक्रम के लिए सहमति दी तो उस समय विद्यालय में बिजली नहीं थी, लेकिन उन्होंने अधिकारियों को आश्वासन दिया कि वे कम्प्यूटर भेज दें, वे (सत्यपाल जी) बिजली की व्यवस्था कर लेंगे। फिर उन्होंने बिजली की समस्या हल करने के लिए गाँव के प्रधान और अन्य सदस्यों से बात की और सिर्फ एक दिन में प्रधान ने बिजली का खम्भा लगवा दिया और समुदाय ने विद्यालय को बिजली का कनेक्शन दिया और इस तरह से कम्प्यूटर पर सफलतापूर्वक कार्य होने लगा। एक बार उनके विद्यालय की प्रबन्धन समिति ने अच्छे प्रबन्धन के लिए पुरस्कार भी प्राप्त किया।

दूसरा उदाहरण विद्यालय के भवन से सम्बन्धित है जो जंगल के पास था और तेज हवा के चलने से दो बार देवदार के पेड़ भवन पर गिर पड़े थे किन्तु सौभाग्य से उस समय विद्यालय बन्द था। सत्यपाल जी और समुदाय के अनुरोध के कारण सर्व शिक्षा अभियान अधिकारी ने नए भवन के निर्माण को मंज़ूरी दी। यही नहीं, कम्प्यूटर, टेलिविजन आदि के लिए उनके आवेदन व माँग को भी पूरा किया गया। इसके अलावा उनके कार्य को अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा भी मान्यता दी गई और उनकी यात्रा पर न केवल *उत्तराखण्ड : उम्मीद जगाते शिक्षक*-2 (अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन का एक प्रकाशन जो उत्तराखण्ड के विभिन्न जिलों में उत्साहपूर्वक काम करने वाले शिक्षकों को उजागर करता है) में एक लेख लिखा गया है वरन पूरे पुरोला गाँव, शिक्षक समुदाय और अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के सदस्यों ने उनके आदर और सम्मान में उन्हें विदाई दी। जो लोग यह आम धारणा बना लेते हैं कि सरकारी विद्यालयों और वहाँ के कर्मचारी निष्क्रिय होते हैं या उनमें जुनून की कमी होती है, सत्यपाल जी के प्रयास ऐसे लोगों के विचारों को गलत साबित करते हैं।

जैसा कि जॉन होल्ट ने अपनी पुस्तक 'अंडरअचीविंग स्कूल' में लिखा है कि शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच आदर का सम्बन्ध होना चाहिए और उन्हें खुद को व्यक्त करने का स्थान व अवसर देना चाहिए। उनके प्रयासों के कारण आज हम सुनाली उच्च प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्थियों और स्टाफ के बीच स्वस्थ सम्बन्धों के उदाहरण देख सकते हैं। मुझे अपने विद्यालय का अनुभव है। वहाँ के प्राचार्य अख्खड़ और कठोर अनुशासन को मानने वाले थे तथा अनुशासन तोड़ने पर दण्ड देना उनकी प्राथमिकता थी। लेकिन जब मैंने सत्यपाल जी के विद्यालय का अनुशासन और विद्यार्थियों व सहकर्मियों के साथ उनका मैत्रीपूर्ण रिश्ता देखा तो मुझे पता चला कि एन.सी.एफ. 2005 में इसी तरह के अनुशासन के बारे में बताया गया है यानी अनुशासन शिक्षक एवं विद्यार्थियों दोनों के लिए आजादी, विकल्प और स्वायत्तता बढ़ाने वाला होना चाहिए। विद्यार्थियों को नियम बनाने की प्रक्रिया में शामिल करना चाहिए ताकि वे नियम के पीछे के तर्क को समझ सकें और उसके पालन की अपनी जिम्मेदारी को भी महसूस करें (एन.सी.एफ. 2005)। यहाँ उद्देश्य विद्यार्थियों को दण्ड देना नहीं है बल्कि स्व-अनुशासन द्वारा जिम्मेदार होने के बारे में स्वामित्व विकसित करना है। इसके द्वारा वे स्वशासन के लिए बनाई गई संहिता की प्रक्रिया के बारे में जानेंगे और लोकतान्त्रिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए जरूरी कौशल विकसित कर पाएँगे (एन.सी.एफ. 2005)।

गाँववालों द्वारा दी गई विदाई

हर साल वे और उनके सहयोगी चन्द्रभूषण जी और भजन जी आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों को अपने पैसों से विदाई की पार्टी देते और विद्यार्थियों के लिए दोपहर के विशेष भोजन का आयोजन करते। विद्यार्थियों और गाँववालों ने भी इस संस्कृति को बरकरार रखते हुए उनके लिए विदाई समारोह का आयोजन किया और

विदाई समारोह वाले दिन श्री सत्यपाल जी के सम्मान में उपस्थित गाँववाले

आधे से भी ज्यादा गाँव वाले उन्हें उनकी अगली यात्रा के लिए शुभकामनाएँ देने आए। जैसा कि मैंने पहले बताया, यह मेरी बदकिस्मती थी कि मैं उस समारोह में शामिल नहीं हो पाया लेकिन मेरे सहयोगी ने बताया कि गाँववालों ने ढोल और तुरही के साथ सत्यपाल जी का सम्मान किया, उन्हें उपहार दिए जैसे राजमा दाल, अपने बाग के फल आदि। उनके पूर्व सहयोगी, सुनाली प्राथमिक विद्यालय के कर्मचारी तथा कई अन्य लोग अपने प्रिय हेड साहब को शुभकामनाएँ देने के लिए एकत्र हुए। विद्यार्थी और सहकर्मी उनके साथ गुजारे हुए पलों को याद करके रोने लगे और उस भावुक घड़ी में वे खुद भी रो पड़े। विद्यार्थियों के साथ उनके सहयोगियों ने भी उन्हें भीगी आँखों से शुभकामनाएँ दीं।[2] वे अपने पीछे जिम्मेदारी, नम्रता और एकजुटता की विरासत छोड़े जा रहे थे। अब भी वे अपने गृहनगर सहारनपुर से लोगों के साथ बातें करते हैं और कार्यशालाओं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने में रुचि दिखाते हैं। उनके जैसे लोग बिना दूसरों पर दबाव डाले ईमानदारी के साथ अपना कार्य करते हैं और उनकी ईमानदारी और जुनून के कारण दूसरे लोग भी बहुत कुछ सीखते हैं। मेरे लिए तो यह इस बात का बहुत अच्छा उदाहरण था कि बिना कठोर अनुशासन, दण्ड या शिक्षकों पर दबाव डाले कोई मुख्य अध्यापक विद्यालय और समुदाय के लिए कितना कुछ कर सकता है।

---

[2] *विदाई के विवरण और चित्र देने के लिए मेरे सहयोगी अनूप दुबे का धन्यवाद*

मोहम्मद ज़फर उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की विज्ञान टीम के साथ कार्य करते हैं। उनसे mohammad.zafar@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

शिक्षक अधिगम केन्द्र : शिक्षकों के विकास के लिए एक प्रभावी स्थान

रुद्रेश एस.

किसी भी विद्यालय की गुणवत्ता उसके शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर होती है। विद्यार्थी विद्यालय में जो कुछ भी सीखते हैं उसका सीधा सम्बन्ध इस बात से है कि शिक्षक उन्हें क्या और कैसे सिखाते हैं। और शिक्षक उन्हें क्या और कैसे सिखाते हैं, यह उनके ज्ञान, कौशल, प्रेरणा और प्रतिबद्धता पर निर्भर है। यदि शिक्षकों से यह उम्मीद की जाती है कि उनके शिक्षण सम्बन्धी दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव हो तो वही बदलाव उनकी सेवा पूर्व शिक्षा और सेवाकालीन पेशेवर कार्यक्रमों में भी नजर आना चाहिए। सरकारी विद्यालयों के कई शिक्षक अपना ज्ञान बढ़ाने, नई चीजें सीखने और कक्षा की बदलती माँगों के अनुसार नए बदलावों को अपनाने के लिए तैयार हैं। बड़ी संख्या में सरकारी विद्यालयों के शिक्षक ग्रामीण क्षेत्रों में सेवारत हैं। ऐसे शिक्षकों के लिए उपलब्ध सुविधाओं की जाँच आवश्यक है ताकि वे अपने विषय सम्बन्धी ज्ञान को उन्नत कर सकें और दिन-प्रतिदिन की शैक्षिक चुनौतियों का सामना करने के लिए सहायता प्राप्त कर सकें। शिक्षकों को शैक्षिक सहायता प्रदान करने के लिए स्थापित बुनियादी तन्त्रों को समझना भी आवश्यक है।

वास्तव में देखा जाए तो शिक्षकों को अपने कार्यस्थलों में शैक्षिक विकास के बहुत कम अवसर मिलते हैं। शिक्षकों के पेशेवर विकास की केवल एक आधिकारिक गतिविधि देखने में आती है यानी सर्व शिक्षा अभियान का प्रशिक्षण कार्यक्रम, लेकिन अक्सर वह भी असम्बद्ध रूप से आयोजित होता है। सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की जवाबदेही आज चर्चा का मुख्य विषय है, खासकर कम नामांकन और नामांकित बच्चों के सत्र के अन्त तक स्कूल में टिकने की संख्या (retention) को देखते हुए। शिक्षकों की पेशेवर क्षमता उनकी जवाबदेही बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

शिक्षकों के पेशेवर विकास के अन्तर्गत औपचारिक प्रशिक्षण और कार्यशालाएँ आ जाती हैं। ये प्रशिक्षण सत्र विशिष्ट सामग्री पर एक वर्ष में दो या तीन बैचों में आयोजित किए जाते हैं। इनमें सामग्री पर सतही तौर पर चर्चा की जाती है और अक्सर ऐसे प्रशिक्षण सत्रों में शिक्षकों की जरूरतों, कक्षा की समस्याओं, शिक्षा के परिप्रेक्ष्य और विषय की प्रकृति के बारे में चर्चा नहीं की जाती और किन्हीं दो प्रशिक्षण कार्यक्रमों में चर्चित सामग्री के बीच बहुत कम सम्बन्ध होता है। शिक्षकों के गुणवत्तापूर्ण विकास के लिए प्रति वर्ष प्रशिक्षण के दो से अधिक सत्र आवश्यक हैं। उनके विकास की प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए उन्हें औपचारिक व अनौपचारिक बातचीत के अवसर दिए जाने चाहिए और उनकी जरूरतों के आधार पर उनके साथ सतत रूप से संलग्न होना चाहिए। साथ ही, प्रशिक्षण अधिक प्रभावी तब होगा जब शिक्षक यह जान लेंगे कि उन्हें किन विषयों को सीखना है और स्वायत्त रूप से निर्णय लेंगे कि उन्हें पेशेवर विकास करना है या नहीं।

अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन ने शिक्षकों के विकास के लिए एक स्वतंत्र व स्वैच्छिक स्थान प्रदान करने की दृष्टि से शिक्षक अधिगम केन्द्र या टीचर लर्निंग सेंटर (टी.एल.सी.) की अवधारणा पर विचार किया जो पेशेवर विकास की एक निरन्तर प्रक्रिया में शिक्षकों को संलग्न करने की रणनीति का एक हिस्सा था। टी.एल.सी. का भौतिक स्थान तो सिर्फ एक ढाँचा है जो सीखने का माहौल बनाता है, इसमें जीवन संचार होता है वहाँ होने वाली मानवीय बातचीत से। वर्तमान में चल रहे सेवाकालीन कार्यक्रमों के विपरीत टी.एल.सी. मॉडल पेशेवर विकास का ऊर्ध्वगामी मॉडल है। पहला टी.एल.सी. 2009 में कर्नाटक के यादगीर जिले के शोरापुर खण्ड में स्थापित किया गया। अब ये टी.एल.सी. उन छह राज्यों में मौजूद हैं जहाँ अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन कार्यरत है, जिनमें से अधिकतर 72 उप-महाद्वीपों के 44 जिलों के ग्रामीण इलाकों में हैं। शिक्षक पेशेवर विकास के क्षेत्र में हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि टी.एल.सी. शिक्षकों तक पहुँचने और उन्हें शैक्षिक रूप से जोड़ने का सबसे सुसंगत और किफायती तरीका है। इसलिए वर्तमान शैक्षिक वर्ष में 60 टी. एल.सी. और स्थापित करने की योजना है एवं आने वाले वर्षों में पूरे देश में 300 टी.एल.सी. स्थापित किए जाएँगे।

शिक्षक अधिगम केन्द्र या टीचर लर्निंग सेंटर क्या है?

- टी.एल.सी. एक मुक्त स्थान है जहाँ शिक्षकों को अपने विषय के साथ जुड़ने के लिए औपचारिक, अनौपचारिक और गैर-औपचारिक अवसर मिलते हैं। यहाँ के शैक्षिक संसाधन सभी के लिए उपलब्ध हैं जिनमें पुस्तकालय की पुस्तकें, विज्ञान प्रयोगशाला के उपकरण, गणित किट, कम्प्यूटर और इंटरनेट की सुविधाएँ तथा शिक्षण-अधिगम की अन्य सामग्रियाँ शामिल हैं।

- टी.एल.सी. में अपने सहकर्मियों से सीखने, स्व-अधिगम और विशेषज्ञों से सीखने के अवसर मिलते हैं जिससे शिक्षक समुदाय का पेशेवर विकास होता है।

- इससे शिक्षकों को अपने अवधारणात्मक, तकनीकी और मानवीय सम्बन्धों के कौशल विकसित करने का अवसर मिलता है।
- टी.एल.सी. शिक्षकों को अपने अनुभव साझा करने और एक-दूसरे से सीखने का गैर-औपचारिक स्थान भी है।

टी.एल.सी. में उपलब्ध शैक्षिक संसाधन

सामान्यतया टी.एल.सी. में निम्नलिखित संसाधन उपलब्ध होते हैं:

पुस्तकें और पत्रिकाएँ : विषयवस्तु, सन्दर्भ, कहानियाँ, विश्वकोश, शब्दकोश, शैक्षिक रिपोर्ट, शैक्षिक नीति सम्बन्धी दस्तावेज, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र।

उपकरण और शिक्षण-अधिगम सामग्री : रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, भौतिक शास्त्र, भूगोल और खगोल विज्ञान जैसे विषयों में अधिगम बढ़ाने में सहायक उपकरण।

शिक्षण-अधिगम सामग्री बनाने के लिए आवश्यक बुनियादी सामग्री : जिनका उपयोग करके शिक्षक शिक्षण-अधिगम सामग्री बना सकें और उनका उपयोग कक्षा में कर सकें।

डिजिटल सामग्री : कम्प्यूटर और इंटरनेट, ई-संसाधन (लेखों की सॉफ्ट कॉपी, वीडियो, शैक्षिक इंटरैक्टिव सॉफ्टवेयर, शैक्षिक वीडियो)

अवकाश के समय की गतिविधियों और मनोरंजन के लिए सामग्री : शटल कॉक, वॉलीबॉल, शतरंज, कैरम आदि।

मानव संसाधन : विषय के संसाधक और शिक्षक संसाधक

टी.एल.सी. किस प्रकार से कार्य करता है?

टी.एल.सी. सप्ताह के दिनों में शाम के चार बजे से रात के आठ बजे तक और सप्ताहान्त में सुबह दस बजे से रात के आठ बजे तक खुला रहता है ताकि शिक्षक अपने खाली समय में यहाँ उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग कर सकें। यहाँ औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह की गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। औपचारिक गतिविधियों में कार्यशालाएँ, संगोष्ठियाँ, सम्मेलन और दिए गए भौगोलिक क्षेत्र के बच्चों द्वारा विशिष्ट विषय पर कक्षा-परियोजनाओं की प्रदर्शनियाँ आ जाती हैं। अनौपचारिक गतिविधियों में सहज रूप से केन्द्र में आना, सामग्री माँगकर ले जाना, स्वैच्छिक शिक्षक मंच, सहकर्मी चर्चा, सायंकालीन चर्चा, स्व-अधिगम आदि आ जाते हैं। इस प्रकार के अनौपचारिक स्थान से निरन्तरता व जुड़ाव विकसित होता है और शिक्षकों की आवश्यकता पर आधारित ज्ञान, प्रवृत्ति और कौशल का संवर्धन भी होता है।

टी.एल.सी. में नियमित रूप से कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं। कुछ कार्यशालाएँ पाँच दिनों की होती हैं जिनमें प्रकरण की गहरी समझ प्रदान करने की कोशिश की जाती है और शिक्षकों को अपने अधिगम पर चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। नियमित रूप से आयोजित संगोष्ठियाँ और सम्मेलन शिक्षकों को शोध करने और अपना पेपर प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं तथा विषय-विशेषज्ञों के साथ बातचीत करने में भी सहायक होते हैं।

प्रतिदिन औसतन 10 से 15 शिक्षक टी.एल.सी. में आकर पुस्तकें/पात्रिकाएँ पढ़ते हैं, सामग्रियाँ माँगकर ले जाते हैं, इंटरनेट का उपयोग करते हैं और अपने साथियों के साथ बातचीत करते हैं। प्रत्येक विषय पर हर महीने किसी नियत सप्ताहान्त को एक स्वैच्छिक शिक्षक मंच आयोजित किया जाता है। ये मंच किसी विशिष्ट विषय के 20-25 शिक्षकों को एक साथ इकट्ठा होकर टी.एल.सी. में उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग करते हुए किसी प्रकरण पर अधिक जानकारी पाने का अवसर देते हैं और फाउण्डेशन का कोई संसाधक इस गतिविधि के संचालन में सहायता देता है। ऐसा कार्यक्रम तीन से पाँच घण्टे तक चलता है। सायंकालीन चर्चा में व्यापक शैक्षिक विमर्श पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाता है। इसकी अवधि कम होती है (दो घण्टे प्रति सत्र) जिसमें शिक्षक कुछ चयनित लेख पढ़कर आते हैं और उस पर चर्चा करते हैं। टी.एल.सी. संसाधनों का उपयोग अगली कक्षा के लिए भी किया जाता है।

अधिगम केन्द्रों के रूप में टी.एल.सी.

टी.एल.सी. अधिगम केन्द्रों के रूप में विकसित हुए हैं जहाँ किसी एक शहर के शिक्षक अपने ही द्वारा चुने हुए प्रकरणों के बारे में जानकारी पाने के लिए इकट्ठा होते हैं। वे सायंकालीन चर्चाओं और स्वैच्छिक मंचों के लिए कार्यक्रम तैयार करते हैं। नोट्स और पारम्परिक शिक्षण अधिगम सामग्री तैयार करने के अलावा शिक्षकों ने कक्षा में उपयोग के लिए वीडियो फिल्में भी बनाई हैं। समूहों में कार्य करने से उनके बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बनते हैं और इससे उन्हें एक-दूसरे से सीखने में मदद मिलती है।

निरन्तरता और प्रासंगिकता

आमतौर पर सरकारी स्कूलों के शिक्षण प्रशिक्षण में जो रिक्ति दिखाई देती है उसे टी.एल.सी. की गतिविधियाँ पूरा करती हैं। टी.एल.सी. के द्वारा जो उपयुक्त शैक्षिक इनपुट दिए जाते हैं वे कार्यशालाओं को पूरकता प्रदान करते हैं। शिक्षक विकास की प्रक्रिया में निरन्तरता होनी चाहिए और इसमें सतत फीडबैक तथा नियमित चिन्तन होना भी अनिवार्य है। अगर प्रशिक्षण असम्बद्ध या वर्गीकृत हो तो शायद शिक्षक वह अवधारणा पूरी तरह से न समझ पाएँ और इसके परिणामस्वरूप वे उसे कक्षा में भी प्रभावी तरीके से नहीं बता पाएँगे। अक्सर जिन प्रकरणों को औपचारिक प्रशिक्षण के लिए उचित समझा जाता है वे स्वयं शिक्षक की कक्षा की आवश्यकताओं से असम्बद्ध होते हैं।

ये सत्र शिक्षकों को अपने कौशलों का पूरी तरह से विकास करने में मदद नहीं कर पाते। इसलिए शिक्षक विकास के कार्यक्रम सन्दर्भगत, भौगोलिक व व्यक्तिगत जरूरतों के लिए संगत होने चाहिए और स्व-अधिगम, सहकर्मी-अधिगम, आवश्यकता पर आधारित चर्चाओं, निदर्शन आदि गैर-औपचारिक साधनों के माध्यम से निरन्तर विकास के अवसर देने वाले भी होने चाहिए। प्रशिक्षण की विषयवस्तु की प्रस्तुति के लिए विभिन्न प्रकार के तरीकों का उपयोग करना चाहिए (केवल व्याख्यान देना ठीक नहीं)।

उपलब्ध संसाधनों का उपयोग

टी.एल.सी. के कारण शिक्षकों को भौतिक और डिजिटल दोनों प्रकार की सामग्रियाँ मिल पाई हैं और साथ ही उन्हें कक्षा में पहले से अधिक संसाधनों व शिक्षण अधिगम सामग्री का उपयोग करने के लिए भी प्रोत्साहित किया है। टी.एल.सी. में उपलब्ध सामग्रियों को इस तरह से व्यवस्थित किया जाता है कि शिक्षकों को किसी विशेष पाठ के लिए सही सामग्री आसानी से मिल जाए। प्राथमिक विद्यालयों की औपचारिक पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम के अनुसार ही सामग्रियाँ जुटाई जाती हैं।

टी.एल.सी. के सबसे महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं, पहला केन्द्र में चलने वाली शैक्षिक गतिविधियाँ और दूसरा शिक्षकों तक पहुँचना। कुछ ऐसी गतिविधियाँ भी हो सकती हैं जो शैक्षिक न हों, जैसे खेल, समाचार पत्र पढ़ना, गैर-शैक्षिक वीडियो देखना, सामान्य विषयों पर एक-दूसरे से बातचीत करना आदि। हालाँकि औपचारिक रूप से नियत शैक्षिक गतिविधियाँ टी.एल.सी. का केन्द्र बिन्दु हैं किन्तु विद्यालय, अधिगम, शिक्षण, विषयवस्तु, अध्यापन कला जैसे विषयों पर अनौपचारिक चर्चाओं से शिक्षक अपने कार्य से जुड़ पाते हैं और सीखे हुए ज्ञान को अपने दिन-प्रतिदिन के कार्य में लागू करने में समर्थ होते हैं। विभिन्न स्थानों में सहकर्मी समूह बैठकों का आयोजन किया जा सकता है जैसे स्थानीय चाय की दुकान, मन्दिर, कैम्पस आदि या फिर शिक्षक अपने लिए संगोष्ठी या चर्चा जैसे कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं। पुस्तकों और शिक्षण अधिगम सामग्री के साथ विद्यालय जाने से विद्यार्थियों और तत्पश्चात शिक्षकों के साथ अन्तःक्रिया को प्रोत्साहन मिलता है। जब एक बार कुछ शिक्षक टी.एल.सी. आने लगते हैं और यह महसूस करते हैं कि यहाँ की गतिविधियों से उनके पेशेवर विकास में संवृद्धि हो रही है तो वे अपने साथ और शिक्षकों को भी लाने लगते हैं।

टी.एल.सी. के संचालन से हमने जो भी सीखा उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है :

- अगर टी.एल.सी. ऐसी जगह स्थित हो जहाँ 100 से अधिक शिक्षक रहते हैं तो उसका उपयोग अधिकाधिक होता है।
- जो शिक्षक टी.एल.सी. से तीन किलोमीटर की दूरी पर रहते हैं वे उसका अधिक उपयोग करते हैं। एक और जरूरी बात यह भी है कि उन्हें सभी सामग्रियों का उपयोग करने की खुली छूट होनी चाहिए।
- अधिगम के लिए टी.एल.सी. का माहौल गुणवत्तापूर्ण होना चाहिए जैसे बैठने के लिए पर्याप्त स्थान, साफ-सुथरा वातावरण, पेयजल, शौचालय की सुविधा, सीखने के लिए गुणवत्तापूर्ण सामग्री, विभिन्न शैलियों की पुस्तकें, कम्प्यूटर, बिजली की निरन्तर आपूर्ति, मनोरंजन व अवकाश के साधन, हर विषय के लिए संसाधक आदि। ये सारी चीज़ें टी.एल.सी. की सफलता के लिए जरूरी हैं।
- जिन शिक्षकों में अपने पेशेवर विकास के प्रति स्वेच्छा से उत्तरदायित्व की भावना होती है वे टी.एल.सी. को जीवन्त बना देते हैं।
- टी.एल.सी. शिक्षक विकास की गतिविधियों का अभिन्न हिस्सा होने के साथ-साथ पृथक रूप से भी कार्य कर सकते हैं।
- टी.एल.सी. की गतिविधियाँ कक्षा की जरूरतों को पूरा करने वाली और शिक्षकों के पेशेवर विकास को बढ़ावा देने वाली होनी चहिए। तभी शिक्षक इन केन्द्रों में नियमित रूप से आएँगे।
- टी.एल.सी. को समय की जरूरतों के अनुसार नियमित रूप से अपना उन्नयन करते रहना चाहिए। टी.एल.सी. शिक्षकों को संलग्न करने का एक प्रभावी तरीका है क्योंकि वे शिक्षकों को अपने पेशेवर विकास के लिए स्वेच्छा से उत्तरदायी बनाते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जो यह बताते हैं कि शिक्षकों ने अपने पेशेवर विकास का कार्य कैसे किया। यादगीर जिले में किए गए एक अध्ययन से यह पता चला है कि टी.एल.सी. की वजह से शिक्षकों में सकारात्मक बदलाव आया। टी.एल.सी. ने शिक्षकों को अपने विषय सम्बन्धी ज्ञान का उन्नयन करने और विद्यालय के दैनिक क्रियाकलापों में बाल-स्नेही कक्षा विधियों को अपनाने को प्रेरित किया। आशा है कि टी.एल.सी. के निरन्तर उपयोग से विद्यार्थियों के अधिगम के परिणामों की गुणवत्ता बढ़ेगी।

रुद्रेश एस. अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के यादगीर व कलबुर्गी जिला संस्थान का नेतृत्व करते हैं। उन्होंने गुलबर्गा विश्वविद्यालय से सामाजिक कार्य में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है और वे पिछले 13 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में कार्य कर रहे हैं। वे शिक्षकों व अधिकारियों की क्षमता निर्माण के साथ-साथ सरकारी सम्बन्धों के प्रबन्धन का कार्य भी सम्भालते हैं। उनसे rudresh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

शिक्षकों के सेवाकालीन पेशेवर विकास की पुनः संरचना : अध्यापन विषयक विषयवस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना

सौरव सोम

सेवारत शिक्षकों के पेशेवर विकास (टीचर प्रोफेशनल डेवलेपमेंट-टी.पी.डी.) की पुनःसंरचना के बारे में सोचना भारतीय या वैश्विक सन्दर्भ में कोई नई बात नहीं है । राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 (एन.सी.ई.आर.टी.1968) की रिपोर्ट में यह परिकल्पना की गई है कि भारत की नियति उसकी कक्षाओं में है जिससे यह पता चलता है कि कक्षा से देश की क्या अपेक्षाएँ हैं। इन अपेक्षाओं को साकार करने के लिए कई बहुस्तरीय प्रयास किए गए हैं। जो बात उभरकर सामने आई है वह यह है कि सेवा पूर्व और सेवाकालीन शिक्षकों के पेशेवर विकास की दशा में सुधार करना जरूरी है (एन.सी.टी.ई.,2009)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संचालन, क्रियान्वयन और मानव संसाधनों की कमी ने सेवाकालीन शिक्षकों के प्रशिक्षण पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। लेकिन मेरा दावा है कि यह कहानी का एक पहलू है।

दूसरे पहलू का पता लगाने के लिए यह जरूरी है कि हम शिक्षण को एक पेशे के रूप में और शिक्षक की पेशेवर आवश्यकताओं के बारे में अपनी समझ को सुनिश्चित करें। शुलमन (Shulman, 1986; Shulman 1987) ने शिक्षण के पेशे के ज्ञान के आधार के बारे में विस्तृत रूप से लिखा है। उन्होंने यह भी बताया है कि कैसे शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रम इन बातों पर ध्यानपूर्वक व बुद्धिमानी के साथ ध्यान देने में विफल रहे हैं। उनके अनुसार शिक्षक के ज्ञान के आधार को तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है: विषयवस्तु का ज्ञान, अध्यापन विषयक विषयवस्तु का ज्ञान-(पेडॉगॉजिकल कंटेंट नॉलेज - पी.सी.के.) और पाठ्यक्रम का ज्ञान (Shulman, 1986)।

इस लेख में पहले मैं पी.सी.के. का अर्थ, उसके तत्व, व टी.पी.डी. को संरचित करने में उनके निहितार्थ उजागर करने का प्रयास करूँगा और अन्त में सेवाकालीन शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रम में पी.सी.के. को सुनिश्चित करने के लिए कुछ सुझाव दूँगा।

पी.सी.के. क्या है?

अध्यापन विषयक विषयवस्तु का ज्ञान (पेडॉगॉजिकल कंटेंट नॉलेज) या पी.सी.के. न तो सिर्फ विषयवस्तु का ज्ञान है और न सिर्फ अध्यापन कला का ज्ञान, हालाँकि ये दोनों शिक्षकों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। पी.सी.के. किसी विशेष विषयवस्तु के लिए अध्यापन कला का ज्ञान है (Shulman, 1986)।

Cochran और उनके सहयोगियों के अनुसार अध्यापन विषयक विषयवस्तु का ज्ञान एक ऐसा ज्ञान है जो शिक्षकों के लिए अद्वितीय है और वास्तव में यह 'शिक्षण क्या है-इस बारे में बताता है (Cochran, DeRuiter, and King, 1993)। शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी नीति के अधिकतर विमर्श और पाठ्यक्रम यह मानकर चलते हैं कि कक्षा में पढ़ाने के लिए सामान्य अध्यापन कला का ज्ञान और विषयवस्तु का ज्ञान पर्याप्त है और इन विचारों के समर्थन में कुछ संकेत भी मिलते हैं।

उदाहरण के लिए, सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास कार्यक्रमों के प्रशिक्षक अक्सर अपनी शैक्षिक योग्यता और जिस स्तर पर वे शिक्षण कर रहे हैं उसके आधार पर चुने जाते हैं। मास्टर ट्रेनर को प्रतिभागियों की तुलना में, सामान्य मनोविज्ञान (या किसी अन्य विषय) में उच्च डिग्री प्राप्त होती है। या फिर शिक्षकों को पुनश्चर्या कोर्स के रूप में अपने विषयवस्तु का ज्ञान बढ़ाने के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों में भेजा जाता है। वैसे तो इन बातों का अपने क्षेत्र में महत्व है लेकिन कक्षा में पढ़ाने की दृष्टि से शिक्षकों के लिए इनका उपयोग सीमित है।

सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास कार्यक्रमों में शिक्षक जिस तरह के सरोकार सामने रखते हैं उनसे यह ध्वनित होता है कि इन कार्यक्रमों में अध्यापन विषयक विषयवस्तु का ज्ञान एकीकृत किया जाना चाहिए। अपने व्यक्तिगत अनुभव में मैंने यह देखा है कि शिक्षक रणनीतियों पर सुझाव माँगते हैं ताकि विद्यार्थी गतिविधियाँ कर सकें और पढ़ने, लिखने, समझने, गणित में समस्या सुलझाने या पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने की क्षमताओं का विकास कर सकें। शिक्षक ऐसी रणनीतियों के बारे में भी पूछते हैं जो परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन के लिए विद्यार्थियों को सक्षम कर सकें। कुछ शिक्षक एकदम बुनियादी स्तर पर चुनौतियों का सामना करते हैं जैसे विद्यार्थियों को लिखना, पढ़ना और गणित की मूल संक्रियाएँ कैसे सिखाई जाएँ।

अगले स्तर पर, शिक्षक यह पूछते हैं कि विद्यार्थियों को कोई विशेष अवधारणा कैसे सिखाई जाए : जैसे शायद शिक्षक यह जानना चाहें कि बच्चों को भिन्न, न्यूटन के गति के नियम, विकास, सजीव और निर्जीव चीजें, अणु, ग्रहों की गति, भूमण्डलीय ऊष्मीकरण, प्रदूषण, मौसम व जलवायु, उपनिवेशवाद, नव-उदारतावाद, विरोध सम्बन्धी अवधारणाएँ कैसे समझाई जाएँ। इन सवालों के जवाब देना शिक्षा

या विषय विशेष के विशेषज्ञ के लिए सम्भव नहीं है-सापेक्षता या क्वांटम यांत्रिकी का विशेषज्ञ शायद यह न बता पाए कि माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों को न्यूटन की गति के नियम कैसे सिखाए जाने चाहिए। इसी प्रकार से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का विशेषज्ञ शायद उसे पढ़ाने के तरीकों के बारे में सुझाव न दे पाए।

पी.सी.के. के तत्व और सेवाकालीन टी.पी.डी. में उनके निहितार्थ

पी.सी.के. को तीन घटकों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो यह कि विषय या उसकी सामग्री को ऐसे निरूपित किया जाए कि विद्यार्थी उसे समझ सकें। दिलचस्प बात यह है कि विषय को निरूपित करने का कोई एक तरीका नहीं है। इसलिए शिक्षकों के पास निरूपण के कई तरीकों की सूची होनी चाहिए। इन तरीकों के बारे में शोध साहित्य और "अभ्यास के ज्ञान" (Shulman, 1986; p: 9) से जाना जा सकता है। यहाँ कार्यरत शिक्षक सेवा पूर्व कार्यक्रमों के शिक्षक-विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर स्थिति में होते हैं क्योंकि उन्हें अपने कार्य-अभ्यास का अधिक समृद्ध ज्ञान होता है।

दूसरा घटक है किसी विशिष्ट विषय के प्रकरण या टॉपिक के बारे में विद्यार्थियों के मौजूदा विचारों के बारे में शिक्षक की समझ। दुनिया भर में पिछले चालीस वर्षों में कई शोध किए गए हैं और उन्हें दर्ज भी किया गया है जो यह बताते हैं सभी उम्र के विद्यार्थियों, शिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों में कई वैकल्पिक अवधारणाएँ होती हैं। इन वैकल्पिक अवधारणाओं की प्रकृति सार्वभौमिक होती है जिन्हें पारम्परिक शिक्षण के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। इनमें से कुछ तो विषयों के विकास के इतिहास में भी मिलते हैं और उन्हें अतीत में सही भी माना जाता रहा है। और भी दिलचस्प बात यह है कि कभी-कभी विशेषज्ञ भी इन विचारों को मानते हैं (Jammer, 1962)।

इससे आगे बढ़ने का एक तरीका यह है कि विशिष्ट प्रकरण की वैकल्पिक अवधारणा के इर्द-गिर्द शिक्षकों के साथ चर्चा की जाए। यह समझना महत्वपूर्ण है कि सभी सामाजिक वर्ग के विद्यार्थियों में वैकल्पिक अवधारणाएँ मौजूद हैं। किसी विशेष अवधारणा के बारे में वैकल्पिक अवधारणाओं का ज्ञान विद्यार्थियों की त्रुटियों, गलतियों और उनके आगे सीखने में अरुचि की ओर संकेत करता है।

इसके अतिरिक्त, वैकल्पिक अवधारणाओं की व्यापक समझ रखने से उचित अध्यापन कला और आकलन की संरचना में मदद मिलती है। यही हमें पी.सी.के. तीसरे घटक की ओर ले जाता है। इस घटक में विशिष्ट वैकल्पिक अवधारणाओं को सम्बोधित करने तथा और अधिक स्वीकृत अवधारणाओं का निर्माण करने के लिए उपयुक्त अध्यापन शैली की रूपरेखा बनाना आ जाता है। पहले घटक की ही तरह यहाँ भी अध्यापन का कोई एक तरीका कारगर नहीं हो सकता। विद्यार्थियों के लिए इन रणनीतियों के समूह या इनका संयोजन काम में लाया जा सकता है।

सेवाकालीन शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रम में पी.सी.के. सुनिश्चित करना

ऊपर चर्चित पी.सी.के. तीनों तत्वों को सुनिश्चित करने के लिए यहाँ पर मैं सेवाकालीन शिक्षकों के साथ जुड़ने का एक मॉडल प्रस्तावित कर रहा हूँ। जैसा कि मैंने ऊपर बताया किसी विशिष्ट अवधारणा या विषयवस्तु के लिए तीन सुस्पष्ट तत्व हैं : (अ) कई निरूपणों का ज्ञान, (ब) विद्यार्थियों के मौजूदा विचारों का ज्ञान, (स) विद्यार्थियों के मौजूदा विचारों पर अवधारणाओं के निर्माण के लिए अध्यापन कला की रणनीतियों का ज्ञान।

इन तीनों तत्वों के बारे में ज्ञान की संरचना शोध साहित्य और अभ्यास ज्ञान के द्वारा की जा सकती है। इस स्तर पर यह निष्कर्ष निकालना सरल लगता है कि सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा में इन तीनों तत्वों को सम्बोधित करना चाहिए। लेकिन मजे की बात यह है कि कहानी यहाँ समाप्त नहीं होती बल्कि यहीं से शुरू होती है। भारतीय सन्दर्भ में विभिन्न अवधारणाओं पर विद्यार्थियों के मौजूदा विचारों के बारे में प्रकाशित शोधों की संख्या सीमित है और टी.पी.डी. कार्यक्रमों में सीधे उपयोग के लिए उपयुक्त नहीं है। इसका एक कारण उनकी तकनीकी प्रकृति है और इसलिए वे कम पठनीय हैं तथा दूसरा कारण है एक दस्तावेज में तीनों तत्वों को अपर्याप्त रूप से सम्बोधित करना।

शिक्षकों के समृद्ध कक्षा अभ्यास सेवाकालीन टी.पी.डी. में एक संसाधन का कार्य करते हैं लेकिन इसमें भी एक सीमा है। वह सीमा यह है कि विद्यार्थियों ही की तरह शिक्षक भी एक ही प्रकरण पर कई वैकल्पिक अवधारणाएँ रखते हैं।

यहाँ पर मैं सेवाकालीन टी.पी.डी. में शामिल करने के लिए तत्वों का एक सेट प्रस्तावित कर रहा हूँ। ये तत्व उन संरचनात्मक प्रक्रियाओं से अलग नहीं हैं जिनका अनुसरण हम टी.पी.डी. के मौजूदा मॉडल में करते हैं लेकिन वे वर्तमान टी.पी.डी. में पी.सी.के. को शामिल करने के लिए प्रणालीगत और मौलिक परिवर्तन की बात करते हैं।

पी.सी.के. के विकास के लिए सेवाकालीन शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रम में कुछ मूलभूत बदलाव करने की आवश्यकता है जो ज्ञान स्रोत की प्रकृति के साथ संरेखित होने चाहिए। ऐसा करने के लिए इस खण्ड की शुरुआत में उल्लिखित तीन तत्वों पर टी.पी.डी. के ज्ञान-आधार का निर्माण करना होगा। यह ज्ञान-आधार कम से कम तीन स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है।

पहला है, ऐसे मौजूदा साहित्य का अध्ययन करना जो किसी एक प्रकरण/अवधारणा के लिए विशिष्ट हो और शिक्षकों व शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए पठनीय रूप में मॉड्युलर लेख का एक सेट तैयार करना। इनमें इन घटकों का समावेश होना चाहिए : (अ) कई निरूपणों का ज्ञान, (ब) विद्यार्थियों के मौजूदा विचारों का ज्ञान, (स) किसी प्रकरण/अवधारणा पर विद्यार्थियो के मौजूदा विचारों पर अवधारणाओं के निर्माण के लिए अध्यापन कला की रणनीतियों का ज्ञान। उदाहरण के लिए यदि हम प्राथमिक स्तर पर गणित में भिन्न के लिए अध्यापन विषयक विषयवस्तु के ज्ञान की बात करें तो हमें उपर्युक्त तीनों तत्वों पर सामग्री खोजनी होगी। यह कार्य अभिप्रेरित शिक्षकों के समूह या शिक्षक-प्रशिक्षकों द्वारा किया जा सकता है।

जब मॉड्यूल तैयार हो जाए तो उसे शिक्षकों के विकेन्द्रीकृत मंचों जैसे संकुल संसाधन केन्द्र और खण्ड संसाधन केन्द्र में पेश किया जा सकता है। इस स्तर पर, प्रतिभागी उस मॉड्यूल पर अन्तःक्रियात्मक रूप से विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे और उसे समृद्ध करने का प्रयास करेंगे : यह नहीं कि निष्क्रिय श्रोता बने रहें। सिद्धान्त की दृष्टि से देखें तो जब तक शिक्षकगण मॉड्यूल में विद्यार्थियों के सन्दर्भगत अनुभव और अपने कार्य-अभ्यास का समृद्ध ज्ञान शामिल नहीं करते तब तक वह मॉड्यूल मान्य नहीं माना जा सकता। शिक्षकों के साथ जुड़ने के लिए वातावरण ऐसा होना चाहिए जो अनुशासन की कठोर नौकरशाही धारणा से मुक्त हो और जहाँ कार्य करने का माहौल सशक्तीकरण को बढ़ावा देने वाला और अभिप्रेरित करने वाला हो।

जब शिक्षक मौजूदा ज्ञान के साथ परिचित हो जाएँ तो मौजूदा ज्ञान से संस्कारित इस नए अधिगम का परीक्षण करना महत्वपूर्ण है और इसके लिए शिक्षक प्रकरण पर क्रियात्मक शोध कर सकते हैं और तीनों तत्वों पर अपने अध्ययन से प्राप्त परिणामों को रिकॉर्ड कर सकते हैं। शिक्षक-प्रशिक्षक दो या दो से अधिक शिक्षकों के साथ मिलकर किसी विशिष्ट प्रकरण पर कार्य कर सकते हैं। क्रियात्मक शोध से जो सीख मिलेगी वह संकुल संसाधन केन्द्र और खण्ड संसाधन केन्द्र में होने वाले अगले कार्यक्रम के लिए संसाधन बन जाएगी। इन सीखों का दस्तावेजीकरण करके उन्हें शिक्षक मंचों में पेश करना चाहिए।

ध्यान देने वाली बात यह है कि इस तरह का गुणवत्तापूर्ण कार्य तभी हो सकता है जब शिक्षकों को सतत सहायता मिले और स्वैच्छिक आधार पर नियमित रूप से बैठकों के अवसर मिलें। इस प्रक्रिया में प्रलेखित जानकारियाँ और आरम्भिक चरण में तैयार किया गया मॉड्यूल-ये दोनों किसी विशेष सन्दर्भ में शिक्षकों के अध्यापन कला की सामग्री के ज्ञान का आधार बन जाएँगे-यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे प्रत्येक शैक्षिक वर्ष में दोहराया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

सेवाकालीन टी.पी.डी. में पी.सी.के. को एकीकृत करने का प्रयास शैक्षिक समुदाय के लिए नया नहीं है। भारतीय सन्दर्भ में हाल के नीतिगत विमर्शों और व्यक्तिगत अनुभवों से इंगित होता है कि पी.सी.के. के मजबूत तत्वों को सम्बोधित करने वाले मौजूदा टी.पी.डी. के प्रयासों को स्थापित करने की आवश्यकता है। इस लेख में पी.सी.के. के विचार को स्पष्ट करने, इसके तत्वों को समझने, सेवाकालीन टी.पी.डी. की संरचना में इन तत्वों का निहितार्थ बताने, और अन्त में टी.पी.डी. का एक मॉडल प्रस्तावित करने का प्रयास किया गया है।

विभिन्न राज्य स्तरों की पहलों में पी.सी.के. के कुछ तत्वों को एकीकृत करने के प्रयास किए गए हैं। उदाहरण के लिए उत्तराखण्ड राज्य में सेवाकालीन टी.पी.डी. के लिए तैयार किए गए विज्ञान मॉड्यूल में, विज्ञान की विशिष्ट अवधारणाओं से जुड़ी वैकल्पिक अवधारणाओं की समझ के एकीकरण के द्वारा, पी.सी.के. के कुछ तत्वों को एकीकृत किया गया (एस.सी.ई.आर.टी. उत्तराखण्ड 2016)। वैसे प्रस्तावित विचार को समग्रता के साथ टी.पी.डी. कार्यक्रम में बदलने के लिए इसकी संरचना और अवधारणा में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। टी.पी.डी. कार्यक्रमों में पी.सी.के. का एकीकरण करने का मतलब यह मानकर चलना है कि शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षक पहले से ही विषयवस्तु, अध्यापन कला, शिक्षा और समाज में शिक्षा के स्थान के बारे में बहुत अच्छी समझ रखते हैं।

लगता है कि विद्यालयी शिक्षा की वर्तमान स्थिति और टी.पी.डी. के कार्यक्रम इस लेख में रखे गए प्रस्ताव को बाधित करते हैं। इसके समाधान का एक तरीका तो यह है कि पी.सी.के. के संवर्धन के लिए सम्पूर्ण सेवाकालीन टी.पी.डी. पर विचार किया जाए और इसलिए जब आवश्यकता पड़े तब अन्य क्षेत्रों से ज्ञान प्राप्त किया जाए। सेवाकालीन टी.पी.डी. को विकेन्द्रीकृत, अनौपचारिक, नियमित, सुसंगत और शिक्षकों के जीवन के लिए प्रासंगिक बनाने की आवश्यकता है। साहित्य में मौजूदा ज्ञान का आधार, शिक्षक-प्रशिक्षकों की विशेषज्ञता और शिक्षकों के कार्य-अभ्यास के ज्ञान के बीच सम्बन्ध स्थापित करके उसका लाभ उठाना अधिक महत्वपूर्ण है। यह सम्बन्ध शिक्षण समुदाय के लिए नए ज्ञान के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा। अन्त में, सेवाकालीन टी.पी.डी. की क्षमता पहचानना आवश्यक है जो सही मायनों में राष्ट्र की नियति के निर्माण की दिशा में एक कदम बढ़ाना है क्योंकि 45 वर्ष से भी पहले भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में इसकी कल्पना की गई थी।

References

- Cochran, K. F., DeRuiter, J. A., & King, R. A. (1993). Pedagogical content knowledge: An integrative model for teacher preparation. Journal of Teacher Education, 44(4), 263–272.
- Jammer, M. (1962). *Concepts of force*. USA: Harper Torchbook.
- NCERT (1968). *Report of the Education Commission, 1964-66: Education and National Development*. New Delhi: National Council of Educational research and Training.
- NCTE (2010). National Curriculum Framework for Teacher Education: Towards Preparing Professional and Humane Teacher. New Delhi: National Council for Teacher Education.
- SCERT, Uttarakhand (2016). Arjan: In-service Teacher Training Module 2016-17 for Science Class 6-8. Dehradun: State Council of Educational Research and Training.
- Shulman, L. (1986). Those who understand: Knowledge growth in teaching. Educational Researcher, 15(1), 4–14.
- Shulman, L. (1987). Knowledge and teaching: Foundations of the new reform. Harvard Educational Review, 57(1), 1–22.

सौरव सोम अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में कार्य करते हैं। उनसे saurav.shome@azimpremjifoundation.org अथवा shomesaurav@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

समकालीन भारत में विद्यालय के शिक्षक की भूमिका और चुनौतियाँ

आसिफ अख्तर

परिचय :

आज दुनिया के कई हिस्सों में तेजी के साथ सामाजिक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। इस बदलाव से कई व्यवसायों की कार्यात्मक गतिशीलता में परिवर्तन आया है। शिक्षण एक ऐसा ही व्यवसाय है। शिक्षक बदलते हुए समय के साथ अपनी जिम्मेदारियाँ तो सम्भाल ही रहे हैं, साथ में वर्तमान समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए एक बार फिर अपना मुकाम बना रहे हैं। हमारे देश में, मुख्य रूप से 1990 के बाद से, ऐसे परिवर्तन आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति से प्रेरित रहे हैं। उदारवादी नीति के कारण भारतीय समाज में ऊर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता बढ़ी है। इसने युवा पीढ़ी को कई प्रकार से प्रभावित किया है। शिक्षकों ने न केवल अपनी भूमिका में हो रहे बदलावों को समझा है बल्कि उनसे निपटने के तरीकों का विकास भी किया है। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए इस लेख में भारतीय समाज में शिक्षकों की भूमिका और चुनौतियों को संक्षिप्त रूप से समझने का प्रयास किया गया है।

हम यह तो जानते हैं कि शिक्षण एक जटिल गतिविधि है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें एक नियंत्रित माहौल प्रदान किया जाता है ताकि शिक्षक विद्यार्थियों में पूर्व-निर्धारित अधिगम का विकास कर सकें। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में वांछनीय परिवर्तन लाना है। पारम्परिक रूप से शिक्षण शब्द का अर्थ है शिक्षक-केन्द्रित गतिविधि, यानी जिसमें शिक्षक को ज्ञान का स्रोत और विद्यार्थी को उस ज्ञान का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता माना जाता है। यही कारण था कि शिक्षक को अधिकारपूर्ण और अपराजेय माना जाने लगा।

पिछले कुछ वर्षों में शिक्षकों की पारम्परिक भूमिका को फिर से परिभाषित किया गया है। शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (NCFTE), की रूपरेखा 2009 के अनुसार शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को केवल ज्ञान के प्राप्तकर्ता के रूप में न देखकर अधिगम के सक्रिय प्रतिभागियों के रूप में देखें। शिक्षकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों के लिए नाटक, प्रायोजना, चर्चा, संवाद, अवलोकन, शैक्षिक भ्रमण जैसे क्रियाकलापों का आयोजन करें ताकि उन्हें विद्यार्थी-केन्द्रित, गतिविधि आधारित व सहभागी अधिगम के अनुभव प्राप्त हो सकें और उत्पादक कार्यों के साथ शैक्षिक अधिगम का एकीकरण हो जाए। इस प्रकार यह ज्ञान के निर्माण का समर्थन करता है, न कि ज्ञान के शिक्षण का, जैसा कि Dwyer, et al (1991) ने कक्षा में ज्ञान के उपागमों के बारे में बताते हुए सुझाया है। इस मॉडल में शिक्षक व विद्यार्थी दोनों के लिए मुख्य शब्द है सहयोग। नीचे दिए गए आरेख में इन दोनों तरीकों का अन्तर दर्शाया गया है:

	ज्ञान का शिक्षण	ज्ञान का निर्माण
कक्षा गतिविधि	शिक्षक केन्द्रित (प्रबोधात्मक)	विद्यार्थी केन्द्रित (अन्तःक्रियात्मक)
शिक्षक की भूमिका	तथ्य बताने वाला (हमेशा विशेषज्ञ)	सहयोगी (कभी-कभी शिक्षार्थी)
विद्यार्थी की भूमिका	श्रोता (हमेशा विद्यार्थी)	सहयोगी (कभी-कभी विशेषज्ञ)
शैक्षणिक बल	तथ्य (याद करना)	सम्बन्ध(पूछताछ और आविष्कार)
ज्ञान की अवधारणा	तथ्यों का संग्रह	तथ्यों का रूपान्तरण

	ज्ञान का शिक्षण	ज्ञान का निर्माण
सफलता का प्रदर्शन	परिमाण	समझने की गुणवत्ता
आकलन	नॉर्म सन्दर्भित (बहुविकल्पी आइटम)	मानदण्ड सन्दर्भित (पोर्टफोलियो और प्रदर्शन)
तकनीकी प्रयोग	(ड्रिल और अभ्यास)	संचार (सहयोग, जानकारी उपागम, अभिव्यक्ति)

Dwyer et al, 1991

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में शिक्षकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे बच्चों के अधिगम के लिए इस तरह से सुगमकर्ता बनें जिससे बच्चों को ज्ञान और उसके अर्थ के निर्माण में मदद मिले। एक तरफ शिक्षक को ज्ञान के सह-निर्माता के रूप में देखा जाता है और दूसरी ओर पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण में भागीदार के रूप में।

लेकिन ऐसी बहुमुखी भूमिकाओं के लिए पाठ्यक्रम, विषय-सामग्री और अध्यापन कला के साथ-साथ समुदाय, स्कूल संरचना और प्रबन्धन के बारे में व्यापक समझ की भी आवश्यकता होती है। सहयोगी और सुगमकर्ता की शैक्षणिक भूमिकाओं के अलावा आज के शिक्षक शिक्षार्थी, सलाहकार, प्रबन्धक, आकलनकर्ता और नवप्रवर्तक के रूप में भी कार्य करते हैं।

एक शिक्षार्थी के रूप में शिक्षक

शिक्षक को एक ऐसा शिक्षार्थी माना जाता है जो जीवन भर सीखता रहता है। भारत और अन्य स्थानों में शिक्षण में पेशेवर डिग्री प्राप्त करने के बाद विद्यालयों में शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं। नियुक्ति के बाद शिक्षकों को विभिन्न प्रशिक्षण दिए जाते हैं जो सरकारी विद्यालयों में अनिवार्य हैं लेकिन निजी स्कूलों में वैकल्पिक हैं। पर सवाल यह है कि क्या सेवापूर्व और सेवाकालीन ये प्रशिक्षण शिक्षकों में आजीवन सीखने की भावना पैदा कर पाते हैं। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET), ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड, के संकाय के एक वरिष्ठ सदस्य पी.सी. चन्दोला ने बताया कि इस वर्ष PINDICS (Performance Indicators of Elementary School Teachers यानी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के प्रदर्शन संकेतक) को सेवाकालीन शिक्षकों के प्रशिक्षण का अनिवार्य घटक बनाया गया है। उन्होंने कहा कि प्रशिक्षण मॉड्यूल में बताए गए चार संकेतकों में से एक स्व-विकास है जो शिक्षकों के स्व-अधिगम पर केन्द्रित है। उन्होंने स्टीव जॉब्स के प्रसिद्ध शब्द 'भूखे रहें, बेवकूफ रहें' उद्धृत किए। उन्होंने आगे यह भी कहा कि समय के साथ पाठ्यक्रम, विषयवस्तु और मान्यताएँ बदल जाती हैं इसलिए सीखने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

इसके विपरीत सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों से लैस विद्यार्थी कक्षा में शिक्षकों के सामने बड़ी चुनौती पैदा कर रहे हैं। पटना, बिहार में स्थित भारत की एक बड़ी निजी विद्यालयों की शृंखला के एक विद्यालय में कार्यरत भूगोल शिक्षक सलाहुद्दीन अहमद का कहना है कि वर्तमान में इंटरनेट तक आसान पहुँच ही वह चुनौती है जिसे विद्यार्थी अपने शिक्षकों के सामने रख रहे हैं। परिणामस्वरूप विषयवस्तु और अध्यापन कला के कई उपकरणों का कम ज्ञान रखने वाले शिक्षकों का अपनी कक्षाओं पर नियंत्रण कम होता जा रहा है। वे आगे कहते हैं कि अगर कोई विद्यार्थी कुछ पूछता है और उसके बारे में उसे जानकारी मिल जाती है तब कक्षा में कोई गड़बड़ी नहीं होती। टोरंटो विश्वविद्यालय के ओंटारियो इंस्टीट्यूट फॉर स्टडीज के अवकाश प्राप्त प्रतिष्ठित प्रोफेसर माइकल फुलन ने कई साल पहले इस स्थिति की भविष्यवाणी कर दी थी और शिक्षकों के पेशेवर अधिगम के लिए एक शक्तिशाली साधन के रूप में प्रोफेशनल लर्निंग कम्यूनिटी (पी.एल.सी.) के गठन की बात कही थी।

सलाहकार के रूप में शिक्षक

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों पर राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र यह कहता है कि समकालीन भारत में किशोरावस्था का करीबी अध्ययन कई नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर रहा है जो संक्रमण काल में व्यक्तिगत एवं सामाजिक अशान्ति का परिणाम है। आगे यह कहता है कि शिक्षकों के लिए बचपन और किशोरावस्था की सामाजिक रचना के साथ जुड़ना जरूरी है। इन सरोकारों को देखते हुए शिक्षक की कैसी भूमिका पर विचार किया जा सकता है? तकनीकी तक आसान पहुँच के कारण विद्यार्थियों की असुरक्षितता अपनी चरम सीमा पर है। मुम्बई के मालखुर्द रेलवे स्टेशन के पास के एक नगरपालिका विद्यालय के शिक्षक मुल्ला आदम का कहना है कि आज के विद्यार्थी को साइबर कैफे में यौन वीडियो बड़ी आसानी से और सस्ते में देखने को मिल जाते हैं। पहले तो सिनेमाघरों में 18 साल से कम उम्र के बच्चों पर वयस्क फिल्में देखने पर प्रतिबन्ध था। लेकिन तकनीकी के दुरुपयोग के कारण ये सीमाएँ टूट गई हैं। उन्होंने कहा कि एक शिक्षक के रूप में, आज विद्यालयों में ऐसे मुद्दों पर खुली बातचीत और विद्यार्थियों को सलाह देना अनिवार्य हो गया है। उनके अनुसार विद्यालय के विद्यार्थियों को तकनीकी का उपयोग करने के बारे में संवेदनशील बनाने की बड़ी जरूरत है ताकि किशोरों की अपराध दर को कम करने में मदद हो सके।

आइए, अब हम यह विचार करें कि अन्य विद्यालयों में शिक्षकों को सलाह देने के कितने अवसर मिलते हैं। सरकारी विद्यालयों की तुलना में निजी विद्यालयों में इस बारे में कुछ सीमाएँ हैं। सलाहुद्दीन कहते हैं कि निजी विद्यालयों में अब प्रक्रियाओं के मशीनीकरण पर ध्यान दिया जाता है। स्मार्ट कक्षाओं के आने से विद्यार्थी और शिक्षकों के सम्बन्धों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। विद्यार्थियों के साथ अन्तःक्रिया कम हो गई है। इससे पहले शिक्षकों को व्यक्तिगत और सामाजिक अशान्ति का सामना कर रहे विद्यार्थियों से बातचीत करने और सलाह देने के अवसर मिलते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है क्योंकि कुछ विद्यालय बहुराष्ट्रीय निगमों की तरह कार्य करते हैं।

प्रबन्धक के रूप में शिक्षक

प्रबन्धक उसे कहते हैं जो निर्णय लेता हो, और इतना सक्षम हो कि परिस्थिति की माँग के अनुसार यह आकलन कर सके कि कैसे बदलना है। पहले यह तीन चरणों तक सीमित था अर्थात शिक्षण के पहले, शिक्षण और शिक्षण के बाद, लेकिन आजकल इसमें कई

गैर-शैक्षणिक गतिविधियाँ शामिल हो गई हैं। एन.सी.एफ. 2005 में इस वास्तविकता के बारे में अफसोस जताया गया है कि विद्यालय के शिक्षकों को जिला अधिकारियों द्वारा गैर-शैक्षणिक कार्य जैसे ग्रामीण विकास योजनाओं, राष्ट्रीय जनगणना, चुनाव कार्य और अन्य अभियानों के लिए आँकड़े इकट्ठा करने को कहा जाता है जिसकी वजह से उन्हें कक्षा से दूर रहना पड़ता है। यह अप्रत्यक्ष रूप से विद्यालय के शिक्षक के गैर-प्रदर्शन को वैधता प्रदान करता है और पेशेवर रूप में कमजोर करता है।

इसी तरह के सरोकारों के बारे में बताते हुए शिव दत्त तिवारी, उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले के चौरीकाली खान गाँव के मुख्य अध्यापक उन विद्यार्थियों के साथ सहानुभूति जताते हैं जो पढ़ने के लिए ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ पार करके विद्यालय आते हैं लेकिन वहाँ अपने शिक्षकों को दर्जनों रजिस्टर भरते हुए देखते हैं। उनका कहना है कि शिक्षकों की गैर-शिक्षण सम्बन्धी गतिविधियाँ विद्यार्थियों का समय बरबाद कर रही हैं और उनके भविष्य को खतरे में डाल रही हैं। ऐसे और काम भी हैं जैसे दोपहर के भोजन के लिए सामान खरीदना, स्वास्थ्य की गोलियाँ देना, विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति की राशि जमा करना और निकालना, संकुल संसाधन केन्द्रों से पाठ्यपुस्तकें लेकर आना, विद्यार्थियों का आधार कार्ड नामांकन, निर्माण और चुनाव कार्य, प्रशिक्षण कोर्स में भाग लेना आदि। विद्यालय की शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट का मुख्य कारण यही है कि शिक्षकों को गैर-शिक्षण सम्बन्धी गतिविधियों में लगा दिया जाता है और सर्व शिक्षा अभियान के आने के बाद तो यह काफी बढ़ गया है।

आकलनकर्ता के रूप में शिक्षक

बच्चों के निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम (आर.टी.ई.) के कार्यान्वयन के बाद कई राज्यों के शिक्षकों का कहना है कि 'अनुत्तीर्ण न करने' और 'शारीरिक दण्ड न देने' की नीतियों ने उनके व्यावसायिक अधिकारों का अतिक्रमण किया है और उनके कार्य को ज्यादा कठिन बना दिया है। दुर्भाग्य से 'अनुत्तीर्ण न करने' और सी.सी.ई. की व्याख्या शिक्षकों की कल्पना पर छोड़ दी गई है। कई शिक्षक 'अनुत्तीर्ण न करने' का मतलब अधिगम के परिणामों का आकलन न करना मानते हैं। यह एक व्यापक मान्यता है कि इन प्रावधानों ने अधिगम के परिणाम कमजोर कर दिए हैं।

सलाहुद्दीन का कहना है कि 'अनुत्तीर्ण न करने' की नीति ने शिक्षक और विद्यार्थी दोनों की जवाबदेही कम कर दी है। इससे पहले विद्यार्थियों पर परीक्षा में उत्तीर्ण होने का दबाव हुआ करता था, पर आज शैक्षिक और गैर-शैक्षिक क्षेत्रों में जाँच के आधार पर ग्रेडिंग की जाती है। विद्यालय-आधारित ग्रेडिंग 70 प्रतिशत है जिसमें शिक्षक द्वारा पक्षपात होता है क्योंकि विद्यालय-प्रबन्धन और माता-पिता दोनों यही चाहते हैं कि विद्यार्थियों को 10 सी.जी.पी.ए. मिले। इतना उच्च ग्रेड पाने वाले कई विद्यार्थियों में विषय की मूलभूत समझ कम होती है और जब वे उच्च माध्यमिक कक्षाओं में पहुँचते हैं तो इस तरह का आकलन फर्जी बनकर रह जाता है। तब माता-पिता भारी फीस देकर अपने बच्चे को कोचिंग इंस्टीट्यूट में भर्ती करवाते हैं और इतना खर्चा करने के बाद भी आई.आई.टी. परीक्षा की सफलता दर केवल 5 प्रतिशत है।

नवप्रवर्तक के रूप में शिक्षक

परम्परागत रूप से, शिक्षक विषय सामग्री का ज्ञान अपने कॉलेज की शिक्षा और विद्यालयों में प्रयुक्त पाठ्यपुस्तक के माध्यम से प्राप्त करते थे। पाठ्यपुस्तक, श्यामपट्ट, चॉक और कुछ चार्ट व मॉडल शिक्षण-अधिगम सामग्री के रूप में प्रयोग किए जाते थे। लेकिन आज, तकनीकी के जानकार शिक्षकों ने शिक्षण-अधिगम सामग्री को एक नया रूप दे दिया है। एन.सी.एफ. 2005 का कहना है कि तकनीकी को शैक्षिक कार्यक्रम के विशाल लक्ष्य और प्रक्रियाओं के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। अल्मोड़ा के पास महतगाँव के माध्यमिक विद्यालय के एक शिक्षक सुरेश चन्द्र ने हाल ही में सूर्य और चन्द्र ग्रहण पर एनीमेशन के साथ पॉवर पॉइंट बनाया ताकि वे अपने विद्यार्थियों को विद्यालय के कम्प्यूटर पर यह अवधारणा समझा सकें। इस एनीमेशन ने विद्यार्थियों को न केवल सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा के साथ ग्रहण के कारणों का सम्बन्ध देखने में मदद की बल्कि इस अमूर्त अवधारणा को समझने भी उन्हें आसानी हुई। अधिगम के इन सकारात्मक परिणामों से प्रेरित होकर कपड़े के टुकड़ों और छड़ियों की सहायता से हिमालय पर्वतमाला दिखाने के लिए एक मॉडल बनाया गया ताकि पहाड़ों, घाटियों, हिमनदों (ग्लेशियरों), सहायक नदियों, डेल्टा, मुहाने आदि के बारे में समझाया जा सके।

चुनौतियों का निवारण

- एन.सी.एफ.टी.ई. में शिक्षक के जिस रूप की कल्पना की गई है उसके लिए सेवा पूर्व प्रशिक्षण को पूरी तरह से बदलना जरूरी है। विद्यालयों की सीमित समझ और सर्टिफिकेट पर आधारित परीक्षाएँ शिक्षक-शिक्षा के लिए हानिकारक हैं और इसलिए अगर गहनता व समयावधि की कमी के लिए इसकी आलोचना की जाती है तो वह ठीक ही है। एक राष्ट्र के रूप में हमें स्वयं को इस बात के लिए प्रतिबद्ध करना होगा कि इस पेशे में सर्वश्रेष्ठ लोग ही आएँ।
- बच्चे के समय और जीवन को समानुभूति और ध्यान के साथ समझना चाहिए। इसके लिए धुन का पक्का और जुनून का होना दोनों जरूरी हैं। विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में जिन चुनौतियों का सामना करते हैं उनसे निपटने में विद्यार्थियों की मदद करने के लिए यह जरूरी है कि शिक्षक में बचपन और किशोरावस्था की गहरी समझ हो।

- जागरूकता और आजीविका के अवसरों की कमी को प्रतियोगी परीक्षाओं की दौड़ के लिए जिम्मेदार माना जाता है। विद्यालय बच्चे की शिक्षा को तो प्रमाणित करते हैं लेकिन उनके लिए एक सम्माननीय और अच्छा जीवन सुनिश्चित नहीं कर पाते, जिसकी गारंटी हमारे देश का संविधान देता है। विद्यालय के विद्यार्थियों के सामने ऐसे रास्ते खोलने चाहिए जिन पर चलकर वे अपने कौशल विकसित कर पाएँ।

- आर्थिक और तकनीकी प्रगति के बावजूद बड़ी संख्या में विद्यार्थी स्कूल छोड़ रहे हैं। एन.सी.एफ. 2005 में सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि-जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक व अन्य समुदायों, लड़कियों तथा अधिगम की भिन्न प्रकार की जरूरत वाले बच्चों के सामाजिक बहिष्करण पर चिन्ता प्रकट की गई है। शिक्षकों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हर सामाजिक, सांस्कृतिक या धार्मिक पृष्ठभूमि वाले बच्चे को शिक्षा मिले।

- शिक्षकों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन विद्यालय में उनके द्वारा शिक्षण के लिए दिए गए समय के आधार पर किया जा सकता है। गैर-शिक्षण गतिविधियों को पूरी तरह से हटा देना चाहिए। ताकि केवल बच्चों को पढ़ाने और उनके जीवन को बदलने का जुनून ही शिक्षकों का एकमात्र उद्देश्य बना रहे।

- चिन्तनशील पेशेवर के रूप में शिक्षक के विकास को उनकी पेशेवर सफलता का शिखर माना जा सकता है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब उनकी स्वायत्तता को चुनौती न दी जाए। एन.सी.एफ. 2005 में कहा गया है कि सीखने के ऐसे माहौल के लिए, जो बच्चों की विविध जरूरतों को पूरा करे, शिक्षक की स्वायत्तता जरूरी है। जितने अवसर, स्थान, स्वतंत्रता, लचीलेपन और सम्मान की जरूरत विद्यार्थी को होती है उतनी ही शिक्षक के लिए भी आवश्यक है।

References:

- *National Curriculum Framework for Teacher Education*. New Delhi: National Council for Teacher Education, 2009-10.
- Fullan, Michael and Gerry Smith. "http://michaelfullan.ca/wp-content/uploads/2016/06/13396041050.pdf." December 1999. *michaelfullan.ca.* 12 September 2016.
- *National Curriculum Framework 2005*. New Delhi: National Council of Educational Research and Training, 2009.
- "http://www.edu.gov.on.ca/eng/literacynumeracy/inspire/research/PLC.pdf." October 2007. *www.edu.gov.on.ca. 12 September 2016.*
- *Position Paper National Focus Group Curriculum, Syllabus and Textbooks.* New Delhi: National Council of Educational Research and Training, 2006.
- Ramachandran, Vimala. "The Position of teachers in our education system." *Learning Curve* (2016): 50-52.
- Teacher- Role and Development. New Delhi: Indira Gandhi National Open University, 2004.

आसिफ अख्तर अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड के सदस्य हैं। इससे पहले वे एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक दशक से भी अधिक समय तक जीवविज्ञान के शिक्षक रह चुके हैं। अपने स्वैच्छिक कार्यों के अन्तर्गत वे बच्चों के लिए पुस्तकालय और 'नॉलेज सीकर्स' व 'बायो थिंकर्स' जैसे युवा संगठनों की स्थापना कर चुके हैं। वे विज्ञान-शिक्षक-शिक्षा और नेतृत्व के क्षेत्र में कार्य करने में रुचि रखते हैं। उनसे asif.akhtar@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल

विकास के माध्यम से शिक्षकों का सशक्तीकरण

भवानी रघुनन्दन

यह संयोग ही था कि मैं शिक्षिका बन गई। हुआ यूँ कि मैं अपने बेटे को स्कूल में भर्ती कराने गई थी और वहाँ पता चला कि मुझे स्कूल का समय खत्म होने तक उसका इन्तजार करना पड़ेगा और फिर उसे अपने साथ ही घर लेकर जाना होगा। तब मैंने सोचा कि क्यों न इस समय का सदुपयोग किया जाए और शिक्षा के क्षेत्र में कुछ योगदान दिया जाए। और इस तरह शिक्षा के साथ मेरे 32 वर्षों के साथ की शुरुआत हुई।

और हाँ, मैंने बहुत सोच-समझकर सिर्फ 'स्कूलिंग' शब्द का प्रयोग न करके 'शिक्षा' शब्द का चयन किया है। शिक्षण में प्रवेश करने के बाद मुझे पता लगा कि मैं वास्तव में बच्चों को शिक्षित करने की प्रक्रिया की ओर उसकी सारी बारीकियों के साथ ही आकर्षित हुई थी। मुझे इस बात का एहसास हुआ कि यह कार्य कितना महान और महत्वपूर्ण था। यह मात्र नौकरी नहीं थी, वृत्ति नहीं थी-यह तो प्रतिबद्धता से कहीं बढ़कर थी-वाकई यह एक आह्वान था।

वैसे तो मैं इस बात को लेकर बहुत आश्वस्त थी मुझमें बच्चों को पढ़ाने की क्षमता है-आखिर मेरे पास एक बढ़िया स्नातकोत्तर डिग्री और ऊपर से बी.एड. की डिग्री भी थी-लेकिन जल्द ही मुझे लगने लगा कि क्या वाकई ये डिग्रियाँ पढ़ाने के लिए काफी हैं। मुझे जरा भी अन्दाजा नहीं था कि एक पेशेवर शिक्षक बनने के लिए कितना कुछ चाहिए, उदाहरण के लिए, धैर्य (जो मुझमें कभी था ही नहीं), सहनशक्ति (बहुत कम थी), सम्प्रेषण कौशल (हालाँकि मैं अच्छी अँग्रेजी बोल लेती थी लेकिन उसे और बेहतर करने की जरूरत थी); इस तरह से जरूरतों की सूची अन्तहीन थी। अब मेरी समझ में आ रहा था कि पाठ पढ़ाने के लिए बहुत मेहनत करनी होगी। तो जो बात हल्के से अति आत्मविश्वास के शुरू हुई थी वह अब धीरे-धीरे घबराहट में बदल रही थी कि मैं विद्यार्थियों का सामना कैसे करूँगी और अन्त में मैं निराश सी होने लगी।

अब मैं यह समझ गई थी कि मुझे अपने शिक्षण कौशल को पैना करने की जरूरत है!

फिर मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। ध्यान देने वाली बात यह है कि यह इंटरनेट, गूगल और शिक्षक प्रशिक्षण से पहले का जमाना था। पढ़ने का मतलब था उन लेखों को पढ़ना जो उपलब्ध थे, तो मैं उन्हें पढ़ती गई, वैसे इस प्रकार के लेख भी बहुत कम ही थे। उन दिनों लोग अधिक आलोचना नहीं करते थे। शिक्षकगण मंच पर आसीन ज्ञानी माने जाते थे। वे सब कुछ 'जानते' थे। वे बोलते थे और बच्चे उसका अनुसरण करते थे। लेकिन क्या वे सही बातें कह रहे थे? वे भी यही मानते थे कि हर बच्चे को पढ़ाने का एक ही तरीका है।

इस दौरान समाज बदल रहा था। माता-पिता अधिक शिक्षित और विशिष्टता प्राप्त थे, अतः शिक्षकों से उनकी अपेक्षाएँ बढ़ रही थीं। वे जानते थे कि उन्हें क्या चाहिए। वे महत्वाकांक्षी थे और इस बात को सीख रहे थे कि उन्हें अपने बच्चों को क्या देना चाहिए, ज्यादा कमाई, पढ़ने और यात्राओं के द्वारा बहुत सारी जानकारियाँ उजागर हो रही थीं। पीढ़ी एक्स (Gen X) आ चुकी थी-यानी 60 के दशक में पैदा हुए लोगों के बच्चे। माता-पिता दोनों काम पर जाने लगे थे और बहुत से बच्चे 'लैचकी (latchkey)' बच्चे बन गए थे अर्थात माता-पिता के काम पर जाने के कारण वे घर पर अकेले होते थे, स्वतंत्र थे और भौतिक सुख-साधन सम्पन्न थे। उनमें धैर्य की कमी थी, बड़े अध्याय पढ़ने का समय उनके पास नहीं था, सारी जानकारी महत्वपूर्ण बिन्दुओं (bullet point) के रूप में चाहते थे और उन्होंने जो चाहा वही उन्हें मिला-अपने कम्प्यूटर पर एक क्लिक से सारी जानकारी मिल जाती थी, कट-पेस्ट की संस्कृति के साथ अहंकार भी विकसित हुआ।

इस पूरे परिदृश्य में मंच पर आसीन ज्ञानी कहाँ था? वह तो समय के साथ नहीं बदला। जिस समाज में बच्चों को यह सिखाया जाता था कि शिक्षक जो कुछ कहे उसे मान लेना चाहिए, उस समाज के बच्चों को पढ़ाने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए उनके शिक्षकों ने जिन तरीकों का इस्तेमाल किया था, वे प्रयोग में लाए जा चुके थे और परीक्षित थे। उन दिनों प्रश्न पूछने को या तो अहंकार के रूप में लिया जाता था या यह माना जाता था कि शिक्षक के ज्ञान पर सन्देह किया जा रहा है।

इस रवैये को बदलने का समय आ चुका था। अब शिक्षक विद्यार्थियों को 'दोष' नहीं दे सकते थे या यह नहीं कह सकते थे कि, 'ओह, हमारे जमाने में...'। क्योंकि ऐसा करने पर तीन उँगलियाँ वापस उनकी ओर इशारा करतीं। अब उन्हें अलग तरह के माता-पिता और विद्यार्थियों का सामना करना था और वे इसके लिए प्रशिक्षित नहीं थे, इस तथ्य के बावजूद कि वे खुद ही बदल गए थे!

जब मैंने एक प्रसिद्ध स्कूल की प्रधानाध्यापिका के रूप में कार्यभार सम्भाला तब मैं वे सारी बातें लागू कर पाई जो मेरी दृष्टि में सही थीं। दूसरे शब्दों में शिक्षकों को नए सिरे से सब कुछ सीखने की जरूरत थी।

तो इसके लिए सबसे पहले मैंने खुद को प्रशिक्षित किया। मुझे हमेशा से यही लगता है कि अपने वेतन का कम से कम 10 प्रतिशत हिस्सा अपने स्वयं के सुधार के लिए खर्च करना चाहिए जैसे किताबें खरीदना, कोर्स में दाखिला लेना इत्यादि। इसलिए मैं हर साल अपने खुद के पैसों से किसी एक कोर्स में भाग लेने लगी। वापस आकर मैं यदा-कदा अपनी सीखी हुई बातों और पढ़ी हुई सामग्री की स्लाइड बनाती और स्टाफ की बैठकों में उन्हें प्रस्तुत करती। मैंने 10 प्रतिशत सफलता की अपेक्षा की और मैं जानती थी कि इससे 20 प्रतिशत लोग प्रभावित होंगे।

विद्यालय में शिक्षकों के लिए मैंने पहला प्रशिक्षण आयोजित किया। इसका उद्देश्य उन्हें इस बात का एहसास दिलाना था कि उन्हें तकनीकी से डरने की जरूरत नहीं, वही डर जो विभिन्न प्रकार से सामने आता था, जैसे प्रतिरोध ('ओह, हमें इसकी क्या जरूरत है-इतने साल हमने बिना इसके भी काम चलाया ही है'), से अनिच्छा ('यह कठिन है, जटिल है' और 'हम इस उम्र में यह सब कैसे सीख सकते हैं') तक। इसके अलावा एक दृढ़ धारणा यह भी थी कि कम्प्यूटर का सम्बन्ध तो कम्प्यूटर विज्ञान विभाग से है। इस धारणा को बदलने के लिए मैंने कहा कि कम्प्यूटर स्कूल के हैं और हालाँकि कम्प्यूटर विज्ञान के विद्यार्थियों को इसका प्रयोग करने के लिए प्राथमिकता दी जाएगी लेकिन कोई भी शिक्षक अपने खाली समय में इसका प्रयोग कर सकता है। इसके बाद एक नोटिस जारी किया गया कि निम्नलिखित शिक्षक अपने प्रश्नपत्र एक फ्लॉपी के रूप में जमा करेंगे जो प्रिंट के लिए तैयार हो। पहले मैंने अँग्रेजी जैसे विषय चुने जिनमें विशेष अक्षर या चित्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती। नोटिस में यह भी कहा गया कि कम्प्यूटर विज्ञान के शिक्षक दूसरे शिक्षकों को स्कूल के बाद कम्प्यूटर सिखाएँगे। इस बात पर तो हड़कम्प मच गया। 'हम नहीं सीख सकते, हम टाइप नहीं कर सकते, नहीं कर सकते... नहीं कर सकते...!' मैंने अपने कान बन्द कर लिए और कहा,'अगर मैं यह काम कर सकती हूँ तो आप भी जरूर कर सकते हैं।' शुरू में सन्देह और डर की भावना जरूर थी लेकिन फिर यह सम्भव हो गया...शायद मेरी लोकप्रियता की कीमत पर। अस्तु, जब प्रश्नपत्र छपे तो वे सभी बहुत उत्साहित नजर आए। ये प्रश्नपत्र हस्तलिखित प्रश्नपत्रों से अधिक स्पष्ट व साफ थे और इनमें कागजों का उपयोग भी कम हुआ। मैं उनमें गर्व की भावना भी देख पाई क्योंकि वे अपने को सशक्त महसूस कर रहे थे और उनमें स्वामित्व की भावना भी उत्पन्न हुई। उन्होंने एक नई चीज सीखी थी और वे कुछ ऐसा कर रहे थे जो दूसरे कई लोग नहीं कर सकते थे तथा मैं बिलकुल इसी बात की उम्मीद कर रही थी। अगले सत्र में जब और शिक्षकों ने रुचि दिखाई तो मैंने उनकी बहुत सराहना की। फिर और लोग शामिल हुए। मैं बस चुपचाप बैठकर देखती रही। भाषा-शिक्षकों को पीछे नहीं छोड़ा जा सकता था। उन्हें विभिन्न लिपियों के लिए सॉफ्टवेयर चाहिए थे। फिर और अधिक कम्प्यूटरों की माँग हुई।

फिर हम धीरे-धीरे दृश्य-श्रव्य सामग्री की ओर बढ़े। इसके लिए एक कमरा तैयार किया गया जिसमें प्रोजेक्टर और पर्दा लगा हुआ हो। पहले तो इस कमरे का उपयोग करने में जरा आनाकानी हुई क्योंकि यह काफी दूर स्थित था। इसलिए मैंने उसी कमरे में स्टाफ मीटिंग करनी शुरू की, ताकि दूरी की भावना कम हो। फिर उस कमरे का उपयोग बड़ी कक्षाओं के लिए किया जाने लगा। आज हालत यह है कि इस कमरे की अग्रिम बुकिंग करवानी पड़ती है और इसके प्रयोग के लिए लड़ाई-भिड़ाई होती है!

अब मुझे लगने लगा कि सभी कक्षाओं में स्मार्ट बोर्ड और प्रोजेक्टर लगाने की जरूरत है। इसके लिए बहुत सारी धन-राशि चाहिए थी जिसे फीस के द्वारा जुटाया गया। आज स्कूल में एल.के.जी. से लगाकर आठवीं तक की सभी कक्षाओं में बोर्ड लग चुके हैं। मुझे SMART के वरिष्ठ अधिकारियों के सामने एक प्रस्तुति के लिए भी आमंत्रित किया गया कि नोटबुक सॉफ्टवेयर (जैसा कि उसका नाम है) को हमारी अध्यापन कला में कैसे प्रयोग में लाया गया।

महत्वपूर्ण बात यह थी कि शिक्षकों को अपनी क्षमता का एहसास हो गया था और उन्हें गर्व था कि वे अपने शहर में पथ प्रदर्शक बन गए हैं। मेरी पहली परिकल्पना सच हुई और रणनीति सफल रही। शिक्षकों और विद्यार्थियों को काम में जुटा हुआ देखकर मैं रोमांचित थी। स्कूल के भविष्य के लिए यह बहुत बड़ी बात थी।

अब मैंने शिक्षकों के व्यक्तिगत विकास के लिए प्रयत्न शुरू किए। 1998 में मैंने नई दिल्ली में सेण्टर फॉर एजुकेशनल मैनेजमेंट एण्ड डेवलपमेंट (CEMD) द्वारा आयोजित एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया था। वहाँ के स्रोत व्यक्ति बेहद सक्षम और प्रतिबद्ध थे तथा कोर्स का डिजाइन व विषयवस्तु भी बहुत बढ़िया थी। इस कार्यक्रम के तीन मॉड्यूल थे - व्यक्तिगत विकास पर ध्यान, शिक्षण सम्बन्धी डिजाइन और संस्थागत प्रबन्धन। इस तरह के कोर्स के बारे में पहले कभी नहीं सुना गया था। जब स्रोत व्यक्तियों को विश्वास हो गया कि यह कोर्स चेन्नई में किया जा सकता है तो हमारे स्कूल ने इसकी मेजबानी की और इसमें 35 प्रतिभागी थे। मैं भी इस कार्यक्रम में एक स्रोत व्यक्ति थी और मैंने उनके लिए कुछ सत्र संचालित किए। अब इस धारणा व सोच पर सवाल उठाए जा रहे थे कि किसी को प्रधानाध्यापक इसलिए बनाया जाता है क्योंकि वह एक मुकाम पर 'पहुँच' चुका है या दूसरे शिक्षकों के अधिक जानता है। मैंने सोचा कि सीखना तो सिर्फ शुरू होता है। प्रधानाध्यापक बनने के लिए आवश्यक कौशलों और शिक्षक बनने के लिए आवश्यक कौशलों में बहुत अन्तर है। कई स्कूल एक अच्छे शिक्षक को लेकर उसे बुरा प्रधानाध्यापक बनाने की

गलती करते हैं। दूसरे, प्रधानाध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए कोई संस्था नहीं थी। प्रधानाध्यापकों को भी लगता था कि उन्हें किसी प्रशिक्षण या सीखने की जरूरत नहीं है और वे प्रशिक्षण के लिए शिक्षकों को भेजते रहते। आज प्रधानाध्यापकों को अपने स्थान पर खड़े रहने के लिए भागा-दौड़ी करनी पड़ती है। मुझे लगा कि यह नहीं चलेगा। मैंने एक साल के कार्यक्रम के लिए अपने दो वरिष्ठ शिक्षकों को भेजा; मेरे दो शिक्षक और यह समझ गए कि मैं क्या करने की कोशिश कर रही थी। फिर इस कार्यक्रम के लिए प्रायोजक के रूप में एक संस्था मिली और अब मुझे इस बात का गर्व है कि वरिष्ठ शिक्षकों का नौवां बैच इस कार्यक्रम में भाग ले रहा है।

मेरी एक और परिकल्पना भी सफल रही। प्रधानाध्यापक का कार्य मार्गदर्शन करना और शिक्षकों को यह महसूस कराना है कि उन्होंने खुद ही वह काम किया है! इसी बीच सी.बी.एस.सी. के तत्कालीन शैक्षिक निदेशक ने मुझे सी.बी.एस.सी. के साथ प्रधानाध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए संसाधिका बनाया। उनके साथ मैंने त्रिचूर, कालीकट, हैदराबाद आदि में प्रधानाध्यापकों को प्रशिक्षित किया और इन क्षेत्रों में प्रधानाध्यापकों के सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में बहुत कुछ सीखा।

इसी दौरान मुझे माइक्रोसॉफ्ट ने नई दिल्ली में आयोजित शिक्षा शिखर सम्मेलन (जो शिक्षण में तकनीकी के समावेशन से सम्बन्धित था) में कुछ पैनलों का सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया। इस सम्मेलन ने संसार के विकसित देशों में तकनीकी के उपयोग के बारे में मेरे ज्ञान को बढ़ाया। मेरी आशाओं और विचारों को एक अलग आयाम मिला और मैं अपने मन में ढेर सारी आशाएँ लेकर लौटी।

मैंने अपने स्टाफ को जो स्लाइडें दिखाई थीं उनमें से एक पीढ़ी एक्स पर थी जिन्हें वे अब पढ़ा रहे हैं, निरन्तर सीखने की जरूरत, शिक्षण के लिए जुनून और नए शिक्षकों को प्रेरित करना आवश्यक है। सन्देश यह है कि 'आपको विषय पढ़ाने की जरूरत नहीं है; आपको विषय के प्रति अपने जुनून को व्यक्त करना है और तब विद्यार्थी खुद-ब-खुद सीखने लगेंगे। सम्प्रेषण, भावनात्मक बुद्धि, अलग-अलग विद्यार्थियों के लिए विविध प्रकार का शिक्षण, टीम में कार्य करना, पाठ का डिजाइन, प्रश्नों के प्रकार, प्रश्नपत्र बनाना, रचनात्मक और योगात्मक आकलन और ऐसे ही कई अन्य कौशलों पर प्रशिक्षण सत्र हुए हैं जो शिक्षण में बने रहने के लिए आवश्यक हैं।

लगभग एक दशक के बाद मुझे लगा कि हम शिक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र खोलने के लिए तैयार हैं। साल भर में मैंने शिक्षकों के लिए परिष्करण स्कूल की तर्ज पर एक ऐसा कार्यक्रम डिजाइन किया जो दो सप्ताह के लिए था। 20 नए शिक्षकों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया और हमारे स्कूल में हमारे साथ काम किया। दुर्भाग्य से इस कार्य को बन्द करना पड़ा क्योंकि स्कूल ने उपनगरों में स्कूल की नई शाखा खोलने का निर्णय लिया जिस पर समय और ध्यान देना जरूरी था। जहाँ हमने कार्य को रोका था वहीं से यह शाखा शुरू हुई और बहुत आगे तक गई। शिक्षक अब अधिक अनुभवी हो गए थे और प्रधानाध्यापिका खुद तकनीकी के प्रयोग में प्रशिक्षित थीं और उसे अच्छी तरह समझती भी थीं। यह स्कूल लगभग कागज रहित स्कूल था क्योंकि सारे शिक्षक इंट्रानेट पर थे और सारे माता-पिता मोबाइल एप्लिकेशन या वाट्सएप समूहों पर।

प्रधानाध्यापिका के रूप में 17 वर्ष तक कार्य करने के बाद मैं सेवानिवृत्त हुई। मैं सन्तुष्ट थी कि मैं शिक्षक विकास में थोड़ा-बहुत योगदान दे पाई। आज भी मुझे विभिन्न स्कूलों में कार्यशालाओं का संचालन करने के लिए बुलाया जाता है। शायद यही मेरे मन की पुकार है, क्योंकि इसी की वजह से मैं सीखना और पढ़ना जारी रख पाती हूँ और मैं बहुत खुश हूँ।

शिक्षक विकास की प्रक्रिया ने वाकई एक लम्बा सफर तय किया है।

भवानी रघुनन्दन, विद्या मन्दिर सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, चेन्नई की पूर्व प्रधानाध्यापिका हैं। प्रधानाध्यापिका के रूप में 17 वर्ष तक कार्य करने के बाद वे सेवानिवृत्त हुई। वे कई शैक्षिक संस्थानों के बोर्ड की सदस्या होने के साथ-साथ एक स्रोत व्यक्ति और सलाहकार भी हैं। उनसे bhavarag@gmail.com या bhavani1954@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

केस स्टडी - सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास : एक अवसर या एक प्रगति

अंजू दास मानिकपुरी

शिक्षक पेशेवर विकास में कई व्यापक और विविध कार्यक्रम शामिल हैं जिनका प्रयोजन शिक्षकों के ज्ञान का प्रोत्साहन और समर्थन है। जब बात शिक्षक पेशेवर विकास की हो तो उसका उद्देश्य यह होता है कि शिक्षकों के ज्ञान, अध्यापन कला, कौशल और दायित्व का विस्तार हो ताकि वे स्कूल समुदाय में पाठों की योजना बनाने, शिक्षण करने, विद्यार्थियों के अधिगम का आकलन करने और अन्य उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकें। सेवाकालीन कार्यक्रमों को निम्नलिखित दो श्रेणियों के अन्तर्गत समझा जा सकता है:

1. कभी-कभी 'सेवाकालीन' का अर्थ अध्ययन के निर्धारित विस्तारित पाठ्यक्रम तक व्यापक हो जाता है जो सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम को दर्शाता है और पेशेवर रूप से 'अक्षम' शिक्षकों के लिए मान्यता प्राप्त योग्यता के कुछ स्तरों के लिए महत्वपूर्ण है।

2. क्लासिकी रूप से इस शब्द का प्रयोग शिक्षकों के पेशेवर विकास की गतिविधियों के लिए किया जाता है जिसकी व्याप्ति शिक्षकों के अधिगम के सतत व विशद कार्यक्रमों से लेकर कार्यशालाओं तक होती है।

दोनों प्रकार के सेवाकालीन कोर्स समानरूप से महत्वपूर्ण हैं, खासतौर पर वर्तमान सन्दर्भ में। उदाहरण के लिए रटकर सीखने के तरीके के स्थान पर सीखने के सुगमीकरण (जो समीक्षात्मक, विश्लेषणात्मक और समस्या हल करने के कौशल पर बल देता है) के तरीके की ओर बढ़ना तभी सम्भव है जब शिक्षक कक्षा में शिक्षण की नई विधियाँ लागू करें भले ही उनकी सेवा पूर्व डिग्री, समझ, ज्ञान और कौशल कुछ भी हो। शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम को स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम के ढाँचे के अनुरूप होना चाहिए। एन.सी.एफ. इस बात का समर्थन करता है कि शिक्षकों को स्कूल से सम्बन्धित जरूरतों और माँगों के लिए तैयार करना आवश्यक है ताकि वे स्कूल के ज्ञान, शिक्षार्थी और अधिगम की प्रक्रिया के सवालों के साथ जुड़ सकें।[1]

केस स्टडी इसलिए प्रभावशाली होती है क्योंकि यह एक लेक्चर की तुलना में अधिक प्रबल और सम्बद्ध करने वाली होती है। इसका कारण यह है कि इसमें शिक्षार्थी भागीदार होते हैं और अपने विचार अपने शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।[2]

उपर्युक्त दृष्टिकोण और शिक्षक-शिक्षा सम्बन्धी अपने कार्य को जारी रखते हुए, मैं दो स्कूलों की दो केस स्टडी के बारे में बता रही हूँ। इसमें से एक स्कूल (प्रथम स्कूल-एस.1) ने शिक्षक-शिक्षा को एक अवसर के रूप में लिया और दूसरे ने प्रगति के रूप में (द्वितीय स्कूल-एस. 2)। दोनों अध्ययन माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान शिक्षक-शिक्षा से सम्बन्ध रखते हैं।

एस.1*- यहाँ पर शिक्षक के पास पेशेवर डिग्री यानी बी.एड. है। वे यह बात आसानी से समझ लेते हैं कि बच्चे कैसे सीखते हैं और साथ ही वे ज्ञान प्राप्ति के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और वैज्ञानिक पहलुओं को भी समझते हैं। वे कार्यशालाओं और संगोष्ठियों में भाग लेते हैं लेकिन इन विभिन्न मंचों में सीखी हुई बातें उनकी अध्यापन कला में नजर नहीं आतीं। यह बात लेख में आगे चलकर शिक्षक के साथ बातचीत, बहस और चर्चा के द्वारा दर्शाई जाएगी।

एस.2*- ये शिक्षक विज्ञान पढ़ाते हैं और बड़े सक्रिय व उत्साही हैं; साथ में डी.एड. की पेशेवर डिग्री भी उनके पास है। वे फुरतीले, ऊर्जावान और शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया की बेहतरी के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हैं जिसके लिए वे कक्षा में पढ़ाने के लिए कई सामग्रियों का निर्माण करते हैं। वे विज्ञान की समग्र प्रकृति समझने के साथ यह भी जानते हैं कि उसकी प्रत्येक शाखा से विज्ञान की प्रकृति का पता चलता है। प्रत्येक विद्यालय की कक्षा का उल्लेख निम्नलिखित रूप में करना ठीक रहेगा-

"रसायनविज्ञान" की कक्षा में विज्ञान की एक झलक - रसायनविज्ञान पदार्थ और ऊर्जा की अन्तःक्रिया का अध्ययन है।

टी1*- हमेशा प्रशासनिक कार्यों का हिसाब रखते हैं जो उन्हें गतिविधि आधारित कक्षा संचालन करने से रोकते हैं। वे मानते हैं कि अवधारणाओं की पुनरावृत्ति (रटना) काम करके सीखने से बेहतर है। वे अवधारणाओं के सुगमीकरण के बजाय लेक्चर विधि पसन्द करते हैं। लेकिन मैं यह कहना चाहूँगी कि ये शिक्षक विज्ञान की अवधारणाओं को समझाने के लिए प्रयोगों और मॉडलों को डिजाइन करने में माहिर हैं लेकिन वे ऐसा केवल अर्जन के लिए ही करते हैं।

टी2*- पदार्थों का पृथक्करण समझाने के लिए प्रयोग करते हैं ताकि पृथक्करण का सही और सम्बद्ध तरीका सीखा जा सके। उन्होंने पदार्थों के विभिन्न गुणों के आधार पर मिश्रण को अलग करने के

लिए कुछ चुनौतियाँ भी प्रस्तुत कीं। वे पूछते हैं कि धान से भूसे को अलग करने के लिए क्रोमैटोग्रैफी की विधि क्यों नहीं चुनी जा सकती? उनकी एक छात्रा ने बातचीत के दौरान बताया कि उसने अपनी दादी के लिए एक चुम्बक की मदद से बिस्तर के नीचे खोई हुई सुई का पता कैसे लगाया, इस अभिव्यक्ति में खुशी साफ दिखाई दे रही थी।

विज्ञान के मूल के रूप में भौतिकशास्त्र : पिछले संवाद को आगे बढ़ाते हुए हमने शिक्षकों से पूछा प्रकाश के बारे में पढ़ाते समय वे किस तरह की चुनौतियों का सामना करते हैं। दोनों ने कहा कि शुरू में तो वे चुनौतियों का सामना नहीं करते लेकिन जैसे-जैसे वे जटिल अवधारणाओं की ओर बढ़ते हैं तो उनके सामने चुनौतियाँ आती हैं।

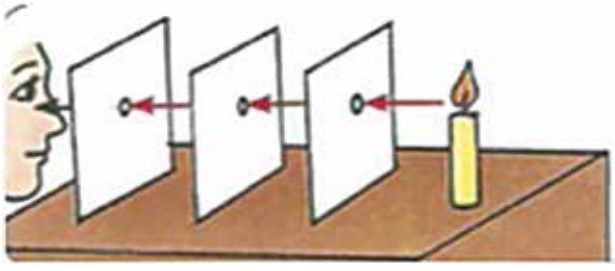

हमने चर्चा को आगे बढ़ाते हुए पूछा कि वे 'प्रकाश' के बारे में पढ़ाने की शुरुआत कैसे करते हैं। उनकी प्रतिक्रिया संवाद के रूप में है; आइए, उसके मुख्य बिन्दुओं पर एक नजर डालें -

टी 1/ एस 1 : मैं अपना पाठ शुरू करने के लिए 'प्रकाश क्या है' - इस बारे में तथ्य और जानकारी देता हूँ। फिर मैं बताता हूँ कि हम जो चीजें देखते हैं वे केवल प्रकाश में दिखाई देती हैं, अन्धेरे में हमें वे चीजें नजर नहीं आतीं। इस तरह से मैं प्रकाश का परिचय देता हूँ कि प्रकाश चीजों को देखने का एक माध्यम है।

टी 2/ एस 2 : मैं अपना पाठ शुरू करने के लिए विद्यार्थियों से पूछता हूँ किसी चीज को देखने के लिए क्या आवश्यक है। आमतौर पर बच्चे कहते हैं कि हम आँखों के बिना चीजों को नहीं

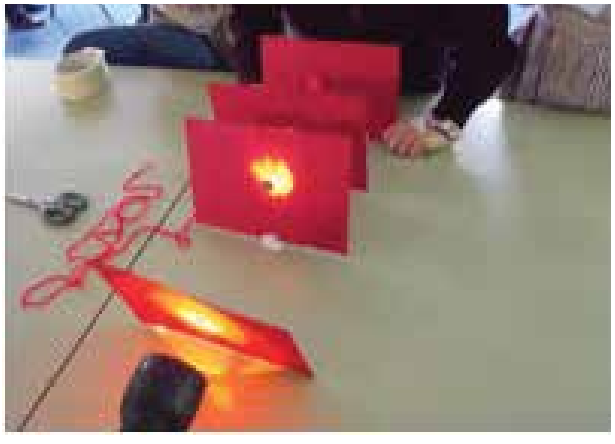

देख सकते। तब मैं उनसे पूछता हूँ कि आपके पास आँखें हैं पर क्या आप दीवार के पीछे रखी चीजों के बारे में बता सकते हैं।

इस बीच टी1 ने रोक दिया कि, "सर, आप बहुत तेजी से आगे बढ़ गए, यह बात तो प्रकाश से आगे की है। आप प्रकाश की अवधारणा को छाया, पारदर्शी और अपारदर्शी पदार्थों की अवधारणा के साथ मिला रहे हैं।"

टी2 ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा कि विज्ञान की एक सक्रिय कक्षा के लिए अवधारणाओं के अनुक्रमण और परस्पर सम्बन्ध की आवश्यकता होती है और वे पुनः अपनी बात साझा करने लगे।

इस प्रकार बातचीत आगे बढ़ाते हुए उन्होंने बताया कि वे अपना हाथ हिलाते हुए बच्चों से चॉक देखने को कहते हैं और पूछते हैं कि उँगली और आँखों के बीच में वह कौन-सी चीज है कि हम उँगलियाँ देख पा रहे हैं, अन्धेरे में हम वही उँगली क्यों नहीं देख पाते? इस तरह एक खुली चर्चा के द्वारा प्रकाश के महत्व को समझाया जाता है और यह एक अच्छा चिन्तन है कि हम विज्ञान के शिक्षक के रूप में अवधारणाओं के बीच के सम्बन्ध को कैसे देखते हैं। फिर शिक्षक ने दो गतिविधियों के बारे में बताया जिनकी सहायता से चित्रमय निरूपण के द्वारा यह समझाया गया कि प्रकाश सीधी रेखा में चलता है। आगे उनसे यह पूछा गया कि बच्चों को यह बात कैसे समझाई जाएगी कि जब एक से अधिक कमरे हों तो प्रत्येक कमरे में प्रकाश कैसे प्रवेश करता है।

शिक्षकों ने जवाब दिया कि इसके लिए प्रतिबिम्ब की व्याख्या करनी होगी और उदाहरणों के द्वारा यह अच्छी तरह से समझाया जा सकता है कि प्रकाश कैसे चलता है। प्रयोग के बारे में टी2 ने बताया कि उनकी कक्षा में हर बच्चा प्रयोग करता है और अगर कोई न कर पाए तो उसके साथी उसकी मदद करते हैं।

लेकिन अब उन्होंने अपने सामने आने वाली चुनौती के बारे में बताया कि पाठ्यपुस्तक में प्रतिबिम्ब पर केवल एक ही गतिविधि दी गई है और हमें उसी पर निर्भर होना पड़ता है। अगर समझ में न आए तो हमारे सामने और चुनौतियाँ आ खड़ी होती हैं।

शिक्षकों को इस बात के लिए कई अवसर दिए गए हैं कि वे विश्लेषण के माध्यम से पूछताछ का सुगमीकरण करने के बारे में सीखें। उदाहरण के लिए प्रकाश के बारे में बच्चों के खोजपूर्ण व्यवहार के माध्यम से उनके सोचने के तरीकों के बारे में चर्चा करने के बाद शिक्षकों ने इस बात का अवलोकन किया कि बच्चे ने यह अनुभव किया कि प्रकाश ट्यूब के माध्यम से चलता है। इससे प्रकाश की यात्रा के बारे में बच्चे के वर्तमान विचारों और जिस विज्ञान का अनुभव वह बच्चा कर रहा - उसके बारे में चर्चा शुरू हुई। शामिल होना-खोज करना-दोहराना, इस चक्र के सुगमकर्ता के रूप में शिक्षकों की भूमिका समझने के लिए गतिविधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं, जिसमें शिक्षकों द्वारा संचालित 'संलग्न होकर चिन्तन करने' वाली बातचीत, अपने अवलोकनों को चित्रण के माध्यम से निरूपित करने में बच्चों का समर्थन करना और उनके साथ मिलकर काम करना भी शामिल है।

जीवविज्ञान और जीवन की प्रक्रिया

हम सभी जानते हैं कि अधिकतर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में विषय विशेष के शिक्षकों की कमी है। टी1 ने स्नातक स्तर पर गणित की शिक्षा पाई है और टी2 ने जीवविज्ञान की। टी1 और टी2 दोनों ही माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को विज्ञान और गणित विषय पढ़ाते थे। जीवविज्ञान और जीवन की प्रक्रिया पर चर्चा के दौरान टी1 ने कहा कि उन्हें जीवविज्ञान में कोई विशेषज्ञता हासिल नहीं है इसलिए वे इसे पढ़ाने के लिए पाठ्यपुस्तक से श्रुतलेख लिखवा देते हैं।

टी2 ने कहा कि उनके स्कूल के पास एक तालाब है जहाँ माध्यमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम में उल्लिखित लगभग सभी प्रकार के सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं। वे विद्यार्थियों से हर मौसम में नमूने इकट्ठा करके सूक्ष्मदर्शी यंत्र से उनका प्रेक्षण करने को कहते हैं। जब विद्यार्थी विभिन्न मौसमों में तरह-तरह के सूक्ष्म जीव देखते हैं तो उनमें गाँव के अन्य तालाबों और नहरों से और अधिक नमूने लाकर देखने की इच्छा और उत्साह पैदा होता है। इस तरह वे नमूनों के संग्रह, सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति के बारे में पूर्वानुमान और अपने प्रेक्षणों की रिपोर्टिंग का आनन्द लेते हैं। टी2 बड़ी खुशी के साथ बताते हैं कि वे विद्यार्थियों से बहुत कुछ सीखते हैं, विशेषकर जब वे पूछते हैं कि कोशिका जीवन की संरचनात्मक और क्रियात्मक इकाई किस प्रकार है।

शिक्षकों के साथ हुई उपर्युक्त बातचीत के आधार पर मैं यह कहना चाहूँगी कि सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा और सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास कार्यक्रमों को समग्र रूप से डिजाइन करना चाहिए। सेवा-पूर्व शिक्षा में जिन बातों पर ध्यान नहीं दिया गया है उनमें से कुछ हैं - स्कूल आधारित जाँच और अभ्यास शिक्षण की अवधि; पूर्णकालिक शिक्षण के अभिमुखीकरण या परामर्श की अवधि। प्रत्येक चरण पूर्व अधिग्रहीत ज्ञान और कौशल पर आधारित है।

दोहराव या प्रतिकृति की प्रगति के दौरान सहायक उपकरणों का उपयोग करने के लिए शिक्षकों में विज्ञान की प्रकृति और अभ्यास के बारे में बहुत ज्ञान होना चाहिए। इस क्षेत्र में पेशेवर विकास न हो तो इस बात का खतरा बढ़ जाता है कि शिक्षक वापस शिक्षक केन्द्रित तरीकों के जाल में फँस जाएँ। विज्ञान की प्रकृति को स्पष्ट रूप से सम्बोधित करने के लिए शिक्षकों को उचित रणनीतियाँ लागू करनी चाहिए अर्थात विज्ञान के पाठों के साभिप्राय और नियोजित शैक्षणिक परिणाम के लिए हमें एन.ओ.एस. को शामिल करना होगा।[3]

बातचीत और साक्षात्कार की प्रक्रिया के बाद मैं इसी सन्दर्भ में दोनों स्कूलों की कक्षाओं की केस स्टडी प्रस्तुत कर रही हूँ जिसके लिए मैंने 'पदार्थों के पृथक्करण' की अवधारणा का उदाहरण लिया है।

टी1 की कक्षा की केस स्टडी : इस पाठ को पूरा करने के लिए शिक्षक ने दो दिन का समय लिया। पहले दिन उन्होंने विद्यार्थियों से एक-एक अनुच्छेद पढ़ने को कहा और उस पर गृहकार्य (प्रश्नोत्तर) करने को कहा। दूसरे दिन उन्होंने गृहकार्य की जाँच की और 45 मिनट में उन उत्तरों को याद करने को कहा। वे संतुष्ट थे कि विद्यार्थियों ने 'पदार्थों के पृथक्करण' पाठ की अवधारणा/विषयवस्तु को भली-भाँति समझ लिया है।

टी2 की कक्षा की केस स्टडी: इसी अवधारणा के लिए इस शिक्षक ने चार दिन लिए और उन्होंने दो अन्य अवधारणाएँ 'हमारे चारों ओर होने वाले परिवर्तन' तथा 'पदार्थों के गुण' भी साथ में जोड़ीं। कक्षा का विवरण इस प्रकार है-

पहला दिन : कक्षा के बीच में एक मेज रखी हुई थी जिस पर कुछ काले डिब्बे रखे हुए थे। यह देखकर अच्छा लगा कि बच्चे डिब्बे के भीतर की चीज के बारे में जानने को कितने उत्सुक थे। शिक्षक आए और उन्होंने विद्यार्थियों से पूछा कि अगर चावल पकाने की तैयारी करते समय वे उसमें भूसी या कंकड़ पाएँ तो वे क्या करेंगे। वे कैसे तय करेंगे कि चावल, भूसी और कंकड़ में से कौन-सी चीज पकाने के उपयुक्त है? इस मिश्रण में से आवश्यक और अनावश्यक चीजों को वे कैसे अलग करेंगे?

दूसरा दिन : उस दिन बहुत गर्मी थी और विद्यार्थियों को बाहर नहीं ले जाया जा सकता था। अतः उन्हें छोटे-छोटे समूहों में विभाजित किया गया और हर समूह को एक काला डिब्बा दिया दिया। उनसे कहा गया कि वे डिब्बे के अन्दर की सामग्री की सूची बनाएँ और अपने अनुभव या सिर्फ उसे देखकर अपने अनुमान के आधार पर

उनकी विशेषताएँ लिखें। पहले समूह को रेत और लोहे के पाउडर का मिश्रण दिया गया। दूसरे समूह ने चावल, भूसी, छोटे कंकड़ों और किसी सफेद पाउडर वाले मिश्रण की सूची बनाई। तीसरे समूह को एक कटोरा दिया गया जिसमें थोड़ा पानी था जिस पर किसी पदार्थ के सफेद टुकड़े तैरते हुए नजर आ रहे थे। एक बच्चा उसे चखना चाहता था लेकिन शिक्षक ने पहले ही यह निर्देश दे दिया था किसी भी चीज को चखना नहीं है। सारे बच्चे अपनी नोटबुक में पदार्थों का नाम लिखने में लगे हुए थे, कुछ बच्चे तो पदार्थों के चित्र भी बना रहे थे।

तीसरा दिन : एक छोटे समूह के बच्चों ने पूछा कि क्या वे मिश्रण से पदार्थों को अलग कर सकते हैं और फिर उन्होंने वैसा किया भी। पदार्थों को अलग करने का विचार समूह का ही था। वे आवश्यक संसाधन जुटा रहे थे जैसे फिल्टर पेपर, कटोरे, चुम्बक, बर्नर आदि जो क्रिस्टलीकरण, निस्पंदन, निस्तारण, वाष्पीकरण, चुम्बकीय पृथक्करण, गाहने और फटकने आदि पृथक्करण की प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक हैं। मैंने उनसे पूछा कि उन्हें यह विचार से कहाँ से आया। उनमें से कुछ बच्चे थोड़ा-सा रुके और बोले,"हम तो इसे रोज अपने आसपास देखते हैं।'' लेकिन तीसरा समूह चीजों की पहचान करने में परेशानी महसूस कर रहा था, जैसे-तैसे उन्होंने सफेद टुकड़ों को छानकर अलग किया, लेकिन पानी में मौजूद चीजों को देखकर सोच-विचार में डूबे हुए थे। अब शिक्षक सुगमकर्ता के रूप में वहाँ आए और कहा,"यदि मैं नाम बता दूँ तो आप उन चीजों को अलग कर सकते हैं।'' विद्यार्थी मान गए। उन्होंने कहा कि इस पानी में नमक है और उसमें तैरते हुए टुकड़े कपूर के हैं। इस प्रकार उन्होंने विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया।

चौथा दिन : इस दिन विद्यार्थियों को इस बात की स्वतंत्रता दी गई कि वे किसी भी मिश्रण को चुनें और पृथक्करण की उपयुक्त प्रक्रिया का उपयोग करके उन्हें पृथक करें। बच्चों ने हॉल के बाहर और पानी वाले स्थान के पास मेज के आसपास ही बहुत सारा समय बिताया। यह तकरीबन ऐसा ही था कि जैसे बच्चों की जाँच-पड़ताल विज्ञान सीखने की पृष्ठभूमि के साथ उनके काम का 'पोषण' कर रही हो। आखिर वे काले डिब्बों के साथ ही तो नए विचारों और सम्भावनाओं का परीक्षण करके पुनः मिश्रण की ओर जा सकते थे। इसी दिन शिक्षक ने चारों दिनों के काम का सारांश तैयार करने को कहा और साथ में वे अवधारणा की समझ बनाने के लिए कुछ बिन्दु और जोड़ते जा रहे थे।

टी2 के शब्दों में, मैंने इस विशेष चुनौती और मिश्रित पदार्थों का चयन इसलिए किया क्योंकि मुझे लगा कि मेरे समूह के अधिकांश बच्चे पदार्थ के बारे में गहन अध्ययन के लिए तैयार थे। अपने अवलोकन, संवाद और समूह चर्चा के माध्यम से मेरा यह मानना है कि मेरे समूह में लगभग प्रत्येक बच्चा इस बात से सहमत होगा कि पदार्थ को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन वे शुद्धि और पृथक्करण की विशेष विधि का चयन करने में सक्षम नहीं थे। कम संसाधनों के बावजूद वे काफी कुशलता प्राप्त कर रहे थे। मुझे लगा कि काँच का फनल देने भर से शायद उनकी सोच इस विचार से प्रतिस्पर्धा करे कि इस रुचिकर कार्य में कैसे महारत हासिल की जाए। वे काम कर रहे बच्चों की फोटो लेने के साथ में समूह चर्चा को दर्ज भी कर रहे थे।

दूसरे स्कूल के उदाहरण में हमने देखा कि पहले विद्यार्थियों से अपनी खुद की गतिविधियों, परिणामों, समाधानों, विचारों और विवेचनों पर चिन्तन करने को कहा गया। दूसरे चरण के दौरान उनके अनुभवों को उनके कार्यों की जानकारी और पिछले अनुभवों के संज्ञान से जोड़ा गया। इस बातचीत में विज्ञान के सामान्य पहलुओं पर चर्चा की गई। सामान्य और निर्देशित पूछताछ विज्ञान की प्रकृति पर केन्द्रित होती है जैसे "नया ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है?" या "विज्ञान सम्बन्धी व्यक्ति कैसे कार्य करते हैं?"

चर्चा और निरूपण दोनों ही विज्ञान सीखने के लिए बहुत आवश्यक हैं और जाँच की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा भी। ये विज्ञान का संज्ञानात्मक विस्तार भी हैं। छोटे और बड़े दोनों समूहों में होने वाली चर्चाएँ बच्चों को अपने कौशलों के बारे में सोचने, दूसरों के अनुभवों में भाग लेने और उनके विचारों पर चिन्तन करने को बढ़ावा देती हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के मीडिया का इस्तेमाल करते हुए निरूपण जैसे चित्रण, लेखन और संग्रहण करने से बच्चे उत्साहित होकर अपने अनुभवों का अच्छी तरह से निरीक्षण करते हैं, समय के साथ अपने अनुभवों के आधार पर पुनः कुछ नया करते हैं और साथ ही उनकी शब्दावली और भाषा संरचना भी विकसित होती है।

दोनों उदाहरणों में शिक्षक की भूमिका

बच्चों के विज्ञान अधिगम में शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण और बहुमुखी है जो बच्चों के बारे में उनके ज्ञान और विज्ञान अध्यापन कला के ज्ञान से जाहिर होती है। मैं विज्ञान अध्यापन कला की जानकारियों में से सिर्फ एक को उजागर करना चाहती हूँ। शिक्षार्थी की तार्किक पूछताछ के बारे में जानकारी इस बात से जाहिर होती है कि शिक्षक को मूलभूत विज्ञान की महत्वपूर्ण धारणाओं की कितनी समझ है और उन्हें पता है कि बात पर जोर देना है, जैसा कि टी2 ने किया। जैसे कि ऊपर वाले उदाहरण में बच्चों ने मिश्रण के साथ जो काम किया वह यूँ तो पदार्थ के बारे में है, लेकिन साथ ही यह मिश्रण के इस बुनियादी गुण के बारे में भी है कि मिश्रण को उसके घटकों से अलग करना पड़ता है। हालाँकि इस अवधारणा के स्पष्ट शिक्षण की जरूरत नहीं है लेकिन समझ का निर्माण और शिक्षक का सुगमीकरण जिन बातों से निर्देशित होते हैं वे हैं - अवधारणा का ज्ञान और बच्चे उसे कैसे सीखते हैं। शिक्षक

के प्रश्न, टिप्पणियाँ और समीक्षाएँ बच्चों के ध्यान को अवधारणा की ओर खींचती हैं। शिक्षकों द्वारा इस प्रकार का मार्गदर्शन और सुगमीकरण, बच्चों के कार्यों के पीछे की अवधारणाओं के बारे में शिक्षक की समझ पर आधारित होता है और वे बच्चों को उन तथ्यों के महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देने और चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित कर पाते हैं। लेकिन एस1 के उदाहरण में विज्ञान शिक्षण की ऐसी कोई बात नहीं मिली, हालाँकि टी1 और टी2 दोनों ही शिक्षक के सतत व्यावसायिक विकास का हिस्सा थे।

कैलेंडर और अध्यापन कला : हर स्कूल की तरह यहाँ भी, शिक्षकों के कार्य के नियोजन के लिए, एस.सी.ई.आर.टी. द्वारा दिया हुआ एक कैलेंडर है। लेकिन यहाँ भी स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। टी2 जलवायु, मौसम के अनुसार विज्ञान की अवधारणाएँ सिखाते हैं लेकिन टी1 बड़ी कड़ाई से कैलेंडर का पालन करते हैं जैसे कि बारिश के न होने पर भी मिट्टी और बारिश के बारे में पढ़ाना।

स्व-शिक्षा के लिए दत्तकार्य : शिक्षकों की प्रत्येक सेवाकालीन कार्यशाला के बाद शिक्षकों को उनकी कक्षा-प्रक्रिया से सम्बन्धित एक दत्तकार्य दिया जाता है। टी1 उसे अपनी तालिका में करते हैं और टी2 ने इसे कक्षा के अनुभवों का संकलन करके उस पर चिन्तन करते हुए प्रस्तुत किया ताकि अपनी खुद की अध्यापन कला और विषय के ज्ञान को बढ़ाया जा सके।

निष्कर्ष

यह बात तो निर्विवाद है कि शिक्षकों को पेशेवर शिक्षक बनाने के लिए सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास का बहुत महत्व है क्योंकि यह शिक्षकों को अपने कार्य अभ्यासों पर चिन्तन करने के लिए प्रेरित करता है। सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास की सार्थकता के लिए उसमें इन चीजों को शामिल करना आवश्यक है। साथ ही इसे शिक्षकों के मन-मस्तिष्क में जवाबदेही की भावना और शिक्षण-अधिगम के लिए अपेक्षित अभिवृत्ति भी उत्पन्न करनी चाहिए।

शिक्षण के पेशे के साथ न्याय करने के लिए शिक्षक को अपनी खुद की मान्यताओं पर सवाल उठाते रहना चाहिए, अपने ज्ञान और कौशलों को अद्यतन करते रहना चाहिए, प्रत्येक विषय को पढ़ाने के उद्देश्यों के बारे में जानना चाहिए और उस विषय की प्रकृति को समझना चाहिए; क्योंकि ये सारी बातें कक्षा की प्रक्रिया को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में यह बात तो स्पष्ट है कि पेशेवर विकास कार्यक्रमों से शिक्षकों को अधिक लाभ तब मिलेगा जब वे उनकी अध्यापन कला और विषय-सामग्री के ज्ञान को मजबूत करने पर आधारित हों। अनुवर्ती कार्रवाई से उन शिक्षकों को भी मदद मिलेगी जो सेवाकालीन शिक्षक विकास को एक अवसर के रूप में देखते हैं और उनको भी प्रेरित करेगी जो इसे एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखते हैं।

ऊपर बताए गए दोनों अनुभव, कक्षा में क्या सम्भव है और कक्षा में अक्सर क्या सम्भव है, के विरोधाभास को स्पष्ट करते हैं। इसने मेरे अपने चिन्तन को भी इस दिशा में बढ़ावा दिया कि जब शिक्षक विज्ञान के शिक्षण-अधिगम में जाँच-पड़ताल पर आधारित दृष्टिकोण लागू करने की कोशिश करते हैं तो उन्हें कैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

शिक्षक के साथ कक्षा के अवलोकन और साक्षात्कारों से न केवल उचित कक्षा तकनीकों में शिक्षकों के प्रशिक्षण के महत्व का पता चलता है, बल्कि इसका भान भी होता है कि जब उनमें नए दृष्टिकोण के तहत विज्ञान शिक्षा की गहरी समझ विकसित होती है और उसे अपनाने लगते हैं, तब भी उन्हें सतत सहायता प्रदान करने की जरूरत है। मेरी अनुशंसा यह है कि इस तरह के चिन्तनों को समर्थन मिलना चाहिए क्योंकि शिक्षकगण कक्षा के नए अभ्यास सीख रहे हैं।

आभार

प्रसून और रविशेखर के समर्थन के बिना, खासकर भाषा सम्पादन की दृष्टि से, इस लेख को लिखना सम्भव नहीं था।

* एस1 - प्रथम स्कूल, एस2- द्वितीय स्कूल। *टी1 - प्रथम स्कूल के शिक्षक, टी2- द्वितीय स्कूल के शिक्षक

References

1. National Curriculum Framework for Teacher Education, New Delhi, 2005, 1-89
2. Clyde Freeman Herreid: The Use of Case Studies and Group Discussion in Science Education National Center for Case Study Teaching in Science, University at Buffalo, State University of New York, 2002, 1-8
3. Rudge D. W., Howe E. M. An explicit and reflective approach to the use of history to promote understanding of the nature of science. Sci & Educ, 2007, 18: 561-580

अंजू दास मानिकपुरी अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, जिला संस्थान,धमतरी,छत्तीसगढ़ में विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। उनसे anju.manikpuri@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

खण्ड ग

समीक्षा

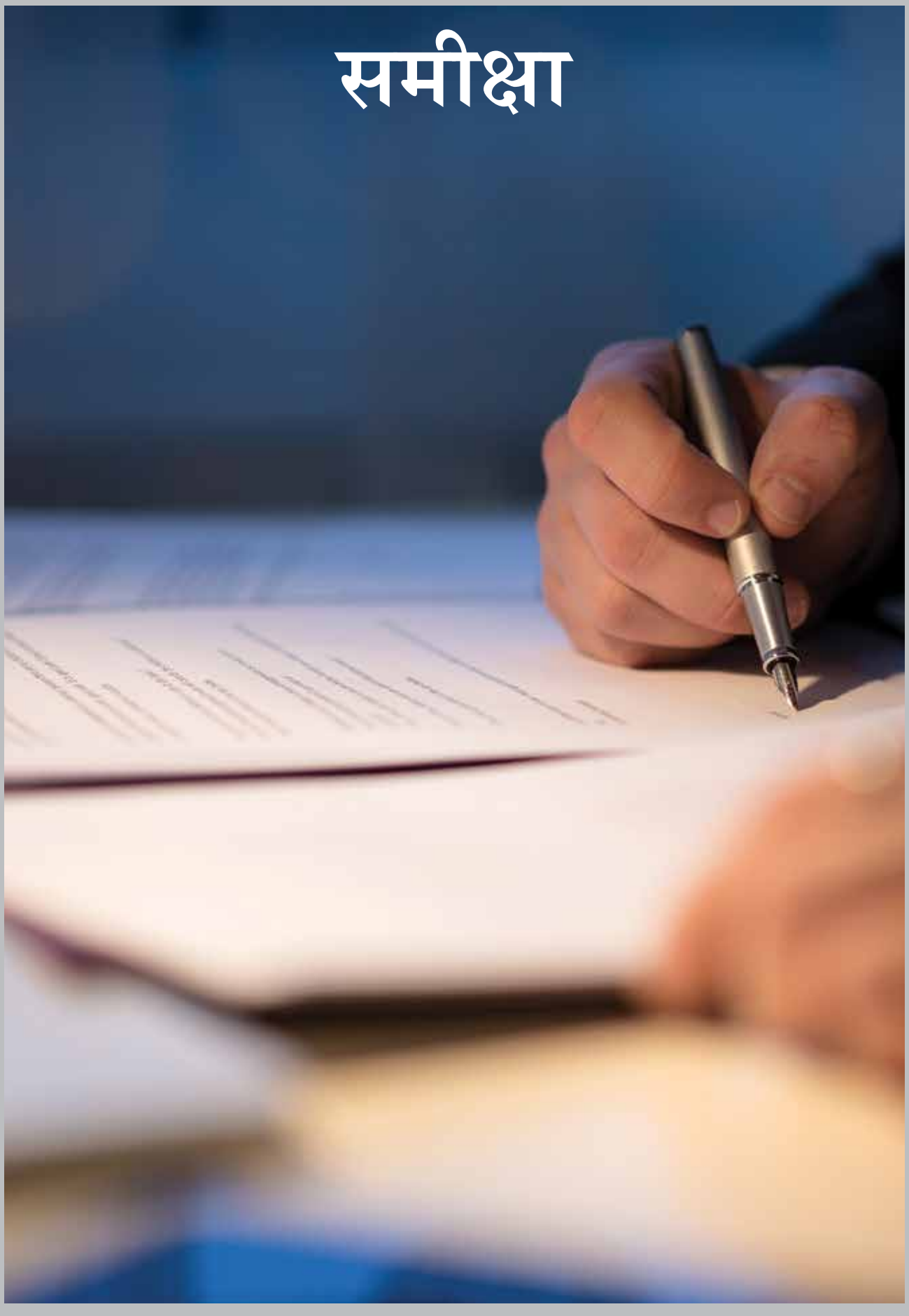

क्रियात्मक शोध एवं चिन्तनशील अभ्यास

स्नेहा टाइटस तथा इन्दुमती एस.

किसी भी अन्य क्षेत्र की तरह अध्यापन कला की भी अपनी एक 'पॉप' या लोकप्रिय शब्दावली होती है और 2013 की विशिष्टता थी 'क्रियात्मक शोध'। हमने वीडियो के जिस सेट की समीक्षा की वह उस परियोजना का हिस्सा है जो दिनेशपुर, उत्तराखण्ड, भारत के एक स्कूल में शिक्षकों के कार्य पर आधारित थी और जिसे वर्ष 2013 में अगस्त और दिसम्बर के बीच संचालित किया गया। आठ शिक्षकों और उनके प्रधानाध्यापक ने यह निर्णय लिया कि वे कक्षा में जिन समस्याओं का सामना करते हैं, उनके बारे में क्रियात्मक शोध करेंगे - इस प्रक्रिया में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के कुछ सदस्यों ने मदद की। इस अध्ययन का नेतृत्व डॉ. नीरजा राघवन ने किया और उनका काम उनकी पुस्तक 'द रिफ्लेक्टिव टीचर' में निरूपित किया गया है। इस पुस्तक में उन केस स्टडीज का प्रयोग किया गया है जो 'इमर्जेंस ऑफ द रिफ्लेक्टिव प्रेक्टिशनर फ्रॉम विदिन द इन-सर्विस टीचर' शीर्षक वीडियो फिल्म में समाहित हैं।

कितना विचारोत्तेजक शीर्षक है! 'इमर्जेंस ऑफ द रिफ्लेक्टिव प्रेक्टिशनर फ्रॉम विदिन द इन-सर्विस टीचर' अर्थात सेवारत शिक्षक के भीतर से चिन्तनशील अभ्यासी का उदय। इस शीर्षक से मन में एक क्रिस्लिस (कोष में बन्द कीट) का विचार आता है -यानी एक ऐसी क्षमता जो प्रत्येक सेवारत शिक्षकों के भीतर होती है। और वास्तव में यही वजह है कि इस अध्ययन में शिक्षकों के कार्य का प्रदर्शन करने वाली ये लघु फिल्में असाधारण बन जाती हैं। यहाँ हम अध्यापकों का एक ऐसा समूह देखते हैं जो ऐसी समस्याओं के साथ जूझ रहा है जिसका सामना देश का हर शिक्षक करता है अर्थात ऐसे विद्यार्थियों जिन्हें बुनियादी अवधारणाएँ सीखने में दिक्कत पेश आती है और जिनमें साक्षरता और संख्यात्मक कौशल का अभाव है, प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी, अनियमित उपस्थिति और घर के वातावरण से समर्थन की कमी.. यह सूची अन्तहीन है! इसके साथ में शिक्षकों पर पाठ्यक्रम 'पूरा' करने का दबाव, कक्षा में विभिन्न स्तरों वाले विद्यार्थियों को सम्भालना, ऐसे विद्यार्थियों को भी जो कक्षा के बाकी विद्यार्थियों के समान भाषा नहीं बोलते...इस प्रकार की कई समस्याएँ भी हैं तो ऐसे परिदृश्यों से भला क्या उभरकर सामने आ सकता है?

फिर भी यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि शिक्षक समस्याओं को पहचानते हैं और उनसे निपटने के लिए नवीन किन्तु सरल

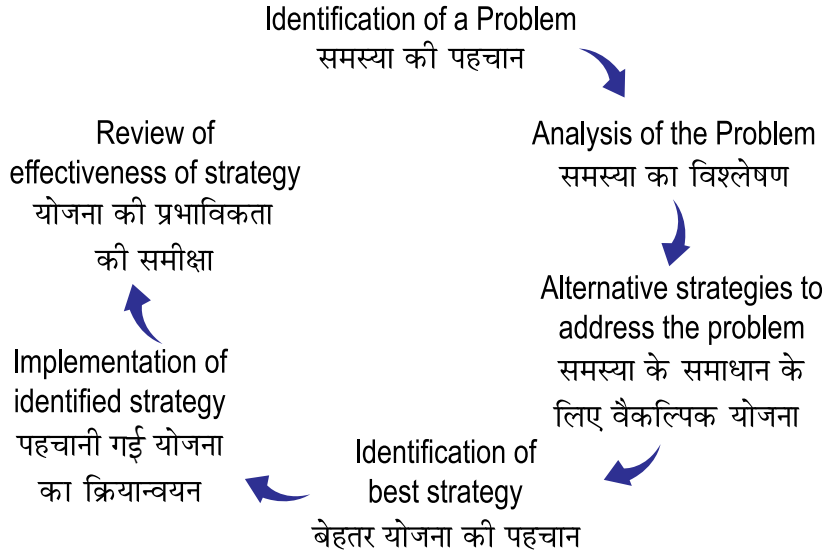

यदि नहीं, तो शोध टीम ने शिक्षकों को फिर से ए.आर. चक्र शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया।

योजनाएँ अपनाते हैं। यह बात अपने आप में असामान्य नहीं है। दुनिया भर में शिक्षक दिन-प्रतिदिन ऐसा करते ही रहते हैं। जैसा कि वीडियो में एक शिक्षक कहते हैं कि अपने कार्य को अंजाम देने के लिए हम जो कुछ करते हैं उसे 'क्रियात्मक शोध' का नाम देने की आवश्यकता नहीं है। फर्क पड़ता है उस चक्र से जिसमें से शिक्षक इस परियोजना के दौरान गुजरे।

दस्तावेजीकरण इस प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा था जिसे शिक्षकों ने लगभग सर्वसम्मति से लगभग अस्वीकार कर दिया था। लेकिन साथ ही वे इस बात पर भी सहमत हुए कि यह बहुत महत्वपूर्ण कारक है जिसकी वजह से वे उन योजनाओं पर चिन्तन कर पाए जिन्हें उन्होंने अपनाया था। उनमें से कुछ तो मानदण्ड की तलाश में भी लग गए कि दस्तावेजीकरण का 'सही' तरीका क्या है। अन्त में उन सभी को एहसास हुआ कि चिन्तन करना मुख्य बात थी, दस्तावेजीकरण नहीं।

निम्नलिखित भाग में शिक्षकों द्वारा किए गए क्रियात्मक शोध की पहल का वर्णन किया गया है।

(क) अँग्रेजी शब्दावली और पढ़ने की क्षमता का संवर्धन : शिप्रा अग्रवाल

शिप्रा अग्रवाल करीब 17 वर्षों से स्कूल के बच्चों को पढ़ाती आ रही थीं और इस दौरान कक्षा में अन्तःक्रिया के लिए पाठ्यपुस्तकें ही उनका मार्गदर्शन करती थीं । कई अन्य शिक्षक भी तो पाठ्यपुस्तकों को ही मार्गदर्शक मानते हैं। लेकिन एक समय ऐसा आया जब उन्हें लगने लगा कि वे जो विषय पढ़ाती हैं उसमें विद्यार्थियों को और बेहतर बनाएँ। वे चाहती थीं कि विद्यार्थी उस विषय को सीखें और वे यह भी चाहती थीं कि विद्यार्थी यह सीखें कि उस विषय को कैसे सीखना चाहिए! क्रियात्मक शोध परियोजना के तहत उन्होंने चौथी कक्षा के बच्चों की अँग्रेजी शब्दावली का संवर्धन करने का निर्णय लिया ताकि वे शब्दों को पहचानने के साथ-साथ उनका अर्थ भी समझें। कुछ पाठों को पढ़ाने के बाद जब उन्होंने शुरुआती आकलन किया तो उन्हें लगा कि बच्चों को बोलने, पढ़ने और लिखने में मुश्किल होती है। इनमें से उन्होंने पढ़ने को चुना और बच्चों के आत्मविश्वास को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने नई-नई योजनाएँ अपनाईं जैसे कि दृश्य संकेत, साथियों की सहायता और भाषा-आधारित खेल। फिर धीरे-धीरे वे बच्चों को मदद व समर्थन देना कम करती गईं और उन्हें पढ़ने के कौशल में अधिक आत्मविश्वासी और स्वतंत्र बना पाईं। एक महीने तक ऐसा करने के बाद बच्चों की शब्द पढ़ने की क्षमता तकरीबन छह गुना बढ़ गई।

वीडियो देखते समय हम इस तथ्य से प्रभावित हुए कि क्रियात्मक शोध कार्यक्रम की अनिवार्यता के कारण शिप्रा का अवलोकन कौशल तेज हुआ था। यह बात स्पष्ट रूप से नजर आ रही थी कि उन्होंने विद्यार्थियों के विषय-ज्ञान और कौशल की कमियों का पता लगाया है। उन्होंने जो योजनाएँ अपनाईं वे सरल और करने में आसान थीं और सबसे बड़ी बात यह कि वे समस्या के मूल तक पहुँचती थीं - किसी भी शिक्षक के लिए यह बात प्रेरणादायी हो सकती है कि वे भी इस तरह के नवाचारों का प्रयोग करें। शिक्षकों को यह बात भी प्रोत्साहित करेगी कि शिप्रा का काम भले ही बढ़ा हो लेकिन वे कक्षा में विभिन्न स्तर वाले विद्यार्थियों के लिए अध्यापन के अलग-अलग तरीकों का प्रयोग करने में सक्षम रहीं। इसके अलावा उन्होंने जो कुछ सीखा उसका एक व्यावहारिक तरीके से दस्तावेजीकरण किया, जिसके कारण वे अपना काम बढ़ाए बिना ही चिन्तन करने और सीखने में सक्षम हुईं।

(ख) हर बच्चा अवलोकन करता है : मोहित शर्मा

मोहित शर्मा पर्यावरण अध्ययन पढ़ाते हैं और उन्होंने कुछ ऐसे बच्चों का पता लगाया जो हिन्दी में पढ़ और लिख नहीं सकते थे। मोहित बच्चों में आत्मविश्वास जगाना चाहते थे ताकि वे पर्यावरण अध्ययन सीखने में रुचि ले सकें।

उन्होंने ऐसी योजनाओं का विकास किया जिनमें ये बच्चे अवलोकन करके आरेख/चित्रों के माध्यम से अपने अधिगम और अपनी समझ को प्रस्तुत कर सकें। उन्होंने बच्चों से जानवरों के चित्र बनवाए और उनका मिलान उनके आवासों से करवाया। उन्होंने कुछ ऐसी गतिविधियाँ अपनाईं जिनकी सहायता से विद्यार्थी चित्र बनाकर अपने विचार प्रस्तुत कर सकें। उन्होंने ये गतिविधियाँ प्रत्येक विद्यार्थी के साथ कीं, लेकिन पाँच विद्यार्थियों और उनके अधिगम का अवलोकन तथा दस्तावेजीकरण किया।

मोहित ने पाया इन बच्चों ने भी अन्य विद्यार्थियों की तरह से ही सीखा है लेकिन केवल जवाब लिखने में समस्या आती है। आरेख और चित्र बनाने में कोई दिक्कत नहीं थी । उन्होंने देखा कि ये विद्यार्थी भी कक्षा की गतिविधियों में बोलने और भाग लेने लगे हैं। ये विद्यार्थी चौकस थे और इनमें से एक विद्यार्थी ने मछलियों की साँस लेने वाली गतिविधि में एक महत्वपूर्ण अवलोकन किया था और उसे कक्षा के साथ साझा भी किया।

मोहित समझ गए कि विद्यार्थियों से सिर्फ पढ़वाने और लिखवाने तथा उनके लिखित कौशल का परीक्षण करने से उनके अधिगम के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं मिल सकती। और यह भी कि विद्यार्थियों को अलग-अलग तरीकों से खुद को अभिव्यक्त करने का मौका देना चाहिए। उन्होंने इन बच्चों का विश्वास जीता और उनके साथ सम्बन्ध बनाए जिसके परिणामस्वरूप बच्चों के आत्मविश्वास में भी वृद्धि हुई। इसके अलावा मोहित का इन बच्चों को कक्षा से अलग न करके पूरी कक्षा को साथ में लेकर चलने का विचार यह दर्शाता

है कि उन्हें बच्चों के बारे में समझ है। मोहित विद्यार्थियों के आकलन सम्बन्धी अपने अभ्यास पर भी चिन्तन करते हैं।

(ग) तीन अंकीय संख्याओं के लिए स्थानीय मान की समझ सुनिश्चित करना : शकुन्तला चौरसिया एवं सऊद अहमद खान

यहाँ पर हमें गणित के शिक्षकों का संघर्ष और शिक्षकों पर काम का बोझ, इन दोनों के बारे में एक ईमानदार लेखा-जोखा मिलता है। शकुन्तला चौरसिया एवं सऊद अहमद खान ने मिलकर परियोजना पर काम करने का फैसला किया और वे प्राथमिक तथा प्रारम्भिक स्कूल के शिक्षकों के सामने आने वाली एक सामान्य समस्या का समाधान ढूँढ़ने में लग गए। समस्या यह थी कि जब कक्षा छह के विद्यार्थी विषय की मूल बातें ही नहीं जानते तो उन्हें उस कक्षा का विस्तृत पाठ्यक्रम कैसे पढ़ाया जाए? यहाँ पर कक्षा छह के विद्यार्थी स्थानीय मान के साथ जूझ रहे थे। इन दोनों ने श्यामपट्ट पर साधारण समस्या के एक सेट का प्रयोग किया ताकि बच्चे 'परीक्षा' के तनाव से दूर रहें। इस तरीके से ऐसे नौ विद्यार्थियों का पता लगाया जिन्हें दो और तीन अंकीय संख्याओं को क्रम से लगाने उनकी तुलना करने और लेखन में कठिनाई होती थी। इन दोनों ने ऐसी सामग्री का उपयोग करने का निर्णय लिया जिन्हें विद्यार्थियों ने बड़ी आसानी से कक्षा में ही बनाया था जैसे इकाई, दहाई और सैकड़े के रंगीन ब्लॉकों की सहायता से अवधारणा सिखाना। बुनियादी बातों से शुरू करके उन्होंने बच्चों का संख्यात्मक कौशल बढ़ाने में उनकी मदद की।

हमें यह वीडियो देखने में बहुत आनन्द आया। इसके कई कारण थे जैसे विद्यार्थियों की समझ की वास्तविक स्थिति का सामना करने में ईमानदारी, यह भावना कि पहले लागू की गई उपचारात्मक योजनाएँ परियोजना की समाप्ति पर भी जारी रहेंगी, इस बात को मुक्त रूप से स्वीकार करना कि दस्तावेजीकरण थकाऊ है और शिक्षकों के घरेलू समय में कटौती कर देता है। इन सभी के बावजूद, शिक्षकों ने इन बातों की खोज की : विद्यार्थियों का उन टी.एल.एम. के साथ लगाव जो उन्होंने बनाई थीं, जो विद्यार्थी जरा-सा पिछड़ा हुआ था वह गृहकार्य की माँग कर रहा था, वह योजना जिसके तहत विद्यार्थी अपने सवाल खुद ही बनाएँ, अलग-अलग विद्यार्थियों के लिए भिन्न प्रकार के अध्यापन के तनाव को कम करने के लिए दो शिक्षकों की मौजूदगी और परियोजना की माँगों को साझा करना - ये सारी बातें विश्वसनीय और शिक्षक के तनाव से सम्बन्धित हैं जिसके कारण उन्होंने समझने के माध्यम से प्राकृतिक मार्ग को अपनाया न कि सिर्फ विषयवस्तु को बता देने के संक्षिप्त मार्ग को।

(घ) बच्चे खुद करके सीखते हैं : नीरज

नीरज कक्षा पाँचवीं और छठी को विज्ञान पढ़ाते हैं। उन्होंने देखा कि विद्यार्थी कक्षा में प्रश्न ही नहीं पूछते और शिक्षक जो भी कहते हैं उस पर विश्वास कर लेते हैं। उन्हें लगा कि विद्यार्थियों को विज्ञान की प्रक्रिया से परिचित कराना चाहिए और प्रश्न पूछने में उनकी मदद करनी चाहिए।

उन्होंने विद्यार्थियों के साथ चर्चा शुरू की और प्रश्न पूछने में उनकी मदद की। उन्होंने विद्यार्थियों से कहा कि वे अंकुरण को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाएँ और यह भी पता करें कि क्या पौधे जड़ों के माध्यम से पानी अवशोषित करते हैं। विद्यार्थियों ने प्रयोग किए, अवलोकन किए और उन्हें रिकॉर्ड किया। साथ ही उन्होंने बहुत सारे प्रश्न पूछे और अंकुरण के बारे में पता लगाने के लिए परिस्थितियों में बदलाव भी किया जैसे धूप, पानी और मिट्टी की उपलब्धता।

इस प्रक्रिया के कारण बच्चों ने प्रश्न पूछने शुरू कर दिए हैं और साथ ही उनके जवाब ढूँढ़ने की कोशिश भी की। नीरज पहले सिद्धान्त सिखाते थे और बाद में गतिविधि कराते, लेकिन अब वे इस बात में विद्यार्थियों की सहायता करते हैं कि वे पूछताछ करें और खुद ही सिद्धान्त का पता लगाएँ। अब उन्होंने सीधे-सीधे जवाब देना भी बन्द कर दिया है। इस प्रक्रिया से उन्हें चिन्तन करने और यह समझने में मदद मिली कि बच्चे अपने आप ही सीखते हैं और अपने हाथों से कार्य करके सीखते हैं। क्रियात्मक शोध करने के दौरान उन्होंने विद्यार्थियों से सीखा और विज्ञान की विभिन्न परिघटनाओं के बारे में भी सोचने लगे।

(ङ) हिन्दी वर्णमाला और शब्दों को पढ़ने-लिखने में क्षमता बढ़ाना : नरेन्द्र जोशी एवं सहाबुद्दीन अंसारी

पॉल लॉकहार्ट गणित शिक्षण के बारे में अपने प्रसिद्ध अंश लॉकहार्ट्स लेमेंट में कहते हैं, ''और मैंने स्कूल में गणितीय आलोचना की कमी का कभी उल्लेख नहीं किया। विद्यार्थियों को यह भेद कभी नहीं बताया जाता कि किसी भी साहित्य की तरह गणित को भी मनुष्य के द्वारा अपने मनोरंजन के लिए बनाया गया है, कि गणित के कार्य समीक्षात्मक मूल्यांकन के अधीन हैं, कि कोई भी व्यक्ति गणित का स्वाद ले सकता है और उसे विकसित कर सकता है।'' हालाँकि भाषा शिक्षण की स्थिति गणित की तरह तो नहीं है लेकिन नरेन्द्र जोशी और सहाबुद्दीन अंसारी ने क्रियात्मक शोध के लिए हिन्दी में पढ़ने का कौशल सिखाने के लिए जिस सम्पूर्ण भाषा उपागम को अपनाया, उससे विद्यार्थियों को निश्चित रूप से भाषा का स्वाद विकसित करने में सहायता मिली। इस वीडियो में हम देखते हैं कि शिक्षक भाषा के अध्ययन को विद्यार्थियों के वास्तविक जीवन के अनुभवों के साथ जोड़ रहे हैं और विद्यार्थी जिस भाषा को पढ़ना सीख रहे हैं, उस भाषा के अक्षरों के स्थान पर शब्दों का उपयोग करके ये शिक्षक उस भाषा का 'अनुभव' करने में विद्यार्थियों की मदद कर रहे हैं। इन शिक्षकों

ने एक आम समस्या का सामना किया : उन विद्यार्थियों को हिन्दी की लिपि सिखाना जो घर पर हिन्दी नहीं बोलते थे। इसके लिए उन्होंने कहानियों का सहारा लिया - चार्ट पर एक संक्षिप्त, रोचक कथा लिखना और उसे पाठ पढ़ाने के कुछ दिन पहले दीवार पर लगाना, फिर उसे इशारों और हाव-भाव के साथ विद्यार्थियों को पढ़कर सुनाना, प्रत्येक विद्यार्थी को स्वयं पढ़ने के लिए कहानी की प्रतिलिपि देना, विद्यार्थियों को कागज के एक टुकड़े पर कहानी के वाक्य लिखकर देना और फिर उन्हें कहानी के क्रमानुसार व्यवस्थित करने को कहना इत्यादि। इसके अलावा रोल प्ले, खेल और सीखने की अन्य गतिविधियाँ भी करवाई गईं। करीब तीन महीने में अधिकांश विद्यार्थियों की पठन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार दिखाई दिया।

इस वीडियो क्लिप को अन्य क्लिपों की तरह बहुत अधिक सम्पादित नहीं किया गया है। बातचीत के दौरान शिक्षक थोड़ा-सा भटके हुए नजर आते हैं लेकिन उनकी बातों से यह पता चलता है कि शिक्षक अपने मार्ग में आने वाले अवरोधों को पार करने के लिए किस तरह के प्रयास करते हैं। ये अवरोध हैं - विद्यार्थियों की अनियमित उपस्थिति, घर के वातावरण से कम समर्थन मिलना, कक्षा के स्तर तक पहुँचने की जरूरत आदि। यह बात स्पष्ट थी कि शिक्षक जिन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेते हैं उनसे वे अपने द्वारा अपनाई गई योजनाओं की अवधारणा बनाने, समझने और विकसित करने के बारे में बहुत कुछ सीखते हैं। यह अपने आप में उत्साहजनक है। कई शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेते हैं -लेकिन ऐसा कितनी बार होता है कि उन्हें उन कार्यक्रमों से कुछ ऐसा सीखने को मिला हो जिसे वे अपनी कक्षा में लागू कर सकें? इतना ही नहीं, इस वीडियो को देखने वाले शिक्षक, धीमी और अक्सर प्रतिगामी विद्यार्थियों की गति से विकसित होने वाली योजना की भावना को समझते भी हैं और उसके साथ तादात्म्य भी स्थापित कर पाते हैं। ये वीडियो वास्तविक हैं और सफलता की कहानियों की तुलना में यही वह बात है जो शिक्षकों के लिए जरूरी है। शिक्षक ने यह भावना व्यक्त की कि हालाँकि परियोजना समाप्त हो गई है लेकिन काम समाप्त नहीं हुआ है। यह बात भावनात्मक प्रतिक्रिया पैदा करेगी और निश्चित रूप से एक ऐसे सहयोगी समूह की आवश्यकता पर बल देगी जो विचारों और अभिनव योजनाओं के साथ शिक्षक की सहायता करे।

(च) प्रभावी ढंग से भाषा सिखाने के लिए दो दृष्टिकोणों को सम्मिलित करना : मदन मोहन जोशी

मदन मोहन जोशी पहले पर्यावरण अध्ययन का अध्यापन करते थे लेकिन फिर उन्होंने चौथी कक्षा को हिन्दी पढ़ाना शुरू किया जो एक प्रशंसनीय बात है। उन्होंने देखा कि चौथी कक्षा के पाँच विद्यार्थी हिन्दी में न तो पढ़-लिख पाते हैं और न ही शब्द पहचान पाते हैं और इसलिए वे कविता या कहानी का आनन्द नहीं ले पाते।

उन्होंने इन बच्चों को पढ़ाने के लिए सम्पूर्ण भाषा और पारम्परिक दृष्टिकोण का मिश्रण करने की कोशिश की। उन्होंने एक कहानी ली, उनसे एक शब्द पढ़वाया और फिर अक्षरों की ओर बढ़े। उन्होंने बच्चों को उल्टे तरीके से कहानी पढ़ने की चुनौती दी ताकि वे यह जाँच सकें कि विद्यार्थी वाकई पढ़ सकते हैं।

पारम्परिक और सम्पूर्ण भाषा के दृष्टिकोण के मिश्रण को समझने के लिए शिक्षक ने जिन योजनाओं का उपयोग किया, उनके और उदाहरण दिए जा सकते थे। इस वीडियो में यह अधिक स्पष्ट नहीं है। शिक्षक का यह दावा भी संदिग्ध है कि ये पाँच विद्यार्थी कुछ महीनों में लगभग सभी शब्द पढ़ पाए। उन्होंने यह दावा भी किया कि चूँकि विद्यार्थी पढ़ सकते थे इसलिए वे कविता और कहानियों का आनन्द ले पाए। मदन ने इन पाँच विद्यार्थियों का अलग समूह बनाकर उसमें उनसे काम करवाया और उन्हें दो समूहों को सम्भालने में कठिनाई हो रही थी। शिक्षक की पृष्ठभूमि, पर्यावरण अध्ययन पढ़ाने के बारे में उनका चिन्तन, फिर हिन्दी पढ़ाना और यह परिवर्तन उन्हें कैसा लगा - इन सबके बारे में कुछ और विवरण देना उपयोगी साबित होता। इस वीडियो के सम्पादन में और कसावट की जरूरत थी और इसकी संरचना बेहतर हो सकती थी । शिक्षक के दस्तावेजीकरण के प्रयास बहुत स्पष्ट हैं।

क्रियात्मक शोध और चिन्तनशील अभ्यास

शिक्षण एक चिन्तनशील अभ्यास है, शिक्षक निरन्तर अपनी योजनाओं का मूल्यांकन करते हैं और अपने अभ्यास की बेहतरी के लिए योजनाओं का विकास करते हैं या अपनी कार्य प्रणाली को बदलते हैं। अनुभव पर चिन्तन करने और शिक्षण अभ्यास के सुधार के लिए योजना बनाने को 'चिन्तनशील शिक्षक मॉडल' (मैकमोहन 1999) के रूप में जाना जाता है। इस परियोजना में भाग लेने वाले शिक्षक भी यह मानते हैं कि उनके कार्य में चिन्तन व क्रियाएँ करना शामिल हैं।

इन वीडियो को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि क्रियात्मक शोध की इस प्रक्रिया ने इन शिक्षकों को अपनी कक्षाओं, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, बच्चे कैसे सीखते हैं, वे योजनाएँ जिनसे बच्चों को सीखने में मदद मिल सकती है, शिक्षार्थी किन समस्याओं का सामना करते हैं इत्यादि बातों के बारे में सोचने में सहायता की है। इससे उन्हें अपनी धारणाओं पर चिन्तन करने में मदद मिली है। इन शिक्षकों ने अधिगम के साथ जुड़ने में विद्यार्थियों की सहायता की है। उनके चेहरों पर मुस्कुराहट है और प्रभावी तरीके से कुछ करने की खुशी है क्योंकि उन्होंने बच्चों के अधिगम में कुछ बदलाव देखा है।

इससे उन्हें अन्य शिक्षकों व प्रधानाध्यापक के साथ मिलकर काम करने और उनके साथ अपनी समस्याओं तथा योजनाओं पर चर्चा करने में भी सहायता मिली है । दस्तावेजीकरण थकाऊ तो था लेकिन उसकी वजह से वे अपनी इस यात्रा पर चिन्तन कर पाए और उसे समझ सके।

ये वीडियो और विवरण शिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए उपयोगी संसाधन हैं क्योंकि भारतीय सन्दर्भ में ऐसे उदाहरण नहीं के बराबर हैं। क्रियात्मक शोध की प्रक्रिया को समझने के लिए इनका प्रयोग कार्यशालाओं में किया जा सकता है और स्व-अधिगम के लिए भी ये उपयोगी हैं। ये उदाहरण अन्य शिक्षकों को चिन्तन करने और अपनी कक्षा में ऐसी योजनाओं को उपयोग में लाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

References

Tim McMahon (1999), Is reflective practice synonymous with action research? Educational Action Research, 7:1, 163-169, DOI: 10.1080/09650799900200080

स्नेहा टाइटस स्कूल ऑफ कंटीन्यूइंग एजुकेशन, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं। उनकी उत्कट इच्छा है कि वे गणित की सुन्दरता, तर्क और प्रासंगिकता को साझा करें। हाईस्कूल गणित की पत्रिका 'एट राइट एंगल्स' की सह-सम्पादिका होने के साथ-साथ वे ग्रामीण तथा शहरी स्कूलों के शिक्षकों की सलाहकार भी हैं। स्नेहा कार्यशालाओं का संचालन करती हैं जिनमें वे समस्या सुलझाने के माध्यम से कौशल के विकास पर और गणित शिक्षण में प्रयुक्त शैक्षणिक योजनाओं पर ध्यान देती हैं। उनसे sneha.titus@ azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

इन्दुमती एस. इस लेख के लिखे जाने तक वे स्कूल ऑफ कंटीन्यूइंग एजुकेशन, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध थीं। वे विज्ञान की शिक्षा और महिला व विज्ञान तथा शिक्षक पेशेवर विकास के क्षेत्र में अत्यधिक रुचि रखती हैं। वे शिक्षा में पीएच.डी. कर रही हैं और विज्ञान की कक्षाओं में लड़कियों के अनुभवों को समझने के कार्य में जुटी हुई हैं। **अनुवाद :** नलिनी रावल

पुस्तक समीक्षा : चिन्तनशील अध्यापक - क्रियात्मक शोध के केस अध्ययन (The Reflective Teacher - Case Studies of Action Research) लेखिका: नीरजा राघवन; ओरिएंट ब्लैक स्वान चैन्नई (2016), xii, पृष्ठ 254, रु. 270

गुरुराज के. द्वारा समीक्षा

"यह पुस्तक समकालीन शैक्षिक परिदृश्य में बहुत सामयिक है और चिन्तनशील शिक्षा के आन्दोलन का कारण बन सकती है।"

- एस.सी. बेहार, बोर्ड सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बेंगलूरु

इस पुस्तक की लेखिका नीरजा राघवन के मन में शिक्षा को लेकर जो जुनून है उसके चलते वे कई सालों से इस क्षेत्र के साथ जुड़ी हुई हैं और उन्होंने बच्चों को पढ़ाने तथा शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक कार्य किया है। अपनी इस नवीनतम पुस्तक में उन्होंने अज़ीम प्रेमजी स्कूल, दिनेशपुर, उत्तराखण्ड के आठ शिक्षकों और प्रधानाध्यापक द्वारा किए गए पाँच महीनों (अगस्त-दिसम्बर 2013) के क्रियात्मक शोध के दौरान उभरे अनुभवों और सीखों

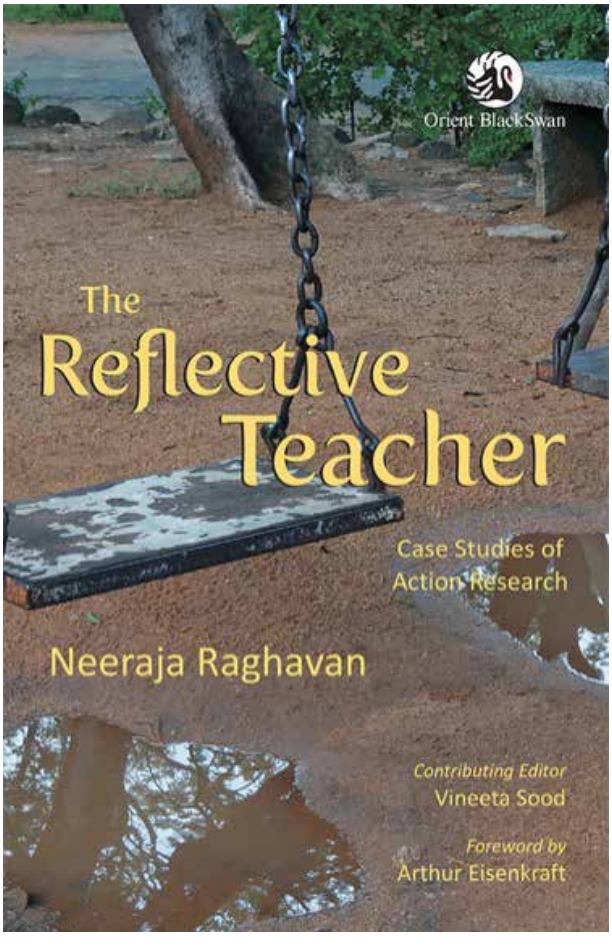

को व्यवस्थित रूप से निरूपित किया है। प्रमुख अन्वेषक के रूप में उन्होंने क्रियात्मक शोध की इस परियोजना का नेतृत्व सम्भाला जिसमें अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के सदस्यों ने सहायता की।

जैसा कि कहा गया है, 'इस पुस्तक का उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षा में स्नातक और स्नातकोत्तर कोर्स करने वाले विद्यार्थियों, शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों, शोधकर्ताओं और स्कूल के प्रधानाध्यापकों की सहायता करना है। विचार तो यही है कि किताब का दूसरा खण्ड उन पाठकों की जरूरतें पूरी करेगा जो अभ्यास के बारे में सीखना चाहते हैं जबकि अन्य दो खण्ड उनको रुचिकर लगेंगे जो इस अभ्यास को सैद्धान्तिक आधार भी देना चाहते हैं।' (पृष्ठ 27)

यह गतिविधि इस इरादे के साथ शुरू की गई कि सेवारत शिक्षकों को एक चिन्तनशील पेशेवर शिक्षक के रूप में पुष्पित किया जाए और ऐसा करने के लिए क्रियात्मक शोध का तरीका अपनाया जाए। अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की टीम ने यह प्रयास किया कि हर शिक्षक को गहराई के साथ समझा जाए, कक्षा सम्बन्धी प्रक्रियाओं का अवलोकन किया जाए, प्रत्येक शिक्षक के क्रियात्मक शोध का सुगमीकरण किया जाए, एक व्यवस्थित तरीके से शोध के प्रलेखन में उनकी मदद की जाए और अन्ततः क्रियात्मक शोध के संचालन से प्रत्येक शिक्षक ने जो कुछ भी सीखा उसकी जानकारी प्राप्त की जाए।

इस पुस्तक में तीन भाग हैं। पहले भाग में पाठक को क्रियात्मक शोध, चिन्तनशील अभ्यास व शिक्षक विकास और शिक्षकों के साथ काम करने की विधि के रूप में क्रियात्मक शोध चुनने के मानदण्ड के बारे में जानकारी दी गई है। यहाँ पर लेखिका ने इस क्षेत्र में अग्रणी लोगों जैसे डिवी, शुइन आदि के सिद्धान्तों को कई बार उद्धृत किया है और उनका जिक्र किया है। अध्ययन का उद्देश्य, जहाँ अध्ययन हुआ वह स्कूल, क्रियात्मक शोध करने वाले

शिक्षकों का विवरण, क्रियात्मक शोध शुरू करने से पहले उनकी धारणाएँ और मान्यताएँ आदि सारी बातें इस भाग में दी गई हैं।

शिक्षक के स्नैपशॉट्स वाला अध्याय बहुत दिलचस्प है। इसमें शिक्षक शिक्षण का पेशा चुनने का कारण, प्रेरणा, चुनौतियों और शिक्षण-अधिगम के बारे में अपने विचार बताते हैं।

दूसरे भाग में शिक्षकों के साथ काम करने वाले सुगमकर्ताओं की संक्षिप्त पृष्ठभूमि के बारे में बताया गया है। इसमें हर शिक्षक के व्यक्तिगत विवरण का संकलन और क्रियात्मक शोध के दौरान उस शिक्षक की एक कक्षा का अवलोकन भी दिया गया है (यह अवलोकन और संकलन सुगमकर्ताओं द्वारा किया गया है)। इसमें क्रियात्मक शोध के बारे में शिक्षकों द्वारा किए गए दस्तावेजीकरण के साथ में सुगमकर्ताओं की डायरी से ली गई संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी हैं। क्रियात्मक शोध के बाद किए गए वीडियो साक्षात्कार के प्रासंगिक निष्कर्षों को अँग्रेजी में दर्ज करने और अनुवाद करने के बाद इसमें शामिल किया गया है।

तीसरे भाग में क्रियात्मक शोध के दौरान शिक्षकों की अभिवृत्तियों, धारणाओं और अध्यापन कला में हुए बदलावों के बारे में पता लगाया गया है, जो नई अन्तर्दृष्टि मिली उसका वर्णन किया गया है और इन सबको इस क्षेत्र में हो रहे मौजूदा शोध की पृष्ठभूमि में रखते हुए शिक्षकों की पूर्व मान्यताओं और अभ्यासों से जोड़ा गया है।

क्या अध्ययन के समाप्त होने के बाद भी स्कूल में चिन्तनशील अभ्यास कायम रहेगा? इस प्रश्न के बारे में लेखिका का विचार है कि अध्ययन का उद्देश्य यह था कि क्रियात्मक शोध को एक सम्भावित साधन मानते हुए हर शिक्षक के भीतर से एक चिन्तशील अभ्यासी उभरकर सामने आए। इसलिए प्रत्येक शिक्षक द्वारा केवल एक क्रियात्मक शोध का चक्र पूरा कर लेने पर इसे 'पूर्ण' नहीं समझा जा सकता। न ही यह कहा जा सकता है कि हाँ, उद्देश्य 'पूरा' हो गया क्योंकि चिन्तन एक निरन्तर चलने वाला अभ्यास है।

शिक्षक को आजीवन शिक्षार्थी और चिन्तनशील अभ्यासी होना चाहिए

जैसा कि कहा गया है, 'स्कूल की कक्षा को कई तत्वों का मिश्रण माना जा सकता है जैसे युवा, ताजगी, जीवन शक्ति, पुनरुद्भवन। तीस या चालीस स्पन्दनशील मस्तिष्क, एक शिक्षक, सीखने वाले पाठ और पुस्तकें - कम से कम इतना तो होता ही है। तो फिर ऐसा क्यों है कि अक्सर शिक्षण-अधिगम एक यांत्रिक और दोहराव की प्रक्रिया बनकर रह जाती है?

जाने-अनजाने ही सही, पर एक ही पाठ, साल-दर-साल, एक ही तरीके से पढ़ाया जाता है। दिन-प्रतिदिन 'पाठ्यक्रम को पूरा करने', सत्र के मध्य में परीक्षाएँ संचालित करने और वार्षिक परीक्षाएँ आयोजित करने की जद्दोजहद चलती रहती है और शिक्षकों को नियमित और सुसंगत रूप से अपने पेशेवर विकास पर ध्यान देने का समय ही नहीं मिल पाता।' (पृष्ठ 3)

इसलिए दिन-प्रतिदिन की चुनौतियों का सामना करने तथा विशिष्टता, अनिश्चितता और द्वन्द्व से पैदा होने वाले प्रश्नों का जवाब देने के लिए शिक्षकों को अपने भीतर चिन्तन का गुण विकसित करना चाहिए।

शिक्षक को आजीवन शिक्षार्थी और चिन्तनशील अभ्यासी बने रहना चाहिए। इस पुस्तक में उपलब्ध क्रियात्मक शोध के केस अध्ययन का बढ़िया दस्तावेजीकरण और सिद्धान्तों की जानकारी से प्रधानाध्यापकों, सेवारत शिक्षकों, शिक्षक बनने के इच्छुक विद्यार्थियों, शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों और बच्चों के अधिगम की चिन्ता करने वाले लोगों को चिन्तनशील अभ्यासी बनने के लिए क्रियात्मक शोध करने के प्रयास करने की प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलेगा। पुस्तक के अन्त में दिए गए दिशानिर्देश और परिशिष्ट में दी गई प्रश्नावलियाँ तथा क्रियात्मक शोध के टेम्प्लेट क्रियात्मक शोध करने में सहायक होंगे।

गुरुराज के. इस लेख के लिखे जाने तक अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के बेंगलूरु शहरी जिला संस्थान में स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत थे। वे पढ़ने, बच्चों के साथ अधिगम की गतिविधियाँ करने और प्रकृति में प्रातःकालीन सैर करने में रुचि रखते हैं। उनसे ksgururaj@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

Published by Azim Premji Foundation for Development, Pixel ‘B’, PES college of Engineering Campus, Electronics City, Bengaluru - 560100

Printed by S C P L, Bengaluru - 560062. Editor: Prema Raghunath

अगला अंक

शिक्षा नीतियाँ और उनका अमल

Earlier Issues of the Learning Curve may be downloaded from **http://teachersofindia.org/en/periodicals/learning-curve** or **http://www.azimpremjifoundation.org/-Foundation_Publications or http://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/resources-learning-curve.aspx**

No. 134, Doddakannelli
Next to Wipro Corporate Office
Sarjapur Road, Bangalore - 560 035. India
Tel: +91 80 6614 4900/01/02 Fax: +91 80 6614 4903
E-mail: learningcurve@azimpremjifoundation.org
www.azimpremjifoundation.org

Also visit Azim Premji University website at
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
का प्रकाशन

For suggestions or comments and to share your views or personal experiences, do write to us at **learningcurve@azimpremjifoundation.org**